विषय	पृष्ठ
लाल के सम्बन्ध मे ठाकुर का अनुशासन	७७
साधन के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान	७६
गेरुवा क्या है ?	७६
नित्य नये तत्त्व का प्रकाश; परतत्त्व ...	८०
अभिनव तिलक । श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा सत्कार	८१
श्रीवृन्दावन मे साम्प्रदायिक भाव ...	८२
दर्शन मे विरोध डालनेवाले प्रभु-सन्तान की उत्कट शिक्षा ...	८४
साधक का सुरा पीना क्या है ? ..	८६
नाम का जप करने से ठाकुर की शुष्कता और जलन । परमहंसजी की सान्त्वना	८६
मेरे और हरिमोहन के श्रीवृन्दावन से	
कङ्काल के ब्रह्माण्ड भेद मे ठाकुर की दीक्षा आदि व शक्तिसञ्चार की बात	११२
अनेक स्थानो मे ठाकुर को मन्त्र मिलना । अनेक प्रकार के साधन । परमहंसजी से दीक्षा मिलना । तैलंग स्वामी की बात ...	११७
महादेव के सिर का कपडा । यह साधन वैदिक है	१२३
माताठाकुराणी की पतिपूजा । वराह का दाँत	१२५
देह मे अनाहत ध्वनि	१२७
सूक्ष्म शरीर और परलोक के सम्बन्ध मे श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर की बात	१२८

विषय	पृष्ठ
गोस्वामीजी की कृपा ··· ···	१४६
महात्मा गौर शिरोमणि ··· ···	१४७
मछली खाने से अनिष्ट । अशुद्ध देह का हेतु और परिणाम तथा शुद्धि का उपाय ··· ···	१४६
ठाकुर से विदा माँगना; माताठाकुराणी की अन्तिम आज्ञा ··· ···	१५१
मेरी फैज़ाबाद यात्रा; रास्ते में सङ्कट ···	१५२
नौकरी का तकाज़ा; मरते मरते बचा; माताठाकुराणी का पत्र ···	१५४
सद्गति-प्रार्थी शक्तिशाली मृत आत्मा का उपद्रव ··· ···	१५६
सत्य स्वप्न, आँखों में तकलीफ ···	१६०
भूखे शालग्राम ··· ···	१६१
फैज़ाबाद में गोस्वामीजी की अवस्थिति	१६३
कायाकल्पी फकीर का हाल ···	१६५
ब्रह्मचर्य की अद्भुत अवस्था ···	१६६
प्रलोभन में अविकार; अहङ्कार से पतन	१६६
स्वप्न में गुरुजी का अनुशासन ···	१७१
गुरुवाक्य में विश्वास न होने से दुर्दैव	१७२
मानिकतला की माँ ·· ···	१७४
हरिचरण बाबू और लाल का पछतावा	१७५
मार्गशीर्ष १६४७	
मेरा प्रतिदिन का काम । माता की सेवा से पूर्ण कल्याण की प्राप्ति ··	१७७
गुरुकृपा का अद्भुत नमूना । छोटे दादा का रोग से छुटकारा ···	१८०
प्रकृतिपूजा में दुर्दशा । श्रीश्रीगुरुदेव का अभयदान ··· ···	१८२
माता का आशीर्वाद और गोस्वामीजी के चरणों में मुझे सौंपना ···	१८७
दीक्षा लेने की छोटे दादा की प्रवृत्ति	१६०
माता योगमाया देवी का अन्तर्धान होना । लालजी का शरीरान्त ···	१६२
चैत्र, १६४७	
छोटे दादा की दीक्षा और अद्भुत घटना । अनेक प्रश्न ···	१६२
श्रीवृन्दावन का पेड़ काटने में ब्राह्मण का उच्छेद ··· ···	१६६
गोस्वामीजी के मुँह से श्रीवृन्दावन की बातें ·· ··· ···	१६७
गोस्वामीजी की जया और दण्ड ···	२००
श्रीवृन्दावन के ब्रजवासी ·· ···	२००
परिक्रमा के समय ब्रजमाइयों का व्यवहार ·· ·· ···	२०२
जीवप्रकृति के साथ समप्राणता ···	२०४
श्रीवृन्दावन में "राधाश्याम" पक्षी ···	२०६
श्रीवृन्दावन में हिंसा ··· ···	२०६
होम की व्यवस्था ··· ···	२०७
फकीर अली जान । प्राणायाम का प्रकार-भेद ··· ···	२०८
प्रतिष्ठा नष्ट करने में सिद्ध महात्माओं का लोकविरुद्ध व्यवहार ···	२१०
बिना माँगा हुआ दान न लेने से दुर्दशा ·· ··· ···	२१३
भूखे साधु की ओर ठाकुर का आकस्मिक खिंचाव ·· ···	२१४
जमात के साधुओं को द्रव्य-प्राप्ति और सङ्कट का हाल ···	२१५
सोना बनानेवाला साधु ·· ···	२१६
सुखमय वृन्दावन · ··· ···	२१७

विषय	पृष्ठ
अज्ञात साधु का आश्रय लेने से संकट	२१७
अनधिकारी का गेरुवे वस्त्र पहनने में अपराध	२१८
कुम्भ मेले की चर्चा	२१९
माता के शोक में शान्तिसुधा को ठाकुर का ढाढस बँधाना ...	२२०
माताठाकुराणी के शरीर छोड़ने का ब्योरा	२२२
भक्त के वियोग में महात्माओं को असाधारण जलन ...	२२३
गोस्वामीजी के दर्शन करने को पहाड़वासी अज्ञात महापुरुष ...	२२४

चित्र-सूची

	पृष्ठ
श्रीमदाचार्य प्रभुपाद श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी—गेण्डारिया आश्रम ...	१
श्रीश्रीगोपीनाथजी का प्राचीन मन्दिर—श्रीवृन्दावन	१८
दाऊजी महाराज का मन्दिर—(दामोदर पुजारी की कुञ्ज, श्रीवृन्दावन) ...	२६
कालीदह का घाट—श्रीवृन्दावन	४४
श्रीयुक्तेश्वरी माताठाकुराणी श्रीश्रीयोगमाया देवी—(गोस्वामी प्रभु के पूर्वाश्रम की सहधर्मिणी) ...	१०६
आकाशगङ्गा पहाड़ पर गोस्वामी प्रभु का दीक्षास्थान, गयाधाम	१२०
श्रीश्रीरामदास कठिया बाबाजी महाराज—(काठके कौपीन पहने हुए) ...	१४४
ललक की माताठाकुराणी—श्रीयुक्ता हरसुन्दरी देवी	१८८
केशी-घाट—श्रीवृन्दावन	२२२
श्रीश्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी महाराज	२२५

श्रीमदाचार्य प्रभुपाद श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीपाद
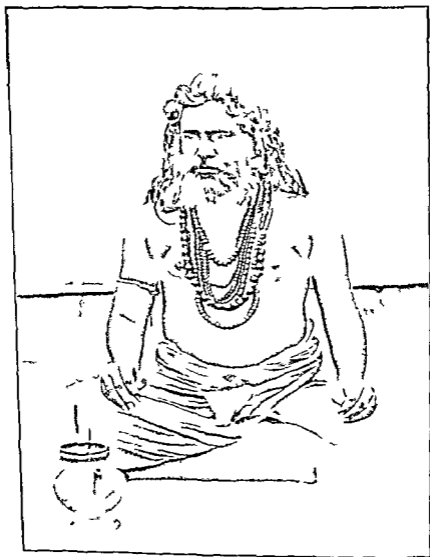
गेण्डारिया आश्रम

श्रीश्रीगुरुदेवाय नमः।

श्रीश्रीसद्गुरुसङ्ग

(द्वितीय खण्ड)

असह्य रोग यातना। जीवन में वितृष्णा।
परोक्ष में गुरुदेव का आह्वान

आषाढ का प्रथम सप्ताह
संवत् १९४७

रात दिन लगातार दारुण पित्तशूल की वेदना की असह्य यातना के मारे मेरी इच्छा आत्महत्या करने की हुई। क्रमशः यन्त्रणा की तीव्रता के साथ साथ उल्लिखित संकल्प ने मेरे हृदय में जड़ पकड़ ली। खबर मिली है कि इस समय गुरुदेव श्रीवृन्दावन में हैं। मैंने तय किया—उनकी पापनाशक मनोमोहन मूर्ति को हमेशा के लिए एक बार देखकर, उनकी स्नेह-सनी स्निग्ध दृष्टि को मन में स्थापित करके, पुण्यतोया यमुना के जल में इस पाप पूर्ण देह को डुबा दूँगा। इस जीर्ण शरीर में चलने फिरने तक की शक्ति नहीं है; और बेचैन हो रहा हूँ श्री वृन्दावन जाने के लिए। इस समय बिछौने से उठकर हिलने-डुलने को भी कोई मुझे उत्साहित नहीं करता। इसके सिवा श्री वृन्दावन जाने के लिए खर्च आदि ही किससे माँगूँगा? इसी समय बार बार मन में ऐसा होने लगा कि गुरुदेव दया करें तो असम्भव भी सम्भव हो जायगा। मैं इस भरोसे कि शीघ्र ही किसी न किसी प्रकार मेरे जाने का प्रबन्ध होगा, बड़ी व्याकुलता के

साथ उन्हीं को अपने मन की इच्छा निवेदन करने लगा। गुरुदेव की दया अद्भुत है! जिसका ख्याल तक नहीं किया था ऐसे ढग से श्रीवृन्दावन जाने का प्रबन्ध हो गया। जय गुरुदेव ! जय गुरुदेव !

श्रीयुक्त मथुर बाबू के बड़े लड़के, श्रीमान् सुरेन्द्र, विलायत जाने के लिए हैदराबाद मे अपने चाचा डाक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के पास पढ रहे थे। किसी कारण अपने पिता के पास आना आवश्यक होने से, दूसरे दरजे का आने जाने का (रिटर्न) टिकिट लेकर, वे आजकल भागलपुर आये हुए हैं। मेरे श्रीवृन्दावन जाने की प्रबल इच्छा को जानकर उन्होंने मुझे, गुप्त रूप से, टिकिट देकर कहा—"मैं अभी हैदराबाद नहीं जाता। मामाजी, आप यह टिकिट ले लीजिए। आप इस टिकिट से इलाहाबाद तक जा सकते हैं।" टिकिट मिलने से मने, प्रकारान्तर से, इसे गुरुदेव का ही सस्नेह बुलाना समझा। यह सोचकर मैं रो पड़ा। बस, मैं श्री वृन्दावन जाने के लिए तैयार हो गया। इस समय मुझे रोकना व्यर्थ समझकर श्रीयुक्त मथुर बाबू ने मुझे १०) रुपये और महाविष्णु बाबू ने ३) रुपये दिये। पुरानी दो धोतियाँ, अँगौछा लोटा और डायरी लिखने का सामान लेकर तथा एक हरिवंश को झोले में बाँधकर मैं तैयार हो गया।

अपनी स्वर्गीया बहन के छोटे-छोटे बेटे बेटियों की देख भाल अब तक मैं ही करता था। मैं आज उनको छोड़ चला, इससे बड़ा दुःख होने लगा।

श्रीवृन्दावन यात्रा

आषाढ़ शु० १४ मङ्गलवार
सम्वत् १६४७

बड़ी उमङ्ग से सारा दिन बिताकर, दिन डूबने से कुछ पहले, गाड़ी का समय समझकर मैं स्टेशन को रवाना हुआ। गुरुदेव का स्मरण करके पग बढ़ाते ही वही अनुपम श्याम रूप, बहुत दिनों के बाद, झलमला करके प्रकट हो गया। चार-पाँच हाथ के अन्तर पर, अधर रहकर, वह ज्योतिर्मय रूप समान गति से मेरे आगे आगे चलने लगा। यह देखकर आनन्द के मारे मेरा चित्त प्रफुल्ल हो गया। मैं ठीक समय पर स्टेशन पहुँच गया। नगे शरीर, कम्बल लिये, भिखारी की वेश में, पग का झोला हाथ में लिये, मैं दूसरे दरजे की गाड़ी में जा बैठा। पता नहीं कि सब लोग मुझे क्या समझकर, मुँह फैलाये हुए, टकटकी लगाकर मेरी

और देखते रहे। थोड़ी देर में एक आदमी ने आकर टिकिट माँगा। वह टिकिट देखकर और मुझे सलाम करके चला गया। थोड़ी देर में गाड़ी खुल गई। थका हुआ था; थोड़ी ही देर में मुझे नींद ने घर दबाया। इसी समय वह साँवली मूर्ति धीरे-धीरे अन्तर्हित हो गई। आज की रात बड़े आराम में कटी।

प्रयाग धाम के प्रभाव का अनुभव

स्थिर बैठा हुआ नाम का जप कर रहा हूँ, गाड़ी प्रयागराज से कुछ फासले पर पूर्व आषाढ़ शु० १५ ओर बड़े भारी मैदान में आ गई। मैदान की ओर नजर डालते ही मैं संवत १८४७ काँप उठा, उदासीनता ने मेरे प्राणों को सुस्त कर दिया। भीतर से स्पष्ट रूप मे अपने आप 'अगस्त्य' 'अगस्त्य' शब्द होने लगा। भरद्वाज, वशिष्ठ आदि महातपा ऋषि लोग किसी समय यहीं पर थे, इस भाव का मन में उदय होने से उनके लिए शोक हो आया। इस शोक ने धीरे-धीरे मुझे इतना अभिभूत कर डाला कि मैं किसी तरह रुलाई को न रोक सका। सूने डिब्बे मे सुविधा पाकर मैं ऋषियों का नाम लेकर कुछ देर तक रोया। ऐसा जान पड़ा कि ऋषि लोग इस स्थान मे ठहरकर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं कातरता के साथ उनके चरणों को उद्देश कर बार-बार नमस्कार करके प्रार्थना करने लगा—"हे आर्य ऋषियों, आज तुमने इस तरह क्यों मुझ पर इतनी कृपा की? आज अकस्मात् तुम लोगों की याद आ जाने से तुम्हारे लिए मेरे प्राण इस तरह क्यों रो पड़े? मैंने तो अपने इस जीवन मे कभी तुम लोगों की याद की ही नहीं। तुम लोगों का स्मरण करके मैंने माथा नहीं झुकाया है। जान पड़ता है, इसी मैदान मे तुम लोगों के पवित्र आश्रम थे; इसी से, तुम लोगों ने इस स्थान को नहीं छोड़ा है। अनन्त स्तर विशिष्ट जगत् के किसी सूक्ष्म स्तर में—इसी प्रयाग में अपने बड़े आदर की चीज, साधन के फल को अक्षुण्ण रूप में बचाये रह कर, अदृश्य शरीर मे रहते हुए यहीं उसका सम्भोग कर रहे हो। तुम लोगों के इस साध के पुण्य साधन क्षेत्र में आज मेरे श्रद्धा-शून्य हृदय से, बिना जाने, पहुँचते ही तुम लोगों ने मुझ पर कृपादृष्टि की, दया करके अपनी बात का मेरे चित्त में उदय कर दिया। आज मैं चिरकाल के लिए धन्य हो गया। हे मूर्तिमान् दयास्वरूप ऋषियों, दया करके यह आशीर्वाद दो कि मैं तुम लोगों का अनुगत हो सकूँ; अविचलित मन से तुम

लोगों के सनातन निर्मल मार्ग का अनुसरण कर सकूँ ; हृदय के महाराज गुरुदेव के श्री चरणों में एकनिष्ठ होकर अपना अवशिष्ट जीवन बिता सकूँ। मैं और कुछ नहीं माँगता। इस शुभ मुहूर्त पर तुम लोगों की कृपा से शुभ मति हो गई है इसी से, अपने दुर्विनीत, उद्धत मस्तक को तुम लोगों की चरणरज में विलुण्ठित करता हूँ। मेरी इच्छा पूरी कर दो।" भावुकता ही हो अथवा कल्पना ही हो, मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानों ऋषियों ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैं स्थिर होकर नाम का जप करने लगा। थोड़ी देर में ट्रेन प्रयागधाम पहुँच गई।

अब मैं गाड़ी से उतर पड़ा और स्टेशन से कुछ फासले पर एक बड़े से पेड़ के नीचे जा पहुँचा। वहाँ आसन लगाकर मन ही मन नाम-जप कर रहा था कि अद्भुत रीति से मेरे हृदय में एक भाव का स्रोत आ गया। मैं सोचने लगा—"अहा! आज मैं कहाँ पर हूँ? यही तो वह प्रयागधाम है। एक समय इस स्थान में क्या क्या हुआ था! कितने योगियों और ऋषियों ने किसी समय इसी पुण्यक्षेत्र में, बड़े भारी कुण्ड में, अग्नि प्रज्वलित रखकर दीर्घकालस्थायी याग-यज्ञ का अनुष्ठान किया था। हजारों ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों ने एक समय यहीं पर ध्यान, धारणा और समाधि में विमल आनन्द सम्भोग करके युग-युगान्त बिता दिये थे। तीव्र तपस्या और एकान्त साधन भजन द्वारा अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साथ संयोग करने के लिए असीम शक्ति प्राप्त करके कितने ही दीर्घतपा योगियों और ऋषियों ने इसी पुण्यभूमि में बहुत समय तक निवास किया था। उनकी असाधारण साधनशक्ति ने इस स्थान में सञ्चरित होकर यहाँ के प्रत्येक अणु-परमाणु को सजीव शक्तिशाली कर रक्खा है। इस पवित्र क्षेत्र का स्पर्श होने से, मालूम होता है, ऋषियों की असाधारण साधनशक्ति का बीज अलक्षित रूप से जीव के भीतर पहुँच जाता है; और उसी अमोघशक्ति का अङ्कुर निकल आने पर जीव का कभी न कभी उद्धार हो जाता है। इसी से ऋषियों ने इस भूमि को मुक्तिधाम कहा है। हे देवर्षि-ब्रह्मर्षियों की अप्राकृत साधनशक्ति के सञ्चित भाण्डार तीर्थराज प्रयाग, मैं अनुभव करूँ चाहे न करूँ, तुम्हारी इस आनन्दघनरजकण को छूकर मैं आज धन्य ही गया। हे तीर्थराज, यह आशीर्वाद दो कि आज तक जो लोग तुम्हारे सलय में आये हैं उन सब के चरणों की रज मेरे माथे पर गिरे।" इस भाव में मग्न होकर, मिट्टी में लोटकर मैंने प्रयागधाम को

साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तुरन्त ही भावोच्छ्वास की एक प्रबल बन्या थोडी देर के लिए मेरे भीतर लहरें मार गई। मैं स्थिर बैठा हुआ नाम का जप करने लगा।

इसी समय एक प्रयागवासी भले आदमी मुझे अपने घर लिवा ले गये। उनके यहाँ नहा धोकर मैंने थोडा सा जल-पान किया। फिर ठीक समय पर मैं स्टेशन को वापस चला आया। तीसरे दरजे का टिकट लेकर मैं श्रीवृन्दावन को रवाना हो गया। गाडी में मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं हुई, बडा आराम रहा। जय गुरुदेव!

ज्योतिर्म्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थिति।

गुरुदेव की दया

सवेरे हाथ मुँह धोकर गाडी के एक कोने में बैठा रहा। श्री श्री गुरुदेव के चरणों को

श्रावण कृ० १ सं० १६४७

उद्देश कर बार बार प्रणाम करने में बडी उमङ्ग के साथ नाम का जप करने लगा। ज्यों-ज्यों मथुरा और श्रीवृन्दावन के समीप पहुँचने लगा त्यों-त्यों, दोनों ओर लम्बे-चौडे मैदानों और घने वनों को देखकर, मेरे मन में न जाने कैसा लगने लगा। जिन श्रीकृष्ण को देखने की लालसा से मैं बिलकुल बचपन में, अकेला, मैदान में और निर्जन स्थान में व्याकुल होकर न जाने कितना रोता हुआ घूमा फिरा हूँ, जिनके रहने का स्थान सुनकर लोगों के साथ यहाँ आने के लिए न जाने कितनी खुशामद की है—आज अपने बचपन की मानसकल्पना के उसी श्रीवृन्दावन में आ पहुँचा, यह सोचते ही मुझे रुलाई आ गई। इसी समय देखा कि दोनों ओर के जङ्गल और मैदान में बहुत ही चमकीली, नीली सी, गहरे साँवले रङ्ग की ज्योतियों के टुकडे असंख्य बिजली के आकार में, क्षण-क्षण में, प्रकाशित होकर सुस्निग्ध प्रभा छिटका करके पल भर में ही फिर लुप्त होने लगे। उस नयनाभिराम, मनमोहन साँवले रङ्ग की तुलना जगत् में नहीं है। उसकी सुन्दरता और मनोमोहकता को प्रकट करने के लिए मेरे पास भाषा ही नहीं है। उस विचित्र ज्योति के बार बार दर्शन करने पर भी जब वह अन्तर्हित हो जाती है तब किसी तरह उसे स्मृतिपथ में नहीं लाते बनता। इस अनुपम दिव्य ज्योति का खेल देखते देखते मैं धीरे-धीरे श्री वृन्दावन में आ पहुँचा।

कोई एक बजे मैं वृन्दावन स्टेशन पर पहुँचा। रास्ते में भूखे रहने और सोने को

न मिलने से मैं बहुत ही क्षुब्ध हो रहा था; कलेजे का दर्द भी बहुत बढ़ रहा था। दोपहरी की कड़ी धूप के मारे मैं बहुत दूर नहीं जा सका; २।१ मिनिट तक चलकर ही रास्ते के एक ओर छाँह में जा बैठा। इसी समय चलती हुई गाड़ी में से एक भले आदमी ने मुझे आवाज देकर पूछा—"महाशय, कहाँ जाइएगा?" मैंने उत्तर दिया—"गोपीनाथ के बाग़ में।" यह सुनकर उस भले मानस ने गाड़ी रुकवाकर कहा—"आइए, इस गाड़ी में बैठ जाइए, मैं भी उसी तरफ़ जाऊँगा।" मैं गाड़ी में जा बैठा। थोड़ी देर में वह गाड़ी गोपीनाथ के बाग़ में जाकर खड़ी हो गई। मैं चटपट उतर पड़ा। इसी समय एक बूढ़े ब्रजवासी ने मुझसे पूछा—"बाबू, क्या गोसाईंजी के पास जाओगे? चलो, हम भी वहीं जाते हैं।" मैं ब्राह्मण के पीछे पीछे चलने लगा। जल्दबाज़ी में उसका परिचय लेने की मुझे न सूझी। एक गली में, कुछ दूर जाकर, उस ब्राह्मण ने एक मकान दिखलाकर कहा, "जाओ, उसी कुञ्ज में गोसाईंजी हैं।" अब वह ब्राह्मण दूसरी ओर चला गया। मैंने कई कदम आगे जाकर देखा कि मेरे गुरुदेव कुञ्ज के दरवाज़े पर खड़े हुए हैं। मेरे उनको देखने के पहले ही उन्होंने मुझे आवाज़ देकर कहा—'

हुए हैं। उनकी दुबली देह देखकर मुझे बडा क्लेश होने लगा, मैं रो पडा और बिना कुछ कहे उनके नये वेश और दुबले शरीर की ओर देखने लगा। ठाकुर की देह की ऐसी दुर्दशा मैंने और कभी नहीं देखी। थोडी देर मे गोस्वामीजी ने कुञ्ज के अधिकारी दामोदर पुजारी को बुलाकर कहा—"इसे यमुनाजी मे स्नान करा लाओ। फिर जो भोजन रखा है वह खाने को दे देना।"

बगल के कमरे में झोला झोली, आसन कम्बल आदि रखकर मैं नहाने को चला गया। ग्यारह रुपये थे, उन्हें खुले कमरे में यों ही रख जाने को जी न चाहा। उनको मैंने अंटी में रख लिया। यमुना के शीतल निर्मल जल में नहाने से बडा आराम मिला। दामोदर ने देख लिया कि मेरे पास रुपये हैं। अब वे मेरी अंटी में खुसे हुए रुपयों की ओर बार बार लालच की नजर से देखने लगे। मैंने सोचा—"यह तो खासा उपद्रव हुआ। जब तक मेरे पास पूँजी के ये रुपये रहेंगे, तब तक अनेक चीजों की कमी बतलाकर यह नाहक मुझे हैरान किया करेगा। अतएव इस सङ्कट से प्राण बचा लेने में ही भलाई है। मुझे तो अब यहाँ पर कुछ दिन रहना ही होगा, अतएव ये ग्यारह रुपये इसे देकर यदि अपने खाने पीने का पक्का बन्दोबस्त कर लूँ तो बेखटके होकर मजे में रह सकूँगा।" इस मतलब से मैंने अंटी से रुपये निकालकर दामोदर के हाथ में रख दिये और नमस्कार करके कहा, "पुजारीजी, आप ये थोडे से रुपये ले लीजिए। इनको ठाकुर की सेवा में खर्च कीजिएगा, और जब तक मैं यहाँ रहूँ, मुझे मुट्ठी भर प्रसाद देते रहिएगा। मेरे पास अब एक पैसा भी नहीं है।" रुपये पाकर पुजारीजी बहुत ही प्रसन्न हुए, मेरे सिर पर हाथ फेरते फेरते कहने लगे, "अरे तू तो बडा भक्त है! सब दे दिया! जब तक चाहो तब तक रहो। बढिया माल छकाऊँगा। तेरे ऊपर राधारानी की बडी कृपा है।" मैं तनिक हँसा। उसके बाद हम लोग कुञ्ज में लौट आये।

दाऊजी के मन्दिर से सटे हुए रसोईघर में दामोदर ने मुझे ले जाकर बैठाया। फिर एक पत्तल में परोसी हुई दाल भात और रोटी मेरे आगे रखकर कहा, "गोसाईंजी ने प्रसाद पाते-पाते इतना उठाके रख दिया था।" सुनकर मेरी आँखें भर आईं। अहा! ठाकुर की इतनी दया है। आज ही मैंने सचमुच में प्रसाद पाया। मेरे लिए यह प्रसाद कुछ अधिक था, फिर भी बड़े आनन्द से मैंने सब के सब को स्वाद ले-लेकर पा लिया।

दण्डाघात

भोजन करके मैं गोस्वामीजी के पास जा बैठा। उन्होंने पूछा—तुम्हारे दादा किस तरह हैं? उनके मित्र देवेन्द्र अब कहाँ पर हैं?

मैंने कहा—दादा अच्छी तरह हैं। तभी से देवेन्द्र के साथ दादा की भेंट नहीं हुई। जान पड़ता है कि आपका दण्डाघात न पड़ता तो देवेन्द्र दादा को मार ही डालता।

गोस्वामी जी—ओफ कैसा भयानक आदमी है! यदि वहाँ पर वह और कुछ दिन तक रहने पाता तो वेढब विपत्ति में फँसा देता, तुम्हारे दादा को दुनियाँ से उठा देता। यह अपना जघन्य मतलब सिद्ध करने के लिए वहाँ पर था। तुम्हारे दादा इस पृथिवी के आदमी नहीं हैं; वे दुनियादारी से रत्ती भर भी सरोकार नहीं रखते; वे इस जमाने के हैं ही नहीं; वे तो सत्ययुग के आदमी हैं। देवेन्द्र के साथ तुम्हारे दादा का कुछ लड़ाई-झगड़ा तो नहीं हुआ?

मैं—लड़ाई झगड़ा कुछ भी नहीं हुआ। दादा के पास से आपके चले आने पर लगा बाबा और पवित्रदास बाबा ने दादा से कहा कि देवेन्द्र का साथ छोड़ दो। किन्तु देवेन्द्र के गुणों पर दादा ऐसे लट्टू थे, उसकी धार्मिकता देखकर यहाँ तक भूले हुए थे कि महात्माओं की आज्ञा का पालन करने की भी उन्हें प्रवृत्ति न हुई। देवेन्द्र को वशीकरण विद्या का खासा अभ्यास था, इसी से, जान पड़ता है कि, दादा को उसने अपनी मुट्ठी में कर रक्खा था। फिर जिस दिन आपने कानपुर से उस पर दण्डाघात किया उसी दिन वह अकस्मात् न जाने कैसा हो गया; बिलकुल निस्तेज और शक्तिहीन हो गया। कोई नहीं जानता देवेन्द्र के शरीर के भीतर क्या हो गया था। दादा से भी बिना कुछ कहे-सुने वह उसी समय भाग खड़ा हुआ। मैंने सुना है कि फैजाबाद से ५।६ कोस के फासले पर वह यमुना-किनारे के एक गाँव में जाकर ठहरा था। वहाँ पर उसे सख्त बीमारी हो गई, उसने बड़ी तकलीफ सही। फिर शायद उन्माद हो जाने से कहीं चला गया। पता नहीं कि अब वह जीता-जागता है या मर गया। कोई-कोई उसे जिन्दा नहीं बतलाता। बीमारी के समय वह चाहता तो दादा के पास चला आता; किन्तु बड़े अचम्भे की बात है कि उसे यह सूझा ही नहीं। धर्म का ढोंग करके उसने दादा से हजारों रुपये ठग लिये हैं। मुझे तो दादा की जिन्दगी तक की आशङ्का हो गई थी।

गोस्वामीजी देर तक दादा की बातें करते रहे। मैंने थोड़ी देर में नीचे जाकर देखा कि दाऊजी के मन्दिर के सामने बैठे हुए गुरुभाई लोग दादा की ही चर्चा कर रहे हैं। पहले से ही वह हाल मुझे मालूम था, इस समय फिर सबके मुँह से सुना। फैज़ाबाद से रवाना होकर वृन्दावन जाते समय गोस्वामीजी शिष्यों समेत, कानपुर में, श्रीयुक्त मन्मथनाथ मुखोपाध्याय के यहाँ कुछ दिन ठहर गये थे। एक दिन सवेरे चाय पीने के बाद गुरुभाई लोग गोस्वामीजी के पास बैठे हुए थे कि कुछ भाइयों ने एक भयङ्कर दृश्य देखा। उन्होंने देखा कि साँप के मेंढक लीलने की तरह, एक पिशाच ने धीरे धीरे पैर से लेकर कमर तक दादा को लील लिया है, वह शेष अंश को भी लील जाने की चेष्टा करने लगा। यह दृश्य देखकर वे लोग बेचैन हो गये। स्वामीजी (हरिमोहन) ने तुरन्त ही गोस्वामीजी के पैर पकड़कर कहा—"दया करके बचा लीजिए। हरकान्त को पिशाच ने ग्रस लिया है।" गोस्वामीजी एक ही अवस्था में स्थिर बैठे रहकर तनिक मन्द मन्द हँसे। फिर कहने लगे—"अच्छा, हमारा दण्ड तो उठा लाओ!" एक गुरुभाई ने तत्क्षण दण्ड लाकर गोस्वामीजी के सामने रख दिया। गोस्वामीजी ने हाथ में दण्ड लेकर, एक बार मिट्टी में तनिक चोट मारकर, कहा—"ख़ैर, अब मैं निश्चिन्त हुआ।" उसी दिन, उसी समय देवेन्द्र अकस्मात् निर्विष साँप की तरह बिलकुल मुर्दार हो गया। दादा ने लिखा था, उसी समय देवेन्द्र को भीतर ही भीतर न जाने कैसी असह्य यन्त्रणा हो रही थी। हम लोगों को क्लेश का कारण बतलाये बिना ही वह पागल की तरह दौड़ता हुआ न-जाने कहाँ चला गया। शायद गोस्वामीजी की इच्छा से ही देवेन्द्र की सारी शक्ति नष्ट हो गई थी। इसी से वह फिर इस ओर आया ही नहीं। इत्यादि।

मेरे लिए उभय-सङ्कट

गुरुभाइयों ने मुझसे कहा—"भाई, श्रीवृन्दावन में आये हो, बड़े आनन्द की बात है। अब यहाँ पर कुछ दिनों तक ठहर सको तो अच्छा हो। जिनके पास आये हो और जिनके साथ रहना है, वे अब पहले की तरह नहीं हैं, गोस्वामीजी अब कुछ के कुछ हो गये हैं। ये सदा बेढब उग्र भाव को धारण किये हुए बैठे रहते हैं। कुछ कहें चाहे न कहें, उनके बैठने का ढंग और नजर देखने से ही हम लोगों का कलेजा काँपने लगता है। दिन

भर में एक बार भी हम लोग उनके पास नहीं फटकने पाते ; पास बैठने की हिम्मत ही नहीं होती। यदि कभी हममें से किसी को बुलाते हैं तो आवाज सुनते ही हम लोग चौंक उठते हैं। एक बार पीछे और एक बार सामने देखकर, अन्त में धीरे-धीरे, खोपड़ी खुजलाते-खुजलाते सामने जाते हैं। इसके बाद समझ में नहीं आता कि क्या करने से क्या होगा; उनके साथ बातचीत कुछ भी क्यों न हो, अन्त में बुरी तरह धमकी खाकर लौट आते हैं। किसी की थोड़ी सी त्रुटि देख पड़ी कि फिर खैर नहीं है—बुरी तरह शासन करते हैं, कभी-कभी तो कुञ्ज से निकल जाने तक के लिए कहते हैं। इसी से, डर के मारे हम लोग कुञ्ज में जरूरत भर के लिए रहते हैं, बाकी समय को बाहर इधर उधर बिता देते हैं। भाई, तुम तनिक सावधान रहना। गोस्वामीजी की उग्र मूर्ति देखकर हम लोग सदा चौकन्ने बने रहते हैं। पहले मैं तुम्हें ये बातें इसलिए बतला दी हैं कि पीछे धक्के खाकर कहीं तुम्हें जल्दी से न खसक जाना पड़े।" मैंने कहा—"क्यों! क्या तुम लोग कभी गोस्वामीजी का शान्त रूप नहीं देखते?" श्रीधर ने कहा—"सो देखेंगे क्यों नहीं! जब वे शान्त भाव में रहते हैं तब इतने गम्भीर रहते हैं कि उनके पास जाने की किसी की हिम्मत नहीं होती। बहुत ही सङ्कोच होता है। दोनों भाव अतिरिक्त मात्रा में रहते हैं। पहले कभी गोस्वामीजी को ऐसी अवस्था में रहते नहीं देखा। इसीसे सावधान रहने को कहते हैं।"

हमको ग्यारह रुपये दिये हैं।" गोस्वामीजी ने कहा—दाऊजी बड़े ही दयालु हैं! अच्छी तरह जी भरकर उनकी सेवा करो, देख लेना वे तुम्हें किसी चीज़ की कमी न होने देंगे। ऐसा न करोगे तो मुशकिल है।

मुझे मालूम हुआ कि आज सवेरे दामोदर पुजारी ने गुरुदेव से कहा था—"बाबा, भण्डार खाली पड़ा है। आज दाऊजी को भोग किस प्रकार लगेगा!" तब गोस्वामीजी ने उत्तर दिया था—अच्छा, तनिक बाट जोह लो, घबराओ मत; आज तुम्हें कुछ मिल जायगा।

श्री वृन्दावन-वास करने की विधि

सन्ध्या होने से कुछ पहले ठाकुर अपने आप मुझसे कहने लगे—"श्री वृन्दावन में आये हो, अच्छा हुआ। यहाँ तो कुछ काम-काज है नहीं। अब दिनभर खूब साधन-भजन किया करो। रात को भोजन करने के बाद तीन-चार घण्टे सो लिया करो; फिर गहरी रात को उठकर नाम का जप किया करो। गहरी रात में साधन-भजन करने की विशेषता का अनुभव सब जगह होता है। यहाँ का कहना ही क्या है। कुछ दिन नियमानुसार बैठने से ही समझ लोगे कि यह स्थान पृथिवी के और और स्थानों की तरह नहीं है—इसे अप्राकृत धाम कहते हैं। इस धाम के अद्भुत माहात्म्य को समझने के लिए, उन विधियों की रक्षा करके चलना चाहिये जिनकी कि यहाँ के लिए व्यवस्था है। किसी तीर्थ में रहना हो तो उस स्थान के लिए जो विशेष-विशेष विधि-निषेध हैं उनका प्रतिपालन न किया जाय तो उस स्थान का ठीक-ठीक माहात्म्य नहीं समझ पड़ता। यहाँ रहने के लिए (१) हिंसा छोड़नी पड़ती है, (२) पराई निन्दा को विष की तरह छोड़ना पड़ता है, (३) वृथा समय नहीं गँवाना होता, (४) जो वस्तु भगवान् को निवेदित नहीं की गई उसको कभी न खाय, और (५) सदा साधन-भजन में रहना चाहिए। कुछ समय तक इन नियमों को मानकर चलने से धीरे धीरे मालूम हो जायगा कि यह धाम क्या चीज है। जो लोग यहाँ पर दो पाँच दिन ठहर कर चले जाते हैं वे भला इस स्थान के माहात्म्य को

किस तरह समझ सकेंगे ? गर्भवती स्त्रियाँ जिस प्रकार भले-चङ्गे शरीर से नियमों की रक्षा करती हुई दस महीने के बाद सन्तान को उत्पन्न करती हैं उसी तरह बहुत दिनों तक इन स्थानों में रहना चाहिए। कम से कम एक वर्ष तक नियमानुसार रहने से धाम के प्रभाव का कुछ पता लग जाता है। मैं तो यह सब कुछ जानता नहीं था। परमहंसजी की आज्ञा से कुछ समय तक यहाँ रहने से ही अब दिन पर दिन स्थान का अद्भुत माहात्म्य देखकर दङ्ग हो रहा हूँ। नियम से खूब साधन करो—बहुत लाभ होगा। इस धाम का विचित्र प्रभाव है।" मैंने पूछा—"गर्भ धारण करके तन्दुरुस्त शरीर से रहने पर दस महीने के बाद जिस प्रकार सन्तान उत्पन्न होती है उसी प्रकार तीर्थ के नियम का पालन रीति से करके बहुत समय तक तीर्थ में वास करने पर क्या तीर्थदेवता ही पुत्ररूप में प्रकट होते हैं ?"

ठाकुर ने कहा—"पुत्ररूप की बात नहीं है; वे अपने रूप में ही प्रकट होते हैं। गर्भ-धारण की तरह नियम धारण करके तिर्थवास करे तब तो ?"

ब्रह्मचारी जी का खेद और अन्तिम बात

बारोदी के ब्रह्मचारीजी के अकस्मात् शरीर छोड़ने की खबर सुनने से मुझे बड़ा कष्ट हुआ। मैंने गोस्वामीजी से पूछा—'ब्रह्मचारीजी तो कहते थे कि और भी सौ वर्ष तक रहेंगे। उन्होंने इतनी जल्दी शरीर कैसे छोड़ दिया? किस बीमारी से उनकी मृत्यु हुई?'

गोस्वामीजी—महापुरुषों की कहीं मृत्यु होती है ? रोग—वह भी एक दिखाने के लिए। उन्होंने तो अपनी खुशी से शरीर छोड़ा है। कहा—अब उनके रहने की कुछ आवश्यकता नहीं है। उनके रहने से उलटा औरों का नुकसान होगा।

मैंने कहा—अपनी खुशी से उन्होंने शरीर को क्यों छोड़ दिया ? शरीर छोड़ने से पहले क्या उन्होंने आपसे कुछ कहा था ?

गोस्वामी जी—हाँ, बहुत कुछ कहा था। जिस दिन उन्होंने शरीर छोड़ा है उससे पहले की रात भर वे यहीं पर थे। सारी रात उनके साथ मेरा झगड़ा होता रहा। मुझसे बारबार जिद करके कहने लगे—"तू जाकर मेरे आसन पर

बैठ ; मैं अब देह में न रहूँगा।" मैंने कहा—"यहाँ पर एक वर्ष तक रहने का संकल्प करके मैंने आसन डाला है ; इस धाम को छोड़कर मैं हट नहीं सकता।" उन्होंने कहा—"तो मैं इस शरीर को छोड़ दूँ?" मैंने कहा—"आप जैसा चाहें, वैसा करें। आपकी देह के लिए मुझे तनिक भी माया-ममता नहीं है।"

गोस्वामीजी की बात सुनकर मैंने पूछा—आपके साथ झगड़ा किस लिए हुआ?

गोस्वामीजी—और कुछ नहीं, झगड़ा तुम्हीं लोगों के लिए हुआ। ब्रह्मचारी जी के यहाँ जाकर उनकी बातचीत सुनने से तुम लोगों में से किसी-किसी का बहुत नुकसान हो गया है। इसी से मैंने उनसे कहा कि आपने अद्वैत-वाद की शिक्षा देकर, किसी-किसी को अदृष्ट प्रारब्ध कह-कहकर, उनके मन को बिगाड़ दिया है। वे लोग साधन-भजन को छोड़-छाड़कर कुछ के कुछ हो गये हैं। अब उनका सुधार होना कठिन है। लोगों का आप ऐसा ही उपकार करते हैं! उन्होंने कहा—"अरे जिसका जैसा संस्कार है वह मेरी बात को वैसी ही समझता है। मैं क्या करूँ? एक एक आदमी मुझको एक एक प्रकार का बतलाता है। लेकिन मुझे किसी ने पहचाना नहीं, समझा नहीं। अपने लिए तो मुझे कुछ भी जरूरत नहीं, मैं तो उन्हीं लोगों के लिए हूँ। जब उन्होंने मुझे नहीं पहचाना, मेरे द्वारा उनका रत्तीभर भी उपकार न होगा, तब फिर और बने रहने में क्या लाभ है? मैं शरीर को छोड़े देता हूँ।" मैंने देखा कि अब सचमुच उनके द्वारा किसी का कुछ उपकार न होगा। उनकी बातों को मनुष्य सचमुच नहीं समझते हैं ; उनका भाव और उनकी भाषा दूसरे ही प्रकार की है। इसीसे और कुछ समय तक बने रहने के लिए मैंने उनसे अनुरोध नहीं किया।

मैं—ब्रह्मचारीजी का भाव चाहे हम लोग न समझ सकें—तो क्या हम लोग बातें भी न समझ सकते?

गोस्वामीजी—समझते कहाँ हो? एक आदमी ने जाकर ब्रह्मचारीजी से कहा, 'महाशय, आपने शास्त्र की विधि के अनुसार स्त्री-सङ्ग करने के लिए कहा था, किन्तु यह मुझसे नहीं बनता। काम-वासना मुझमें बहुत अधिक है। अब मैं क्या करूँ?'

ब्रह्मचारीजी ने उससे कहा—'यदि नहीं रुक सकते हो तो क्या करोगे ? जाकर वेश्या-गमन करो, व्यभिचार करो।" उसने आकर मुझसे कहा—"महाशय, ब्रह्मचारीजी ने मुझसे वेश्या-गमन करने के लिए कहा है। महापुरुष की बात मान कर वैसा काम करने से कभी पाप तो न होगा।" यह बात सुनने से मुझे सन्देह हुआ। 'ब्रह्मचारीजी कभी क्या ऐसी बात कह सकते हैं ? उनकी बात का कभी वैसा भाव नहीं है।' मेरे ऐसा कहने से वह भला आदमी बार बार ज़िद करके कहने लगा—"महाशय, मैं झूठ नहीं बोलता। उन्होंने साफ़ कह दिया है कि जाकर वेश्या-गमन करो।" ब्रह्मचारीजी से भेंट होने पर मैंने उनसे कहा, "आप यह सब क्या करते हैं ? आपके उपदेश से लोगों का सत्यानाश होगा, सब धर्म-कर्म को जलाञ्जलि देंगे। मनमाने व्यभिचार से समाज ध्वंस हो जायगा ! 'जाओ, वेश्या-गमन करो', 'व्यभिचार करो', 'रिशवत लो', आपकी इन बातों को मानकर मनुष्य बेढब काम कर बैठेंगे !" सुनकर ब्रह्मचारीजी ने कहा—"अरे, तू कहता क्या है ? वे साले मेरे पास आते किस लिए हैं ? जब मेरी बात समझते नहीं हैं तब मुझसे पूछ-ताछ क्यों करते हैं ? जो लोग विधि के अनुसार स्त्री-सहवास करने में असमर्थ हैं उन्हीं से कह देता हूँ कि 'जाकर व्यभिचार करो', 'वेश्या-गमन करो।' इसका यह मतलब कब है कि अन्य स्त्री से सहवास किया जाय ? मैंने बाजारू औरत के पास जाने को नहीं कहा है। शास्त्र-विरुद्ध आचरण ही तो व्यभिचार है ; शास्त्र-विधि को न मानकर अपनी स्त्री से सहवास करना भी तो वेश्या-गमन है। मैंने तो ऐसे ही व्यभिचार, ऐसे ही वेश्यागमन की बात कही है।" एक बार एक ब्राह्मसमाजी ने ब्रह्मचारीजी के पास जाकर यह चर्चा छेड़ी कि ईश्वर साकार है या निराकार। उनकी बात सुनकर ब्रह्मचारी जी ने कहा—"मैं ईश्वर के मुँह में टट्टी फिरता हूँ, उसी के मुँह में पेशाब करता हूँ।" यह सुनकर वे बहुत ही नाराज़ होकर चले गये। दस आदमियों के आगे कहने लगे, "ब्रह्मचारी तो बड़ा पाखण्डी है, परले सिरे का नास्तिक है। वह ईश्वर के मुँह में हगने-मूतने की बात कहता है।" ब्रह्मचारीजी से पूछा तो उन्होंने कहा, "अरे उन्हीं ने अपने आप बहुत ऊँची अवस्था की बात कही थी। तब फिर मेरी वह बात सुनकर वे चिढ़ क्यों

गये ? उन्होंने कहा, 'ईश्वर सर्वव्यापी है ।' मैंने कहा, उसी ईश्वर के मुँह में मैं टट्टी फिरता हूँ, पेशाब करता हूँ। तुम्हीं लोग न बतलाओ कि जब ईश्वर सर्वव्यापी है तब मैं पाखाना और पेशाब करने कहाँ जाऊँगा ?" ब्रह्मचारीजी की सारी बातें इसी तरह की थीं। उनकी बातों को न समझ सकने से बहुत गड़बड़ हो गया है।

मैं—उन्होंने मुझे बहुत भरोसा दिया था ! यदि वे बने रहते तो वह सब कर देते।

गोस्वामीजी—उसके लिए चिन्ता ही क्या है ? मैं किस लिए हूँ ? तुम लोगों से जैसा करने को कहता हूँ वैसा किये जाओ। तुम लोगों के लिए जो कुछ करना है वह सब मैं ही करूँगा। उसके लिए तुम लोगो को और किसी पर भरोसा न करना पड़ेगा। तुम लोगों को कुछ भी कमी न रहेगी। समय पर सब पूर्ण हो जायगा।

मैंने पूछा—ब्रह्मचारीजी क्या फिर जन्म ग्रहण करेंगे ?

गोस्वामी जी—हाँ, उनका काम है। वे शीघ्र ही बुद्धदेव की तरह पूर्ण ज्ञान लेकर जन्म लेंगे।

गुरुदेव के साथ बडी देर तक ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध मे बातचीत होती रही। उससे मैंने यही समझा कि मानो गोस्वामीजी ने ही ब्रह्मचारी जी को हटा दिया है। यदि ठाकुर ब्रह्मचारीजी से एक बार भी ससार में बने रहने के लिए कहते तो वे इतनी जल्दी कभी अपना शरीर न छोडते।

अन्त में गोस्वामीजी ने कहा—बहुत लोग उनके भाव और भाषा को न समझकर मुश्किल में पड़ चुके हैं। मैंने ब्रह्मचारीजी से कहा था कि "जिस तरह से और जिस रूप मे बात कहने से लोग उनका ठीक-ठीक मतलब समझ जायँ उस तरह से वे उन लोगों से बातचीत क्यों नहीं करते ?" इस पर ब्रह्मचारीजी ने कहा—"हाँ ! अब मैं उनकी भाषा सीखने जाऊँगा न ? वे लोग मेरे पास आते ही किस लिए हैं ? मैं तो किसी को बुलवाता नहीं हूँ।"

सद्गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

गुरुदेव ने हम लोगों के जीवन की अनन्त उन्नति का कुल भार ले लिया है, और

उसी मार्ग पर वे स्वयं हम लोगों को ले जायेंगे। गुरुदेव के मुँह से यह बात सुनकर मुझे बड़ा भरोसा हो गया है। मुझे इसलिए सचमुच बड़ी शर्म लगने लगी कि मैंने ब्रह्मचारी जी का भरोसा कर रक्खा था। अब गोस्वामीजी से और कुछ न पूछकर मैं अपनी इच्छा से नाम का जप करने लगा। किन्तु धीरे धीरे मेरे मन में फिर एक आन्दोलन उपस्थित हुआ। मैंने सोचा, "यदि सारी कमी को गोस्वामीजी ही दूर कर सकते हैं तो फिर मैं इतनी विडम्बना में क्यों पड़ा हूँ? जो इतने दयालु हैं वे क्या कभी दूसरे का क्लेश हरने की सामर्थ्य रखते हुए उसे बिना दूर किये चुप बैठ सकते हैं?" ये बातें गोस्वामीजी से पूछने का अवसर मैं ढूँढने लगा, इस समय एक बार मेरी ओर देखकर वे अपने आप कहने लगे—मन लगाकर साधन करते जाओ। अभी फलाफल पर दृष्टि मत रक्खो। समय पर फल मिलेगा। समय आये बिना कुछ नहीं होता। सभी कामों के लिए एक निर्दिष्ट समय रहता है। देखो, पेड़ में फूल और फल लगने का एक एक समय होता है। किसान लोग जो खेती करते हैं, उसका भी एक समय निर्धारित है। समय का उल्लंघन करके कोई कुछ नहीं करता। तुमने देखा नहीं है—किसान बीज बोने से पहले कितना परिश्रम करते हैं? समय पर जुताई-गोड़ाई करके, खेत से कूड़ा-कचरा हटा करके, उसे साफ कर डालते हैं, इसके बाद बीज बोते हैं। बीज में जब अँखुए फूटते हैं तब फिर भलीभाँति खेत को निरा देते हैं। इतना करने पर ही वे पौदे पनपते हैं और खासी फसल होती है। जो किसान खेत को जोत-गोटकर साफ नहीं करते हैं उनके खेत की फसल को, तरह-तरह के झाड़-झंखाड़ पैदा होकर, मटियामेट करने लगते हैं। उस समय झाड़-झंखाड़ को उखाड़ते-उखाड़ते किसानों का नाक में दम हो जाता है और उन पौदों में फसल भी अच्छी नहीं आती। किसानों की दुर्दशा तो हो ही जाती है, फसल भी किसी काम की नहीं होती। सब बातों को इसी तरह समझो। ठीक समय पर ही किसान लोग सब कुछ कर लेते हैं, समय टल जाने पर कुछ करने से वैसा अच्छा नहीं होता। जैसा कहा जाता है, वैसा करते जाओ। कुछ भी कमी न होगी। समय पर सब कुछ होगा। खूब नाम का जप करो।

गोस्वामीजी की ये बातें सुनकर मैंने सोचा कि तो फिर लोग सद्गुरु का आश्रय लेते

क्यों है ? मैंने पूछा—"जिसका जो होना है वह तो समय पर होगा ही। उसके लिए उपाय करें चाहे न करें, गुरु की सहायता मिले चाहे न मिले, वह तो अपने आप होगा। तब फिर सद्गुरु का आसरा लेने से लाभ ही क्या हुआ? क्या सद्गुरु कृपा करके चाहे जब एक अवस्था को नहीं खोल सकते? यदि अपने समय पर ही सब कुछ हो तो फिर 'कृपा' शब्द का अर्थ क्या है?"

गोस्वामी जी ने कहा—सद्गुरु की कृपा से सब कुछ हो सकता है; और गुरु जब चाहें तभी सब कुछ कर सकते हैं—यह बात बिलकुल ठीक है। किन्तु इसमें फायदा क्या है? एक वस्तु का मूल्य मालूम हुए बिना ही अगर वह सहज में मिल जाय, तब तो उसके लिए प्रयत्न नहीं होगा। जिस वस्तु की जितनी ही अधिक ज़रूरत मालूम होगी उसके मिल जाने पर उसकी उतनी ही कदर की जायगी; जिस वस्तु के न रहने पर जितना क्लेश होगा उसकी प्राप्ति से उतना ही अधिक आनन्द होगा। गुरु यदि एकाएक कोई अवस्था प्रदान कर दें तो फिर उस अवस्था की मर्यादा नहीं समझी जाती! इसी लिए साधन भजन करके, प्रयत्न करके लोग जब समझ लेते हैं कि एक अवस्था को प्राप्त करना कितना कठिन है, वह कितनी दुर्लभ है, तब गुरुजी कृपा करके वह अवस्था प्रदान करते हैं। पहले वस्तु का मूल्य बतला कर फिर वह गुरुजी शिष्य को देते हैं। बस, यही नियम है।

मैंने कहा—"माना कि वस्तु की मर्यादा की रक्षा न कर सकने, उसकी मर्यादा न समझने से वह हमें नहीं मिलती। किन्तु मैं तो ऐसी वस्तु नहीं माँगता जिसको पाकर भी फिर खोना पड़े। मेरे भीतर जो गन्दगी है, व्यर्थ को चीज है, उसे हटा दीजिए, इतना ही मेरे लिए बहुत है। गुरु की कृपा से जब सभी कुछ हो जायगा तब क्या फिर मुझे भी कुछ करना चाहिए?

मेरी बातें सुनकर गुरुदेव थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। फिर बड़े स्नेह से मेरी ओर देखकर कहने लगे—"हम जो कुछ कहते हैं वही करते जाओ। श्वास प्रश्वास में नाम का जप करने की खूब चेष्टा करो। नाम-साधन से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। हमने अपने जीवन में नाम-साधन का फल पाया है। एक बार उस तरह नाम-साधन करो तो सही, देखें कैसे फल नहीं मिलता है। पहले

पहल नाम का जप करने से विरक्ति होती है; किन्तु इसीसे उसे छोड़ न देना चाहिए। विरक्ति होती है तो होने दो। उससे तनिक भी हानि नहीं है। नाम का जप खूब किया करो। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करने से, धीरे-धीरे, प्रारब्ध कट जाता है। तब फिर अच्छी-अच्छी अवस्थाएँ भी प्राप्त होने लगती हैं। प्रारब्ध को काट डालने का इससे उत्कृष्ट उपाय नहीं है।" यह कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। मैं भी धीरे धीरे नीचे आकर, दाऊजी के मन्दिर के बरामदे में जा बैठा। थोड़ी ही देर में दाऊजी की आरती होने लगी। लेकिन मुझे अच्छा न लगा। मैं फिर ऊपर जा बैठा। जोर-शोर से पेट में दर्द होने लगा।
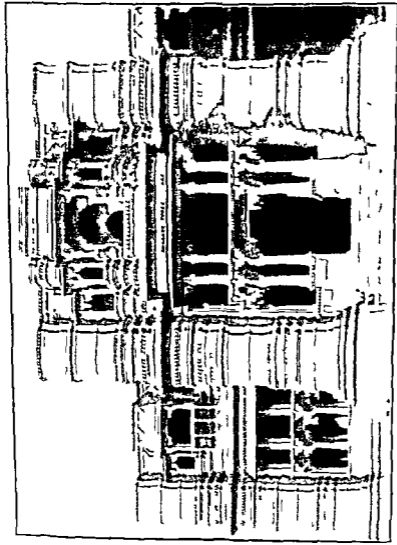
श्रीश्रीगोपीनाथजी का प्राचीन मन्दिर—श्रीवृन्दावन

देखते वे मल्लवेश में नृत्य करके उस भीड़ के बीच, चौड़ी सड़क पर, बिजली की तरह तेज़ी से दौड़ने लगे। नहीं मालूम, किस तरह उतनी बड़ी भीड़ के भीतर बेरोक-टोक गति से गोस्वामीजी की भारी देह हवा में मानों उड़ने लगी। दाहनी ओर, बाईं ओर, सामने की ओर, पीछे की तरफ़ जब जिस ओर वे दौड़ पड़े उसी ओर भावोच्छ्वास का प्रबल तूफ़ान उठने से ग़ज़ब की हलचल मच गई। गोस्वामीजी की जल्दी-जल्दी हुङ्कार और बार बार हरिध्वनि सुनकर सभी को मानों तन-बदन की सुधि न रही। वैष्णव लोग स्थान-स्थान पर भाव के आवेश में बेहोश होकर पड़ रहे। इसी समय गोस्वामीजी कीर्तन के स्थान में सब जगह दौड़-धौड़कर, स्थान स्थान पर एक-एक बार चकित की तरह खड़े होकर, तुरन्त ही सामने की ओर दोनों हाथ फैलाकर "जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन !" कहते-कहते पृथ्वी में गिरकर लोटने लगे। सारे शरीर में ब्रज की रज लपेट कर वे तुरन्त ही उछलकर खड़े हो गये ; और पहले की अपेक्षा अधिक उद्योग के साथ हरिध्वनि करके नृत्य करने लगे। भावोन्मत्त श्रीधर बहुत ऊँचे कूद-कूदकर ओढ़ने के कम्बल उड़ाकर गोस्वामीजी के आगे आगे चले। उनका हुङ्कार गर्जन और अद्भुत उछलना देखकर वैष्णव लोग भी मत्त हो गये। उन लोगों के विचित्र भाव के वेग को सहने में असमर्थ होकर मैं पीछे की ओर हट आया। इसी समय मैंने अपने पीछे की ओर मुड़कर देखा कि गोस्वामीजी के पुत्र श्रीमत् योगजीवन दौड़े चले आ रहे हैं। मैं जानता था कि योगजीवन ढाका में, गेण्डारिया आश्रम में, हैं, अकस्मात् उन्हें इस समय कीर्तन-स्थल में मौजूद देखने से मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सङ्कीर्तन-स्थल में गोस्वामीजी को देखकर योगजीवन मस्त हो गये। वे बड़ी दूर से ही ठाकुर को पकड़ने के लिए दोनों हाथ फैलाये हुए बार बार आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगे, किन्तु मतवाले की तरह डगमगाते हुए पैरों से चलने में पग-पग पर दाहनी और बाईं ओर गिर-गिर पड़ने लगे। मैंने योगजीवन को सँभाल लिया। इसी समय गोस्वामीजी अकस्मात् पीछे की ओर मुँह फेर कर खड़े हो गये और योगजीवन की ओर पलभर स्थिर दृष्टि से देखकर ज़ोर-ज़ोर से हरिध्वनि करने लगे। योगजीवन मुँद रही आँखों से गोस्वामीजी की ओर लहमे भर देखकर बेहोश होकर गिर पड़े।

सङ्कीर्तन के साथ-साथ गोस्वामीजी गोपीनाथजी के मन्दिराङ्गन में पहुँचे। भावविह्वल योगजीवन को लिये हुए थोड़ी देर में मैं भी वहाँ जा पहुँचा। मन्दिर के आँगन में जाकर श्रीश्रीगोपीनाथजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते ही गोस्वामीजी की समाधि लग गई। कोई तीन

बजे तक उन्हें बाहरी चेतना नहीं हुई। समाधि टूटने पर गोस्वामीजी के साथ हम सभी लोग कुञ्ज में लौट आये।

श्री वृन्दावन में माताठाकुराणी का आना।

दाऊजी का मन्दिर

श्रीमत् योगजीवन गोस्वामी अपनी छोटी बहन कुतूबुडी (श्रीमती प्रेमसखी) और माता श्रीयुक्तेश्वरी योगमाया देवी को लेकर आज श्रीवृन्दावन में आये हैं। कुञ्ज में पहुँचते ही मैंने उन लोगों को देखा। माता ठाकुराणी के आ जाने से हम सब लोग बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने भी हम लोगों का खासा आदर किया। किन्तु गोस्वामीजी ने उनसे हिल-मिलकर कुछ बातचीत नहीं की। साधारण रीति से दो-चार बातों में गेण्डारिया का हाल-हवाल पूछकर अपने आसन पर चुपचाप बैठ रहे। मैंने सुना कि माताठाकुराणी इस दफा गोस्वामीजी को किसी प्रकार की खबर दिये बिना ही यहाँ आ गई हैं। गोस्वामीजी के शरीर की दुरवस्था का हाल विशेष रूप से जानकर वे बेचैन हो गई थीं। उनके उपस्थित न रहने से गेण्डारिया-आश्रम में अनेक प्रकार की असुविधा होगी, यह समझकर भी वे उसकी परवा न करके चली आई हैं। वे गोस्वामीजी के शरीर की ओर टकटकी लगाकर देखती हुई दङ्ग हो गईं।

इस छोटे से तङ्ग मकान में हम लोगों के ठहरने का सुभीता गोस्वामीजी ने स्वयं कर दिया। हम लोगों के ठहरने को नीचे जगह नहीं है। मकान बहुत छोटा है। कुल मकान में कोई ५।६ कट्ठे ज़मीन होगी। पूर्व ओर इस मकान का सदर दरवाज़ा है। इस दरवाज़े में होकर भीतर जाने पर सामने ही १०।१२ हाथ के अन्तर पर पूर्वद्वारी दाऊजी महाराज का मन्दिर है। सामने एक बरामदा है। नीचे मन्दिर से सटे हुए, दक्खिन ओर, सिर्फ दो कमरे हैं। एक कमरा कुछ बड़ा है; उसी में ठाकुरजी के लिए भोग बनता और वहीं प्रसाद पाया जाता है; पीछे की ओर के छोटे कमरे में एक ब्रह्मचारी रहते हैं। ब्रह्मचारीजी वाले कमरे के पास होकर ऊपर जाने का ज़ीना है। यह ज़ीना ऊपर के लम्बे बरामदे के पश्चिम ओर गया है। बरामदे से सटे हुए, दक्खिन ओर, पास ही पास तीन कमरे हैं। ज़ीने से ऊपर पहुँचने पर पहले ही कमरे में गोस्वामीजी का आसन है। इसमें, एक भी जङ्गला न होने से, दिन को भी अँधेरा सा बना रहता है। इस कमरे के दरवाज़े के

पूर्व में, उक्त बरामदे में ही गोस्वामीजी का आसन दिनभर बिछा रहता है। गोस्वामीजी सवेरे से शाम तक इसी आसन पर उत्तर मुँह बैठे रहते हैं। मकान के उत्तरी हिस्से में थोडी सी खुली हुई जगह है अतएव बरामदे से देखने में कुछ आड नहीं पडती। गोस्वामीजी के आसनघर के पूर्व ओर, अर्थात् बीचवाले कमरे में, हम लोगों के रहने का प्रबन्ध हुआ। सबसे पीछे के, पूर्व ओर के, कमरे में कुतूबुडी और योगजीवन समेत माताठाकुराणी रहेंगी। हम लोग जिस कमरे म हैं इसमें भी काफी उजेला नहीं रहता। इसलिए दिन को हम लोग माताठाकुराणी वाले कमरे में, जब तक चाहें, रह सकेंगे। उक्त कमरे म पूर्व ओर एक बडा-सा बङ्गला है, इस कारण वह कमरा खासा साफ है। गोस्वामीजी के आसन से यह कमरा कुछ अन्तर पर है, इस कारण हम लोगों को बातचीत करने का खासा सुभीता हो गया है।

ठाकुर की कृपादृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति।
अनेक बातें

श्रीवृन्दावन में आने से मेरे पित्तशूल रोग म कुछ भी कमी नहीं जान पडती। रात को

श्रावण कृ० ५ रविवार

जब तक नींद नहीं आती तब तक यह विषम यन्त्रणादायक शूल दम नहीं लेने देता। तीसरे पहर भी गोस्वामीजी के पास थोडी देर तक बैठ नहीं सकता, बिस्तरे पर पडा रहता हूँ। जिस दिन से यहाँ आया हूँ उसी दिन से यह दर्द मानों और भी बढ रहा है। मुझे बहुत ही दुर्बल देखकर गोस्वामीजी अपने खाने के थोडे से दूध में से भी क़रीब क़रीब आधा प्रतिदिन मुझको दे देते हैं। मैंने पूछा—"आप अपने खाने के थोडे से दूध में से भी मुझे आधे के लगभग क्यों दे डालते हैं? मुझे तो दूध की कुछ ज़रूरत नहीं है।"

गोस्वामीजी ने कहा—"तुम्हें बचपन से दूध पीने की आदत पड़ी हुई है। यदि इस समय न पियोगे तो बीमारी हो सकती है।" मैं दूध नहीं पीना चाहता हूँ तो भी ये ज़बर्दस्ती रोज़ मुझे दे देते हैं।

तडके यमुना-स्नान करके आ गया और गोस्वामीजी के पास बैठकर नाम का जप करने लगा। तनिक दिन चढते ही मेरा दर्द बहुत बढ गया। दर्द के मारे मैं बेचैन

हो गया। कहीं गोस्वामीजी को मालूम न हो जाय, इसलिए देर तक साँस को रोक-रोक कर एक एक बार, धीरे धीरे गहरी साँस छोड़ने लगा। गोस्वामीजी की समाधि लगी हुई थी। इसी समय अकस्मात् वे दो-तीन बार देह को हिला-डुलाकर चौंक से पड़े। फिर बड़े स्नेह से मेरी ओर देखने लगे। उनकी आँखें डबडबा आईं। कहने लगे—"ओफ! तुम्हें इतनी तक्लीफ है! अच्छा, अब तुम्हें यह कष्ट न भोगना पड़ेगा।" अब उन्होंने दो-तीन बार मेरी ओर देखकर आँखें बन्द कर लीं। इस समय गोस्वामीजी का मुँह लाल होकर फूल गया। उनकी फिर समाधि लग गई।

यहाँ पर किसी को मालूम नहीं कि मुझे शूल की वेदना होती है। गोस्वामीजी को कैसे मालूम हो गया? और उन्होंने यही क्यों कहा कि "अब तुम्हें यह कष्ट न भोगना पड़ेगा"? यह सोच विचार करता हुआ मैं नीचे चला आया।

भोजन करने के बाद मैं ठाकुर के पास बैठकर नाम का जप कर रहा था कि तनिक अन्यमनस्क हो गया। इस समय धीरे धीरे, न-जाने कब, मेरा दर्द घट गया। थोड़ी देर में दर्द को बिलकुल हट जाते देखकर मैं चौंक पड़ा। सोचा, 'भला यह क्या हुआ? इतने दिनों से जिस दुःसह वेदना को मैं लगातार भोगता आया हूँ वह अकस्मात् कहाँ चली गई?' इस असम्भव घटना को देखकर मैं थोड़ी देर के लिए भौंचक्का-सा रह गया। फिर याद पड़ा 'शायद यह मेरे गुरुदेव की ही कृपा है।' जो हो साफ-साफ यह जानने के लिए कि क्या सचमुच दर्द से पीछा छूट गया, मैंने रात को कुछ अधिक मात्रा में अरहर की दाल और रोटी खाई। मिर्चा और खटाई भी बहुत खाई। किन्तु सारी रात मैं बड़े आराम से सोता रहा, तनिक से भी दर्द का अनुभव न हुआ।

आज सबेरे यमुना स्नान करके आने पर मैंने देखा कि गुरुदेव अपने स्थान पर स्थिर बैठे हुए हैं, किन्तु उनका चेहरा बिलकुल स्याह हो गया है। ठाकुर के चेहरे की यह हालत देखकर मेरा हृदय टूक-टूक सा हो गया। मैं तुरन्त ही हाथ की धोती फेंककर, चिल्लाकर, गिर पड़ा। ठाकुर के पैर पकड़कर मैंने रोते-रोते कहा—"मेरी बीमारी अपने ऊपर लेकर आप स्याह हो गये हैं। मेरा रोग मुझी को दे दीजिए, उसे मैं ही भोगूँगा।" ठाकुर ने मेरा

श्रावण कृष्ण ६ सोमवार
७ वीं जुलाई १८९०

हाथ छुडा करके कहा—"वह क्या ? ऐसा क्यों करते हो ? भोगना-ओगना वगैरह कुछ भी नहीं है। किसकी बलाय कौन लेता है !"

इतना ही कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। मुझे और कुछ पूछ-ताछ करने का अवसर भी न मिला। मैं बैठा-बैठा रोने लगा। याद पडने लगा, "ओहो ! ठाकुर मेरे लिए कितनी दुःसह यन्त्रणा सह रहे हैं !" ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा था—"यह प्रारब्ध का रोग है, इसको भोगना ही पड़ेगा। अभी हाथ फेरकर इसे हटा सकते हैं, किन्तु ऐसा करने से भी अन्य जन्म मे फिर इसे भोगना पड़ेगा।" अगर मै उस समय ब्रह्मचारीजी की बात मान लेता और उन्हें छाती पर हाथ फेर लेने देता तो इस समय मेरे ठाकुर की छाती में दारुण शेल न बिंधता। बीमारी की पीडा सहने की अपेक्षा मुझे यह क्लेश अधिक दुःख देने लगा। मैं मन ही मन प्रार्थना करने लगा—"ठाकुर, यह आशीर्वाद दीजिए कि आपकी इस दया को मैं अपनी जिन्दगी में न भूलूँ। मुझे भला चङ्गा रखने के लिए आपने इस भयकर रोग को लेकर अपनी छाती मे आग लगा ली, इस बात को याद रक्खे हुए ही मेरा यह जीवन बीते।"

भोजन करने के बाद कुछ समय गुरुभाइयों के साथ गप शप करने में बीत जाता है। प्रतिदिन ३ बजे ठाकुर के पास बैठकर हरिवंश पढ़ा करता हूँ। उसे सुनकर ठाकुर बहुत ही आनन्दित होते हैं। पढते समय मैं ठाकुर को बहुत हैरान करता हूँ। हरिवंश का मतलब मेरी समझ में बिलकुल नहीं आता। मैंने ठाकुर से पूछा—"ये बातें मेरी समझ मे नहीं आतीं, सिर्फ पढने से भला क्या लाभ है ?"

ठाकुर—अभी सिर्फ पढ़ते चलो। साधन के द्वारा जब ये तत्त्व प्रकट होंगे तब तुम्हारी समझ मे सब आ जायगा। एक बार पढ़ रखना अच्छा है।

मैं—तत्त्वों के प्रकट होने पर ही तो सब जानूँगा। फिर अभी किस लिए पढ़ूँ ?

ठाकुर—नहीं, पढ़ रखना अच्छा है। प्रत्यक्ष हो जाने पर इन शास्त्र-पुराणों की बातों को देखने से विश्वास और भी दृढ़ हो जायगा।

मैं—मान लीजिए कि बीस वर्ष के बाद एक विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ तो उस समय यह स्मरण क्योंकर होगा कि उक्त विषय का प्रमाण किस ग्रन्थ के किस अंश में है ?

ठाकुर—पढा हुआ रहने से, बीस वर्ष के बाद भी स्मरण बना रहेगा कि अमुक विषय को अमुक स्थल में पढा है।

मैं बड़ी देर तक ठाकुर से तरह-तरह के प्रश्न करता रहा। ठाकुर प्रतिदिन तीसरे पहर श्रीमद्भागवत सुनने के लिए श्रीयुत नीलमणि गोस्वामीजी के घर जाते हैं। उक्त गोस्वामीजी स्वयं श्रीमद्भागवत सुनाते हैं। हम लोग भी ठाकुर के साथ जाया करते हैं। जैसी भागवत ये सुनाते हैं वैसी श्रीवृन्दावन में शायद और किसी ने नहीं सुनाई। एक-एक श्लोक की व्याख्या करने में उक्त गोस्वामीजी घण्टा-घण्टा भर तक लगा देते हैं। ठाकुर ने कहा—ग्रन्थ सुनाते समय गोस्वामीजी की व्याख्या से मानों ज्ञान और भक्ति मूर्तिमान् होकर प्रकट हो जाते हैं। ऐसी असाम्प्रदायिक व्याख्या आजकल नहीं सुनी जाती।

श्रीयुत नीलमणि गोस्वामीजी ठाकुर को काका कहते हैं और बड़ी ही भक्ति करते हैं।

बातचीत के सिलसिले में आज मैंने एक बार ठाकुर से पूछा—"मैंने सुना है कि हम लोगों के विषम मानसिक भोगों का आप ग्रहण कर लेते हैं। तो क्या प्रारब्ध का उत्कट दैहिक भोग भी आपको भोगना पड़ता है?"

ठाकुर—अरे भैया, सभी भोगना पड़ता है।

गोस्वामीजी और माताठाकुराणी का झगड़ा

गोस्वामीजी के शरीर की हालत के बहुत ही खराब होने की खबर पाकर, बहुत ही श्रावण कृ० ७ घबराकर माताठाकुराणी श्रीवृन्दावन में आ गई हैं। ठाकुर ने बार बार मङ्गलवार चिट्ठियाँ लिखकर माताठाकुराणी को गेण्डारिया छोड़कर श्रीवृन्दावन में आने से मना किया था। किन्तु ठाकुर के रोकने पर भी माताठाकुराणी वहाँ, गेण्डारिया में, न ठहर सकीं। गोस्वामीजी के शरीर की हालत का पता पाकर वे बेचैन हो उठीं। किन्तु जब से यहाँ आई हैं तब से वे डर के मारे सकपकाई हुई रहती हैं, न तो गोस्वामीजी के पास जाती हैं और न वहाँ बैठती हैं। किसी काम के लिए ठाकुर भी उनको नहीं बुलाते हैं। माताठाकुराणी दिन भर अपने ही कमरे में बैठी रहती है, हम लोगों के साथ भी अधिक बातचीत नहीं करतीं। आज रात को कोई ११ बजे माताठाकुराणी हिम्मत

बाँधकर गोस्वामीजी के आसन के पास जा बैठीं; और धीरे-धीरे उनको हवा करने लगीं। रात को गोस्वामीजी बेहद गर्मी के मारे अपने कमरे में नहीं रह सकते; वे दिन को जिस बरामदे के आसन पर रहते हैं, उसी पर बैठे-बैठे रात बिता देते हैं। अन्धकूप-सदृश कमरे में, गरमी के मारे, मैं भी नहीं रह सकता; बरामदे में ही रहता हूँ। गोस्वामीजी के आसन से कोई ३ हाथ के फ़ासले पर मेरा बिछौना है। वहाँ पर सोने को मुझसे गोस्वामीजी ने ही कह दिया है। मैं जब तक जागता रहा तब तक ठाकुर की समाधि लगी हुई थी। रात को कोई तीन बजे मेरी आँख खुली; तब मैं चुपचाप सबाद्य खींचे हुए बिस्तर पर पड़ा-पड़ा गोस्वामीजी और माताठाकुराणी का झगड़ा सुनने लगा। श्रीमती शान्तिसुधा (ठाकुर की बड़ी बेटी) गर्भवती हैं; बूढ़ी ठाकुराणी (गोस्वामीजी की सास) बीमार हैं; योगजीवन की स्त्री अभी लड़की ही है; इस दशा में उन सबको गेण्डारिया में छोड़कर माताठाकुराणी का यहाँ चला आना ठीक नहीं हुआ, यह बात गोस्वामीजी बराबर कहने लगे, और उन्होंने तुरन्त ढाका लौट जाने के लिए माताठाकुराणी से जिद करना आरम्भ कर दिया। वे कहने लगीं कि इस समय आपका शरीर जैसा अस्वस्थ और कमज़ोर हो गया है उसको देखते हुए हम दूसरी जगह किसी तरह नहीं जा सकतीं। हम कुछ श्रीवृन्दावन में तीर्थयात्रा नहीं करने आई हैं, हम तो आपकी सेवा करने को आई हैं और यही काम करेंगी। इस तरह बातों के कहते-कहते प्रायः रात बीतने को हुई। तब गोस्वामीजी ने माताठाकुराणी से तनिक गरम होकर कहा—

हमने जिस आश्रम को ग्रहण किया है उसकी मर्यादा की रक्षा, हमारे साथ तुम्हारे रहने से, नहीं होती। तुम्हें श्रीवृन्दावन में रहना हो तो दूसरी जगह जाकर रहो। तुम इस कुञ्ज में न रहने पाओगी। यदि तुम हठ करोगी तो हम और कहीं चले जायँगे, उत्तर कुरु में चले जायँगे।

गोस्वामीजी की अन्तिम बात सुनकर माताठाकुराणी ने फिर कुछ भी नहीं कहा, चुपचाप बैठी रहीं। इधर सवेरा हो गया। मैं शौच के लिए चला गया।

माताठाकुराणी का अद्भुत रीति से अन्तर्धान होना

सवेरे ठीक समय पर उठकर ठाकुर शौच को गये, हम लोग भी नीचे चले आये।

श्रावण कृ० ८ बुधवार

योगजीवन, सतीश, श्रीधर प्रभृति एक एक कर सभी स्नान करने चले गये। मैं भी मुँह धोकर यमुनाजी जाने को तैयार हुआ। इसी समय माताठाकुराणी नीचे आईं। उन्होंने मुझे देखकर कहा—"कुलदा, क्या तू यमुनाजी नहीं जायगा?" मैंने कहा—"हाँ, जाऊँगा तो। क्या आप मेरे साथ जायँगी?" माताठाकुराणी ने कहा—"हाँ, जाऊँगी। तो तुम जाओ न! अपना लोटा मुझे दे दो।" अब वे मेरे हाथ से लोटा लेकर, ८-१० हाथ के अन्तर पर, कुएँ की जगत पर जा खड़ी हुईं। फिर कुल्ला करती हुई बीच-बीच में मेरी ओर देखने लगीं। मैं स्नान करने को जानेवाला था, ५।६ सेकेण्ड के लिए एक बार ठाकुर को प्रणाम करके सिर उठाते ही देखा कि माताठाकुराणी नहीं हैं। कुएँ की जगत पर लोटा रक्खा हुआ है। उनको न देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सोचा, 'इतनी जल्दी माँजी कहाँ चली गई? अभी अभी तो वे यहीं खड़ी थीं। बाहर जाने को रास्ता भी तो किसी तरफ से नहीं है। मकान चहार दीवारी से घिरा हुआ है, चारों ओर साफ है! सदर दरवाज़े से जातीं तो मेरे ही पास से न जातीं!' लोटा उठाकर यही सब सोचता विचारता मैं यमुनाजी को चला गया। यमुना-स्नान करके कुञ्ज में पैर रखते ही योगजीवन ने मुझसे पूछा—"क्यों! तुम माँ को कहाँ छोड़ आये, वे आईं नहीं?"

मैंने कहा—"कहाँ, वे तो मेरे साथ नहीं गई थीं। तो क्या वे इस कुञ्ज में नहीं हैं?" योगजीवन "नहीं" कहकर, हक्का बक्का से होकर, मेरी ओर देखने लगे। तब मैंने रात के झगड़े का हाल सब लोगों को बतलाया। सभी ने अनुमान किया—ठाकुर के ऊपर नाराज़ होकर माताठाकुराणी शायद किसी कुञ्ज में चली गई हैं। थोड़ी देर बाद लौटने पर जब हम लोगों ने देखा कि वे नहीं आई हैं, तब श्रीधर, सतीश, स्वामीजी, योगजीवन और मैं सभी हड़बड़ाकर उनको ढूँढ़ने के लिए रवाना हुए। सवेरे ६॥ से लेकर १ बजे तक वृन्दावन की प्रत्येक कुञ्ज, हाट-बाट-घाट, रास्ता, मन्दिर, बगीचा और यमुना किनारा, सब जगह भली-भाँति उनकी खोज की गई, किन्तु कहीं पर उनका पता न लगा। सभी जान-पहचानवालों से पूछताछ की, किन्तु कोई कुछ टोह न दे सका। १ बजे तक दौड़-धूप करके, सारे वृन्दावन की खाक छानकर, हम लोग थके हुए कुञ्ज में लौट आये। नीचे बैठकर सब लोग सलाह करने लगे, 'अब क्या करना चाहिये?' योगजीवन और श्रीधर बारबार

दाऊजी महाराज का मन्दिर—(दामोदर पूजारी की कुञ्ज, श्रीवृन्दावन)

मुझसे ज़िद करके कहने लगे—"भाई, तुम जाकर माँ का हाल गोस्वामीजी से कहो। आज वे इतने गम्भीर होकर बैठे हुए हैं कि उनके पास जाने की हम लोगों की हिम्मत ही नहीं होती।" दूसरा उपाय न देखकर मैं धीरे धीरे ठाकुर के पास जा बैठा। थोड़ी देर में उन्होंने आँखें खोलीं। मैंने तुरन्त ही कहा—"माताठाकुराणी नहीं मिलती हैं। वे तो अकेली कभी कुञ्ज से बाहर नहीं जातीं। किन्तु नहीं मालूम आज कहाँ चली गई हैं। हम लोग सवेरे से वृन्दावन भर में उनको ढूँढते ढूँढते हार गये ; कहीं उनका पता नहीं लगा।" ठाकुर ने तनिक भी घबराहट प्रकट किये बिना ही सहज भाव से उत्तर दिया—जायँगी कहाँ? पता लगाओ। यमुना-किनारे ढूँढा है?

मैंने कहा—'एक भी जगह नहीं छूटी है। रास्ते के आदमियों तक से पूछताछ की है।' ठाकुर ने पल भर चुप रहकर तनिक मुसकुराकर कहा—ढूँढने से अभी उनका पता न मिलेगा। उनको परमहंसजी ले गये हैं।

मैंने पूछा—परमहंसजी उनको क्यों ले गये?

ठाकुर ने कहा—"कल जब उनसे अन्यत्र रहने को कहा तो राज़ी नहीं हुईं। बहुत समझा बुझाकर कहा, किन्तु किसी तरह राज़ी न हुईं। तब मैंने परमहंसजी को स्मरण किया। उन्होंने उसी समय मुझसे कहा, 'इसके लिए उकताते क्यों हो? तनिक भी फ़िक्र नहीं है। मैं कल ही उन्हें दूसरी जगह ले जाऊँगा।' वे उनको ले गये हैं ; पता लगाना व्यर्थ है।"

मैं—तो क्या अब यहाँ माँजी के आने की सम्भावना नहीं है?

ठाकुर—किसी पर अब उनको माया-ममता नहीं है ; सिर्फ़ कुतू पर थोड़ा-सा आकर्षण है। अतएव उसके लिए आ भी सकती हैं। उस सम्बन्ध में इस समय कुछ साफ़-साफ़ नहीं कहा जा सकता। आना या न आना उनकी मर्ज़ी पर है।

मैं—परमहंसजी ले किस तरह गये? मैंने वहाँ पर उनको तो देखा ही नहीं। माँजी मेरे पास से कुल ८।६ हाथ के फ़ासले पर थीं। ५।६ सेकेण्ड के लिए सिर्फ़ एक बार मेरी नज़र दूसरी ओर थी। इसके बाद उस ओर देखा तो वे नहीं थीं। परमहंसजी आते तो उनको देखता न?

ठाकुर—परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आये थे ; उन्हें देखोगे किस तरह ? वे तो सूक्ष्म शरीर में आकर ले गये हैं।

मैं—परमहंसजी तो सूक्ष्म शरीर में आये थे, किन्तु माँजी तो सूक्ष्म शरीर में नहीं गई हैं। उनके स्थूल शरीर को पल भर में परमहंसजी किस तरह दूसरी जगह ले गये ?

ठाकुर—वे लोग सब कुछ कर सकते हैं। योगी लोग इच्छा करते ही इस स्थूलभूत को सूक्ष्म में परिणत कर सकते हैं ; सूक्ष्म भूत को भी स्थूल में परिणत कर सकते हैं। शरीर के पञ्चभूत को पञ्चभूत में मिलाकर, स्थूल को सूक्ष्म करके वे पल भर में उन्हें ले गये हैं।

मैं—तो परमहंसजी माँजी को ले कहाँ गये हैं ? क्या उन्हें श्रीवृन्दावन में ही सूक्ष्म शरीर में रख छोड़ा है—अथवा और कहीं ले गये हैं ?

गोस्वामीजी—भला श्रीवृन्दावन में क्यों रक्खेंगे ? परमहंसजी उन्हें सीधे मानससरोवर में ले गये हैं।

मैं—तो क्या वहाँ भी माँजी सूक्ष्म शरीर में हैं ?

ठाकुर—यह किस लिए ? वहाँ जाकर वे फिर ज्यों की त्यों हो गई हैं।

मैं—परमहंसजी मानससरोवर में हैं ; वहाँ क्या और भी कोई रहता है—या अकेले परमहंसजी ही रहते हैं ?

ठाकुर—और भी लोग हैं। बहुत से ऋषि, मुनि और देव-देवियाँ वहाँ पर हैं।

मैं—अब वहाँ रहकर माँजी क्या करेंगी ?

ठाकुर—साधन-भजन करेंगी, बहुत आनन्द करेंगी। वहाँ पहुँच जाने पर फिर क्या वापस आने को जी चाहता है ?

मैं—मानससरोवर तो तिब्बत में है। वहाँ देव-देवी और मुनि ऋषि रहते हैं ?

ठाकुर—नहीं, नहीं, यह वह मानससरोवर नहीं है। यह वह मानससरोवर नहीं है जिसका वर्णन तुमने भूगोल में पढ़ा है—वह तो 'मान तलाव' है। मानससरोवर बहुत दूर है—हिमालय के ऊपर है।

मैं—तो क्या हम लोग मानससरोवर में नहीं जा सकते ?

ठाकुर—इस शरीर से किस तरह जाओगे? बहुत ही दुर्गम मार्ग है। खूब योगैश्वर्य न हो तो वहाँ पहुँच नहीं हो सकती। साधारण लोग जिसे मानससरोवर समझते हैं वहाँ तो सहज में जा सकते हैं। वह असल में मानससरोवर नहीं है। मानससरोवर तो कैलास जाने के मार्ग में है।

मैं—तो क्या माताजी, कुतू के लिए फिर आ सकती हैं?

ठाकुर—यह नहीं कहा जा सकता। इतनी सी ममता को वे लोग सहज ही काट सकते हैं।

ठाकुर के साथ बड़ी देर तक मैं बातचीत करता रहा। तीसरे पहर, और-और दिन की तरह, मैं आज भी ठाकुर के साथ भागवत सुनने गया। कुञ्ज में जब वापस आया तब रात हो चुकी थी।

योगजीवन को गृहस्थ आश्रम करने की आज्ञा

श्रावण कृ० ६ बृहस्पतिवार

माताठाकुराणी के अन्तर्धान हो जाने से सभी के दिल में खासी ठेस लगी। योगजीवन बहुत ही बेचैन हो उठे। कहने लगे—न अब गेण्डारिया जायँगे और न गृहस्थी में ही रहेंगे। उन्होंने बिलकुल ही उदासीन होकर जाना चाहा। ठाकुर उन्हें बड़े स्नेह से मधुर उपदेश देकर स्थिर रखने लगे। योगजीवन आज देर तक ठाकुर के साथ बहस करते रहे। ठाकुर ने अन्त में कहा, "तुझे बहुत दिनों तक गृहस्थी में न रहना पड़ेगा, यह खूब समझ ले। शीघ्र ही तेरा सब साफ़ हो जायगा। जब तक वह नहीं हुआ है उतने समय तक गृहस्थी में रहना पड़ेगा। इतना सा कर्म पूरा किये बिना निर्वाह न होगा। अब जाकर ढाका में रह।" बहुत आग्रह समझकर योगजीवन लाचारी से शीघ्र ही फिर ढाका जाने को राज़ी हो गये।

तीसरे पहर जब हम लोग भागवत सुनने जाते हैं, रास्ते के दोनों ओर और सामने केवल माताठाकुराणी को ही ढूँढते रहते हैं। जब माँजी अन्तर्धान हो गई तब ठाकुर ने मुझसे कहा—कुतू पर हमेशा नजर रखना। भागवत सुनने को जाते समय कुतू को हाथ पकड़कर ले जाना। जब कथा सुनने लगो तो उसे अपने पास बिठा लेना। कहीं उसे न ले जायँ।

मैंने पूछा—तो क्या कुतू को भी ले जा सकते हैं ?

ठाकुर—हाँ हाँ, ले जा सकते हैं।

अचम्भे की बात है कि माताजी के लिए कुतू में मुझे तनिक भी उदासी नहीं देख पड़ती। वे दिनभर ठाकुर के पास बैठी रहती हैं उनके साथ बातचीत करने और हँसने बोलने में दिन बिता देती हैं, एक बार भी माँ की याद नहीं करतीं, किसी से माँ के सम्बन्ध में कुछ पूछताछ भी नहीं करतीं। इतनी बड़ी घटना हो गई और मानों कुतू को इसकी कुछ खबर ही नहीं। कुतू को लक्ष्य करके मैंने ठाकुर से पूछा—"माँ के न रहने पर क्या किसी किसी को रत्ती भर भी क्लेश नहीं होता ?" ठाकुर ने कहा—क्लेश तो सभी को हुआ है, पर किसी किसी में धैर्य बहुत अधिक है।

भक्त बुड्ढे वानर का कार्य

ठाकुर का भक्त एक और बुड्ढा बानर है। यह बहुत समझदार है। जिस दिन से ठाकुर ने इस स्थान में आकर अपना आसन लगाया है उसी दिन से यह ठाकुर का नित्यसङ्गी है। सबेरे चाय पीने के बाद थोडी देर तक श्रीवर श्रीचैतन्य चरितामृत पढते हैं। फिर ६ बजे ठाकुर श्रीमद्भागवत का पाठ करना आरम्भ करते हैं। इसी समय बुड्ढा बन्दर आ जाता और ठाकुर के बराबर, घेरे के बाहर बैठ जाता है, वह शान्ति से गाल में हाथ लगाये ठाकुर की ओर देखा करता है; ऐसा जान पडता है कि मानों भागवत सुन रहा है। जब तक पाठ होता रहता है तब तक वह अपने स्थान से किसी तरह नहीं टलता। यदि कोई दुष्ट बन्दर आकर पाठ के समय गडबड करता है तो यह बुड्ढा उसको ऐसी घुर्डकी बताता है कि वह चिल्लाकर भाग जाता है। पाठ होते समय अगर उसे कुछ खाने को दिया जाता है तो वह उसे किसी तरह खाता नहीं है, रख लेता है, दी हुई चीज को पाठ के समाप्त होने पर ही खाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि भागवत सुनने में इस बुड्ढे ने एक दिन भी नागा नहीं किया। बुड्ढा दिन भर कहीं क्यों न रहे, ६ बजे से १० बजे तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान को छोड़कर नहीं रह सकता। यह इस मुहल्ले के बन्दरों का मुखिया है। शरीर इसका खासा हृष्टपुष्ट और बलिष्ठ है। इसको देखने से बडी प्रसन्नता होती है, इसके और भी अद्भुत काम को सोचने से दङ्ग होना पडता है। वृन्दावन भर में घर-घर बन्दरों का बेहद उत्पात है। मालूम पडता है कि इसी बुड्ढे की बदौलत हमारी कुञ्ज में बन्दरों का वैसा ऊधम नहीं है। एक दिन सबेरे अकस्मात् एक बन्दर आकर हम लोगो का लोटा उठा ले गया। इससे टट्टी जाने में बडी असुविधा होने लगी। इसके थोडी ही देर बाद कुञ्ज में बुड्ढा आया। ठाकुर ने उससे कहा—"बुड्ढे, तुम्हारे दल में से एक आकर हमारा लोटा उठा ले गया है। इससे हम लोगों को बड़ी हैरानी है। सो लोटा ला दोगे?" ठाकुर की बात सुनकर बुड्ढा तुरन्त एक ऊँची जगह पर उछल कर पहुँच गया। वहाँ दोनों पैरों के सहारे खड़ा होकर वह चारों ओर ताकने लगा। जो बन्दर हम लोगों का लोटा उठा ले गया था वह ३।४ मकानों के फासले पर एक व्रजवासी के घर की छत पर आ बैठा था। बुड्ढे ने एक बार उसकी ओर इस तरह से घूरकर देखा कि वह लोटे को फेंक कर चिल्लाता हुआ भाग गया।

तब बूढ़े ने धीरे-धीरे जाकर लोटा उठा लिया। फिर उसे लाकर ठाकुर के पास रखकर चुपचाप बैठ गया।

इससे पहले मैंने बन्दर में ऐसी बुद्धि होने की कल्पना तक नहीं की थी। बड़ा आश्चर्य है कि यह बन्दर पालतू न होने पर भी ऐसा बुद्धिमान् और वशवर्ती है। शायद ठाकुर ने कहा है—यह कोई वैष्णव महात्मा हैं, ब्रज-वास करने की इच्छा से वानर की देह रक्खे हुए हैं।

ठाकुर के भोजन की दारुण दुरवस्था

तड़के ठाकुर आसन से उठकर शौच को जाते हैं। जल, लँगोटी और बहिर्वास आदि लिये हुए श्रीधर खड़े रहते हैं। मुँह धोकर ठाकुर ऊपर आकर 'कृष्णदास' को खाने को देते हैं। फिर अपने आसन पर जा बैठते हैं। इसी समय श्रीधर चाय बनाने लगते हैं।

चाय की दुर्दशा देखने से बड़ा कष्ट हुआ। एक पैसे का थोड़ा सा बासी दूध और जरा सी चीनी किसी तरह नसीब होती है। पैसा-कौड़ी पास न होने से बिलकुल मामूली चाय, सस्ते भाव की, फुटकल मँगा ली जाती है। ठाकुर ने कहा कि एक दिन चाय बना लेनेपर पत्तियों को फेंक न दिया जाय, उन्हें सुखा कर रख लिया जाय। चाय न रहने पर उन्हीं सुखाई हुई पत्तियों को पानी में उबालकर ठाकुर को चाय दे दी जाती है। मलेरिया के कारण ठाकुर को मुद्दत से चाय पीने की आदत है। समय पर चाय न मिलने से ठाकुर को असुविधा होती है। किन्तु समझ में नहीं आता कि ऐसी रद्दी चाय को ठाकुर किस प्रकार पी लेते हैं। चाय की इस तरह कमी होने की खबर अगर कलकत्ते में पहुँच जाय तो सैकड़ों गुरुभाई न जाने कितनी बढ़िया चाय भेज दें। किन्तु ठाकुर की मर्जी बिना कोई कुछ नहीं कर सकता। ठाकुर को अनुमति लिए बिना ही मैंने दादा को लिखा कि बढ़िया चाय भेज दीजिए।

ठाकुर के चाय पी लेने पर श्रीधर श्रीचैतन्यचरितामृत के एक अध्याय का पाठ करते हैं। फिर, ६ बजे ठाकुर स्वयं श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते हैं।

दोपहर को किसी-किसी दिन ठाकुर यमुनास्नान करने हैं। फिर १२ बजे सबके साथ, नीचे, रसोईघर में जाकर प्रसाद पाते हैं। प्रसाद का रूप देखने से ही साफ़ समझ

में आ जाता है कि ठाकुर का यह शरीर इतना क्यों सूख गया है। ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आये थे तब बहुत से धनिक भक्तों ने उन्हें बढ़िया मकान में टिकाकर सेवा करने की बहुत-बहुत आग्रह किया था; किन्तु दामोदर के गरीब होने से, उसकी प्रार्थना और ज़िद मानकर ठाकुर ने उसी की कुञ्ज में आकर आसन लगा लिया। ठाकुर की सेवा के लिए जो कुछ हर महीने आता है उसमें से ठाकुर एक कौड़ी भी न लेकर सब दामोदर को, दाऊजी महाराज के भोग के लिए, दे देते हैं। दामोदर ने पहले पहल २।३ महीने दाऊजी का भोग शायद अच्छी तरह ही दिया था। फिर यह खबर पाकर कि ठाकुर के शिष्यों में बहुतेरे मालदार बड़े आदमी हैं, वह तरह-तरह के जाल फैलाने लगा। दामोदर को दृढ विश्वास है कि जब भक्त और शिष्य सुनेंगे कि ठाकुर को भोजन आदि का क्लेश हो रहा है तब वे लोग मुट्ठी भर-भर के रुपये भेज देंगे। इसीसे दामोदर अब दाऊजी की सेवा के लिए रुपये पाते ही सबसे पहले अपने घर के लिए आवश्यक मासिक सामग्री खरीदता है, फिर जो कुछ रुपये बच रहते हैं उनसे किसी तरह दाऊजी की सेवा का प्रबन्ध होता है। कोई तीन महीने से दाऊजी को रोटी, भात और उबले हुए कुम्हड़े का भोग लगता है। बिना नमक और मसाले के, निरे पानी में उबले-हुए कुम्हड़े का भोग पाषाण-मूर्ति दाऊजी को ही हमेशा लग सकता है, किन्तु रक्त-मांस के शरीर से, जो लोग वह प्रसाद पाते हैं वे भला कितने दिनों तक उसकी भक्ति कर सकते और स्वाद से पा सकते हैं?

भर पेट भोजन ठाकुर का एक दिन भी नहीं होता है। किसी प्रकार थोड़े से दूध के साथ मुट्ठी भर भात खाकर ठाकुर उठ आते हैं। सस्ते रद्दी मोटे से आटे की दो एक रोटियों से अधिक नमक और उबले हुए कुम्हड़े के साथ ठाकुर किसी दिन नहीं खा सकते। रात का प्रबन्ध तो और भी बेढब है। दोपहर का उबला हुआ कुम्हड़ा और थोड़ी सी मोटी रोटियाँ रात के लिए रख दी जाती हैं। भूख के मारे जिससे नहीं रहा जाता वही उस सड़े हुए कुम्हड़े और कड़ी रोटी को, गहरी साँस छोड़कर, 'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' कहते-कहते गले के नीचे उतारकर चला आता है। खुशामद करके दामोदर से भोग का तनिक अच्छा प्रबन्ध कर देने के लिए कहा जाता है तो वह रुपये के लिए बङ्गाल में गोस्वामीजी के चेलों के पास खत भेजने का उपदेश देता है। यह हम लोग करते नहीं हैं; अतएव दामोदर हम लोगों को 'पाखण्डी' कहकर इसलिए गाली देता है कि 'गोस्वामीजी के क्लेश

की हम लोग परवा नहीं करते'। हम दो चार आदमी मिल कर दामोदर से पूछते हैं कि हर महीने इतने रुपये पाने पर भी भोग का बढ़िया प्रबन्ध क्यों नहीं करते हो तो वह माला सम्हाला हुआ उपदेश छाँटता है, कहता है—"अरे, भला भोजन भजनवादी। भगत को लोभ नहीं चाहीं।" दामोदर से खुशामद करके भोजन में कुछ अदल-बदल करने के लिए कहा जाता है तो वह उबले हुए कुम्हड़े के बदले उसके छिलके को उबालकर दे देता है। उसको डरवाते हैं कि 'अब रुपया-पैसा हम अपने ही पास रक्खेंगे और ठाकुर के भोग का प्रबन्ध हमीं कर लेंगे", तो दामोदर बड़े उत्साह से सौदा लेने बाज़ार को जाता है और वहाँ से चुन-चुनकर ऐसे भाँटे ले आता है जिनमें कीड़े लगे होते हैं और बाज़ार में जिनका कोई ग्राहक नहीं होता, सूखा-साखा 'पँचमेल' शाक भी ले आता है। बस, इसी को पकाकर देता है और दस-पन्द्रह दिन तक इसी की बड़ाई किया करता है कि कहो कैसा खिलाया! पेट की जलन के मारे हम लोग भागने का मन्सूबा बाँधा करते हैं। हाय भगवान्! और कब तक यह सङ्कट भोगना पड़ेगा। भोजन करने को बैठने पर प्रतिदिन ही दामोदर को पीटने की इच्छा होती है, किन्तु एक दिन भी उससे कुछ कह नहीं सकते। ठाकुर से कहते हैं कि "दामोदर की यह ज्यादती अब तो बर्दाश्त नहीं होती", तो वे मुसकुराकर मीठी बोली में कहते हैं—"दाऊजी जाग्रत देवता हैं। वे सब कुछ देख रहे हैं। समय होने पर वे ही दामोदर की खबर लेंगे। तुम लोग उससे कुछ कहना सुनना मत।" अच्छा, ठाकुर के पल्ले पड़कर देखता हूँ कि अब 'त्राहि मधुसूदन' की पुकार करनी पड़ेगी।

दामोदर के ऊपर दाऊजी महाराज का शासन

आज सबेरे जब ठाकुर चाय पी चुके तब, असमय में, दामोदर पुजारी कुञ्ज में आ

श्रावण कृ० १२ पहुँचा। उसका चेहरा भारी है, किसी से कुछ बोला नहीं। वह काँपता

सोमवार हुआ ठाकुर के आगे प्रणाम करके रो पड़ा। ठाकुर ने पूछा—क्यों दामोदर, क्या हुआ?

दामोदर ने अपने भारी कष्ट में, सिसककर, दोनों गालों में मार कर सिर पीटकर कहा—"बाबा, दाऊजी ने हमका बहुत मारा है। ठाकुर के पूछने पर कि दाऊजी महाराज

ने क्यों मारा, दामोदर ने इस प्रकार कहा—"बाबा, रात के पिछले पहर में सोया हुआ था कि सपने में देखा कि दाऊजी ने आकर एकाएक मुझे दबाकर पकड़ लिया। मेरे दोनों गालों में दोनों हाथों से चाँटे मारने लगे। फिर मुझे जोर-जोर से घूँसे और मुक्के लगा-लगाकर कहने लगे, 'पाखण्डी, तेरी इतनी हिम्मत है? अच्छा भोग नहीं देता; गोस्वामी खाने नहीं पाते। उन्हें भोजन का क्लेश देता है! आज तुझे घूँसे मार-मारकर मार डालेंगे।' दाऊजी की बेहद मार से मैं चिल्लाकर जाग पड़ा; किन्तु मेरे बदन में जो दर्द था उसमें कमी न हुई। यह देखिए, बाबा, मेरे दोनों गाल सूजे हुए हैं। इन सब जगहों में मुझे इस समय तक दर्द हो रहा है।"

ठाकुर ने दामोदर से कहा—दाऊजी महाराज ने तुम्हें दण्ड दिया है—तुम भाग्यवान् हो। भक्ति से दाऊजी महाराज की सेवा करो। वे तुम्हें किसी चीज़ की कमी न रहने देंगे।

दामोदर के गालों की हालत देखकर हम लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। स्वप्न की मार से देह का सूज जाना हम लोगों ने कभी नहीं देखा। विचार बुद्धि से कुछ समझ में नहीं आता कि दाऊजी महाराज का अनुशासन क्या मामला है। जो हो, मैं तो दामोदर को कठोर दण्ड भोगते देखकर मन ही मन बहुत खुश हुआ; सोचा—अब भर पेट भोजन करके श्रीवृन्दावनवास कर सकूँगा।

कूतू की बात। माताठाकुराणी का लौट आना

आज दोपहर को फुरसत पाकर मैंने ठाकुर से माताठाकुराणी की बात पूछी। कहा,

श्रावण अमावस्या।

"माँजी को गये इतने दिन हो गये, अब तक न तो उनका पता लगा और न उनकी कुछ खबर ही मिली। तो क्या वे अब सचमुच वापस न आवेंगी?"

ठाकुर—कह तो दिया कि कूतू के प्रति थोड़ा-सा आकर्षण है। अगर आवेंगी तो उसी के लिए। उनको जो महात्मा लोग ले गये हैं वे चाहें तो उस आकर्षण को भी काट सकते हैं। इसीसे उनके लौट आने के सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।

मैं—महात्मा लोग माँजी के ही आकर्षण को न काट देंगे। कूतू तो बच्ची है, उसे तो माता की कुछ माया-ममता है।

ठाकुर—कूतू को क्या माता के लिए कष्ट हो रहा है?

मैं—सो तो कुछ समझ में नहीं आता। कूतू की बात चीत, हँसी और चलना फिरना देखकर मालूम नहीं होता कि वे एक बार भी माँ को याद करती हैं। माँजी तो यहाँ रहने की आशा से आई थीं। उनके इस तरह चले जाने से सब को बहुत कष्ट हुआ है।

ठाकुर—उनका इस तरह चला जाना अच्छा ही हुआ। उनके चले जाने से कुछ भी हानि न होगी, मंगल ही होगा। इस बार श्रीवृन्दावन में आने से उन्हें कभी वापस ले जाना सम्भव न होगा। वे अपने ही स्थान में रह जायँगी। इन्हीं कारणों से मैंने उनको श्रीवृन्दावन आने से बार-बार मना किया था।

इसी समय कूतू ने आकर ठाकुर से कहा—"पिताजी, माँ तो पाठ सुनने आती हैं। मैं तो अक्सर उनको देखती हूँ। आज भी मैंने यहाँ माँ को देखा है।"

करती हूँ यह सब कुछ नहीं है, सब मिथ्या है ; जान पड़ता है मानों सब कुछ स्वप्न ही देख रही हूँ। ऐसा क्यों होता है ?

ठाकुर—तेरा बड़ा सौभाग्य है, इसी से ऐसा होता है। वास्तव में दुनियाँ तो कुछ है नहीं। सब मिथ्या है। स्वप्न तो है ही। इस सब को साफ़-साफ़ स्वप्न समझ लेने से ही काम बन गया। और चाहिए क्या ?

सन्ध्या होने से तनिक पहले कुतु के साथ ठाकुर की यह बातचीत हो रही थी, इसी समय एक बुढ़िया आई। उसने नीचे से ही हम लोगों को पुकारकर कहा—अजी कौन है ? तुम लोगों की गोसाँइनजी हमारी कुञ्ज में है। तुम लोगों को खबर देने आई हूँ। अभी अभी देखा कि गोसाँइनजी हमारे घर में बैठी हुई हैं। मालूम नहीं कि कब, कहाँ से आ गई। उनको घर मे देखते ही तुम लोगों को खबर देने दौड़ी आई हूँ।

ठाकुर ने योगजीवन को बुलाकर कहा—योगजीवन, अभी चला जा। अपने साथ लिवा ला।

हमारी कुञ्ज के दो घरों के बाद ही एक ग़रीब गृहस्थ के यहाँ माताठाकुराणी बैठी हुई थीं। योगजीवन जाकर माँजी को लिवा लाये। माँजी के शरीर में मैंने कोई ख़ास परिवर्तन नहीं पाया, परिवर्तन इतना ही था कि वे गेरुवे रङ्ग की धोती पहने हुए थीं। उन्होंने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर भी बड़ी प्रसन्नता से उनसे बातचीत करने लगे ; किन्तु उन्होंने इस सम्बन्ध मे एक बात भी उनसे नहीं पूछी कि इतने दिनों तक कहाँ पर किस तरह थीं।

रात को भोजन करके मै ठाकुर के आसन के पास सो रहा। ठाकुर रात भर बरामदे में ही रहते हैं। मच्छरों की बहुत अधिकता है। माताठाकुराणी पहले की तरह ठाकुर को हवा करने लगीं। इसी समय योगजीवन और श्रीधर प्रभृति ने माताठाकुराणी के अकस्मात् अन्तर्धान होने का हाल जानना चाहा। माँ ने कहा—परमहंसजी पाँच महापुरुषों के साथ आये थे। वे छः सात हाथ ऊँचे हैं ; सभी के सिर पर पगड़ी है। वे लोग मुझे यमुनाजी में ले गये। कहने लगे "यहाँ स्नान करो।" मैंने नहा लिया। इसके बाद मैं नहीं जानती कि वे मुझे कहाँ किस तरह ले गये। थोड़ी देर में मैंने अपने को पहाड़ पर पाया। बड़ा विचित्र स्थान है। परमहंसजी ने उन पाँच महापुरुषों को मेरा रक्षक नियुक्त कर रक्खा था।

वे लोग सदा मेरे पास बने रहते थे, मैं जहाँ चाहती थी वहाँ जा सकती थी। वह स्थान ही ऐसा है कि किसी प्रकार का उद्वेग अथवा अशान्ति मन में नहीं होती। बड़े ही आनन्द का स्थान है। वे लोग ही फिर मुझे यहाँ लाकर छोड़ गये।

प्रश्न—तो क्या आपने आना चाहा था?

माताठाकुराणी—वहाँ से भला लौटने की इच्छा होती है? हाँ, समय-समय पर ठूटू की याद आती थी।

मेरे कौमार्य की इच्छा का प्रकाश

मेरी पित्तशूल की बीमारी बिलकुल जाती रही है। इस रोग के हट जाने से मुझे एक खटका हो गया है। वह यह कि मेरे चङ्गे हो जाने से अब शायद ठाकुर मुझे बहुत दिन तक अपने साथ न रहने देंगे। देश जाते ही बड़े भाई लोग मुझसे पढ़ने लिखने को कहेंगे, और उक्त काम मेरे लिए यम-यातना से भी बढ़कर कष्टकर है। अगर मैं पढ़ना स्वीकार न करूँ तो नौकरी तो मुझे करनी ही पड़ेगी। तब सभी लोग विवाह करने के लिए अवश्य ही मुझ पर दबाव डालेंगे। इन झगड़ों से मेरा बचाव किस तरह हो!

श्रावण शु० १

हरिवंश सुना चुकने के बाद आज मैंने ठाकुर से कहा—कई दिन से मैं बड़ी फ़िक्र में हूँ। आपको सब हाल सुनाना चाहता हूँ।

ठाकुर—फ़िक्र किस बात की? खुलासा कहो।

उत्साह पाकर मैं जी खोलकर कहने लगा—"मैं अब चङ्गा हो गया हूँ, अब मैं क्या करूँगा? देश जाते ही बड़े भाई लोग मुझे स्कूल में भर्ती करा देंगे; किन्तु मुद्दत से लिखना पढ़ना छोड़ देने के कारण फिर नये सिरे से पढ़-लिखकर परीक्षा पास करने की चेष्टा करना मुझे बहुत ही कष्टकर जान पड़ता है। उस ओर मेरी प्रवृत्ति बिलकुल ही नहीं है। इसके बाद अगर वे लोग कहीं मुझे नौकर करा देंगे तो इसमें भी मुझे बेहद तकलीफ़ होगी। लिखा पढ़ा मैं कुछ हूँ नहीं, इससे नौकरी करने पर बहुत ही मामूली आमदनी की नौकरी करनी पड़ेगी। नौकर हो जाने पर फिर सब लोग मुझ पर ब्याह करने के लिए दबाव डालेंगे। ब्याह कर लेने पर थोड़ी सी आमदनी से अपनी स्त्री का भरण-पोषण करना ही मेरे लिए कठिन हो जायगा, फिर धीरे धीरे जब परिवार बढ़ेगा तब समझ

मे नहीं आता कि किस तरह गुजारा करूँगा। इसके बाद नौकरी करने पर दस आदमी कुछ न कुछ मुझ से पाने की आशा करेंगे। मेरी हालत का खयाल कोई न करेगा, और अपनी मर्जी के माफिक न मिलने पर सभी कुढ जायँगे। जो लोग अभी मुझको इतना चाहते हैं उन्हीं का, यह नौकरी कर लेने के कारण ही, मेरे ऊपर असद्भाव हो जायगा। बहुत दिन से मैं नीरोग नहीं रह पाया हूँ। यद्यपि मैं इस समय तन्दुरुस्त हूँ, फिर साधारण अनियम होने से फिर बीमारी के चक्कर में पड़ सकता हूँ। मेरी भीतरी हालत जैसी कुछ शोचनीय है, उसको देखते हुए विवाह कर लेने पर फिर मैं किसी तरह अपनी रक्षा न कर सकूँगा। संयम की ओर से शिथिलता होने पर नहीं जानता कि मैं कहाँ जा गिरूँगा। उस समय कदाचार व्यभिचार करने के लिए वह द्रव्य ही मुझे परम सहायक होगा। हाथ में पैसा आ जाने और स्वाधीनता पूर्वक रह पाने से नहीं मालूम कि मैं जाकर किस विषम नरक में पड़ूँगा। इन्हीं कारणों से नौकरी और विवाह मेरे लिए नरक का द्वार जान पड़ता है। इन झगड़ों से आप मुझको बचावें। इसके बिना और कुछ उपाय नहीं है।"

ठाकुर ने सब सुनकर कहा—"तुम्हारे शरीर की जैसी हालत है उसके लिहाज से विवाह करना किसी तरह ठीक नहीं है। हाँ, तन्दुरुस्ती अच्छी रहे तो नौकरी करके बड़े भाइया की सेवा कर सकते हो।" ठाकुर की बात सुनकर और यह समझ कर कि विवाह न करना पड़ेगा, मुझे बड़ी तसल्ली मिली। सोचा—'अब ठाकुर एक बार यह कह दें कि नौकरी भी न करनी पड़ेगी, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।' मैं फिर धीरे धीरे कहने लगा—'अविवाहित रहकर नौकरी करना क्या मेरे लिए निरापद् होगा? मुझे तो जान पड़ता है कि साधारण आदमी की अपेक्षा मुझ में कुवृत्ति की उत्तेजना बहुत अधिक है। सिर्फ मौका न मिलने से ही अब तक मैं भला बना हुआ हूँ, साधन भजन के नियमों में जकड़ा रहने से ही मेरा बचाव होता आ रहा है। इस ओर से तनिक अलग होते ही न जाने मेरी क्या हालत होगी। नौकरी करने से ही रुपये-पैसे के झमेले में पड़ना होगा, सारी मति-गति बहिर्मुख हो जायगी, साधन की सब मँजी हुई नियम प्रणाली तब फिर कुछ भी न रहेगी, तब एक प्रलोभन के उपस्थित होने पर उससे बचने का सामर्थ्य मुझ में न रहेगा। बल्कि हाथ में रुपया-पैसा होने से स्वेच्छाचार का मार्ग साफ हो जायगा। यदि

आप मुझे नियमानुसार न बाँध रक्खेंगे तो मेरे बचे रहने का कुछ उपाय नहीं है। नौकरी कर लेने से अधिकांश समय में आपका सम्बन्ध तोड़कर रहना पड़ेगा। तब तो सभी कुभाव मेरे भीतर सिर ऊँचा करके खड़े हो जायँगे। मेरा बचाव किस प्रकार होगा? इससे जान पड़ता है कि मेरा यह जीवन सिर्फ नौकरी करने से ही नरकग्रस्त हो जायगा। कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँगा। आप ही जानते हैं कि मेरा भविष्यत् का भला बुरा काहे में है। आप मुझे बतला दें कि मेरा वास्तविक मंगल किस में है। मैं वही करूँगा। मेरी तो यह इच्छा है कि मैं सदा अविवाहित बना रहूँ और साधन भजन किया करूँ। इस दशा में कोई मुझसे नौकरी करने के लिए भी ज़िद न करेगा, क्योंकि हमारे घर पर वैसे किसी चीज़ की कमी नहीं है। यदि आप कह दें तो मैं जन्म भर क्वारा (कुमार) ही बना रहूँ।'

ठाकुर ने कहा—सिर्फ कह देने से ही क्या तुम क्वारा बने रह सकोगे? कहीं ऐसा होता है? तुम एक काम करो, ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। कौमार्य तो ब्रह्मचर्य के ही अन्तर्गत है। हाँ, ब्रह्मचर्य में और भी कुछ नियम हैं, उनको मान करके चलना पड़ेगा। एक व्रत की कुण्डली में न रहने से सिर्फ यों ही ठीक न रह सकोगे। कुमार अवस्था में रहने के लिए ब्रह्मचर्य ग्रहण करो। एक व्रत के बन्धन में रहने से ही संसारी झगड़े से पिण्ड छूटता है। तीन दिन तक तुम इस मामले पर अच्छी तरह सोच-विचार कर लो। व्रत को ले करके फिर उसका प्रतिपालन भलीभाँति करना पड़ता है, नहीं तो अपराध लगता है। सारी बातों पर अच्छी तरह विचार करके हमसे कहना, फिर ब्रह्मचर्य दिया जायगा।

ब्रह्मचर्य लेने के सम्बन्ध में आलोचना; ठाकुर की अनुमति

श्रावण शु० २

ब्रह्मचर्य व्रत को लूँ या नहीं, इस विषय को तीन दिन तक सोच-विचार करके उत्तर देने के लिए ठाकुर ने मुझसे कहा है। उनके कहने के ढंग से मैंने खूब समझ लिया है कि वे मुझे उक्त व्रत देना चाहते हैं। फिर भी ठाकुर की आज्ञा होने से मैं इसके पक्ष और विरुद्ध

मे बहुत सोचा विचारा । किन्तु मैं कुछ भी निर्णय न कर सका । गुप्त रूप से योगजीवन और श्रीधर को अलग-अलग बुलाकर मैंने उनसे सलाह ली । श्रीधर तो सुनकर उछल पड़े, कहने लगे—"भाई, जिस दिन तुमने दीक्षा ली थी उस दिन मैंने इसी के लिए हृदय से तुम्हारे इसी काम की प्रार्थना की थी। आज भी मुझे उसकी साफ-साफ याद बनी है। तुम वीर्य धारण करो, अविवाहित रहकर साधन भजन में जीवन लगा दो मैं यही चाहता हूँ। तुम में व्रत का पालन करने की शक्ति न होगी तो क्या वे तुम्हारे कहने से ही यह व्रत दे देंगे ? गोस्वामीजी यदि तुमको यह दुर्लभ व्रत दें तो दुविधा छोड़कर तुम इसी क्षण उसको ग्रहण कर लो।" योगजीवन ने कहा—"तुम तो बड़े सौभाग्यवान् देख पड़ते हो । क्या किसी को इच्छा करने से ही यह व्रत मिल जाता है ? गोस्वामीजी तुम्हारे ऊपर बहुत ही प्रसन्न हैं, वे तुम पर विशेष रूप से ही कृपा करेंगे। दुनियाँ के तरह-तरह के रगड़ों झगड़ों से सहज ही छुटकारा पा जाओगे। व्रत की रक्षा कर सकोगे कि नहीं, इसकी फिक्र तुमको क्यों है ? महापुरुष लोग कभी अपात्र को यह व्रत नहीं देते—पात्र को पहचान करके ही वे कृपा करते हैं। यदि वे दया करके तुमको ब्रह्मचर्य व्रत दें तो तुम अभी जाकर उसे ग्रहण कर लो।"

माताठाकुराणी से यह बात कही तो वे एकदम चौंक पड़ीं, मुझको धमका कर कहने लगीं—"यह क्या ? ब्रह्मचर्य लेगा कैसे ? यह कैसे सूझी ? जब तक तन्दुरुस्ती न सुधरे तब तक विवाह मत करना। यों ही ब्रह्मचर्य की रक्षा करता रह। तन्दुरुस्ती सुधर जाने पर जैसा सब लोग करते हैं वैसा तू भी करना। विवाह कर लेने से क्या धर्म-कर्म नहीं निभता ? शौक से उन कठोरताओं को अपने सिर लेने की क्या आवश्यकता है ? व्रत लेना ऐसा सहज नहीं है, बहुत ही कठिन है। अन्त में जो कहीं व्रत से डिग जायगा तो अपराध न लगेगा ? नाहक् यह मति क्यों हुई।

माताठाकुराणी की बातें सुनने से मैं बड़े संशय में पड़ गया ; मन भी एकदम मानों निस्तेज हो गया। मैं विषम समस्या में पड़कर सोचने लगा—"ब्रह्मचर्य व्रत लेकर यदि मैं उसका पालन रीतिपूर्वक न कर सका तो मुझे व्रत-भङ्ग करने के अपराध में पड़ना होगा। उसकी अपेक्षा तो इस कठोर व्रत से अलग रहने में ही भला है। किन्तु इस व्रत को ग्रहण नहीं करता हूँ तो फिर विवाह और नौकरी के पचड़े से बचने का और तो उपाय ही नहीं है।

मैं सोचने लगा कि इस उभय सङ्कट की दशा में क्या करूँ। ऐसा खयाल हुआ कि व्रत ग्रहण कर लेने पर मैं तो ठाकुर के ही विशेष शासन के अधीन रहूँगा, व्रत भङ्ग होगा तो मेरे दयालु ठाकुर ही मुझे दण्ड देंगे। दण्ड भोग कर लेने पर भी उसे अपने ठाकुर का ही कार्य जानकर मुझे बहुत शान्ति मिलेगी, अनेक दुर्दशाओं में पड़कर उत्कट भोग की उत्पत्ति होने पर भी उसे उन्हीं का विधान समझूँगा। यदि नरक में भी गिरूँ तो ठाकुर के साथ कम से कम भाव का तो एक सम्बन्ध बना रहेगा। किन्तु विवाह कर लेने पर जो अशान्ति पूर्ण गन्दी गृहस्थी पैदा होगी, और नौकरी कर लेने से रुपये की आँच पाकर जो दुर्नीति-परिपूर्ण नरक कुण्ड में गिर जाऊँगा, उसे मैं हर तरह से अपनी ही करतूत समझूँगा, उसके साथ ठाकुर के किसी प्रकार के सम्बन्ध को, भाव अथवा कल्पना में भी, लाने में समर्थ न हूँगा। अतएव अपने ऐहिक और पारलौकिक स्वार्थ तथा सुभीते की ओर देखकर कार्य करने से मुझे ब्रह्मचर्य का ग्रहण कर लेना ही लाभजनक जँचता है। किन्तु जब फिर सोचता हूँ कि 'अपने निजी इस तुच्छ जीवन के आराम के लिए परमाराध्य ऋषियों का विशुद्ध आश्रम कलुषित होगा, विशेषत आजन्म सत्यसङ्कल्प पुण्यमूर्ति गुरुदेव के परम पवित्र नाम को मैं कलङ्कित करूँगा', तब मुझे व्रत को ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अपने भाग्य के फल को मैं ही भोग लूँगा। मैं शुद्ध स्फटिक-सदृश श्रीश्रीगुरुदेव के निर्मल शुभ्र रूप में बिन्दुमात्र कालिमा किसी तरह न लगा सकूँगा। अतएव अपने इस हीन और असार सामर्थ्य के भरोसे मैं कभी ब्रह्मचर्य को ग्रहण न करूँगा।

सामर्थ्य मुझ में नहीं है। मुझे दुर्बल समझकर यदि आप दया करके अपनी शक्ति से मेरे ब्रह्मचर्यव्रत की पूरी-पूरी रक्षा करें तभी मैं उसे ग्रहण कर सकता हूँ; नहीं तो मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर मैं रोने लगा। तब ठाकुर मेरी ओर टकटकी लगाकर स्नेहपूर्वक थोड़ी देर तक देखते रहे; फिर हँसते हुए प्रसन्नता से बोले—"अच्छा, वही होगा। एक अच्छी सी तिथि देखकर इस व्रत को ग्रहण कर लो। ब्रह्मचर्य को ग्रहण करने से पहले किसी से इसकी कुछ चर्चा न करना। अब पढ़ो।"

अब मैं निश्चिन्त होकर हरिवंश पढ़कर सुनाने लगा। आज मेरे मन में आनन्द नहीं समाता है। जान पड़ा—'आज ही ठाकुर ने मेरा सारा बोझ अपने सिर लेकर मुझे बिलकुल निरापद कर दिया है; आज मेरा उद्धार हो गया।' मैंने तय कर लिया कि इस व्रत को ग्रहण करने की बात मै किसी से न कहूँगा। किन्तु यह फिक्र हुई कि यदि माताठाकुराणी पूछ बैठेंगी तो क्या उत्तर दूँगा। वे नहीं चाहतीं कि मैं इस व्रत को ग्रहण करूँ। माताठाकुराणी की बहुत दिनों से इच्छा है कि कुतू को मेरे हाथ अर्पण करें। किसी-किसी पर उन्होंने अपनी इस इच्छा को प्रकट भी कर दिया है। यह बात नहीं है कि आकार-प्रकार से मुझे भी यह बात न जतलाई गई हो। कौन जानता है? मालूम पडता है कि इसीलिए माँजी मेरे लिए ब्रह्मचर्य नहीं चाहतीं। ठाकुर मुझे चाहे जिस दिन ब्रह्मचर्य दे दें; मैं तिथि और मुहूर्त कुछ नहीं जानता। जय गुरुदेव! तुम्हारी ही इच्छा पूरी हो।

ठाकुर के साथ महापुरुष के दर्शन

तीसरे पहर ठाकुर के साथ दर्शन करने को हम लोग बाहर निकले। ठाकुर अन्यान्य दिनों की अपेक्षा आज फुर्ती से चलने लगे। माताठाकुराणी, कुतू, श्रीधर प्रभृति बहुत पीछे रह गये। ठाकुर का कमण्डलु हाथ में लिये हुए मैं साथ साथ दौडा। ठाकुर सीधे कालीदह की ओर चले। सुना कि आज वहाँ पर बहुत बडा मेला है, वहाँ हजारों आदमी आकर एकत्र हुए हैं। रास्ते में भी कुछ कम भीड़-भाड़ नहीं है। मेले की जगह के समीप पहुँचकर ठाकुर चलते-चलते ठिठककर खड़े हो गये, और एक आदमी की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। यह देखकर मैं विशेष रूप से उसी आदमी पर नजर रखने लगा। उसका पहनावा कुछ नहीं, मामूली लँगोटी लगाये हुए है

२० वीं जुलाई
श्रावण शु० ४,

श्रीर ऊपर से एक जीर्ण बहिर्वास लपेटे हुए है। रङ्ग साँवला है, छरहरा लम्बा कद है, देह में बहुत सी धूल अथवा व्रज की रज लिपटी हुई है (इससे वह मानों और भी भद्दा देख पड़ता है)। न तो माला पहने हुए है और न छाप तिलक का नाम निशान है, सिर पर लम्बी सी भूरी भूरी उलझी हुई जटाएँ हैं। रास्ते के कुली या मजदूर की तरह जान पड़ता है। किन्तु आँखों में असाधारण ज्योति देखकर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। ऐसा जान पड़ा मानों उसने जल्दी-जल्दी पलक गिराने से चमकीला तारा चमक उठता है।

ठाकुर को देखते ही ये कोई १०० गज की दूरी पर रहकर बेमिल सिले नाचते हुए आगे बढ़ने लगे और समान गति से ठाकुर से बचकर चले गये। एक बार "हरेकृष्ण" तक नहीं कहा। ठाकुर अब पीछे की ओर बिना देखे ही कालीदह की ओर चलने लगे। अचम्भे की बात है कि मैंने तुरन्त ही पीछे मुड़कर देखा, परन्तु वह मनुष्य न देख पड़ा।

मेला देखकर हमलोग दिन डूबने से पहले ही कुंज में लौटकर आ गये। रात को मैं ठाकुर के पास बैठा हुआ था कि उन्होंने कहा—मेले में आज एक महापुरुष के दर्शन हुए। ऐसे महात्मा लोग प्राय भीड़ भाड़ में नहीं आते, पहाड़ों में ही रहते हैं।

मैं—मैं तो आपके साथ ही साथ था, आपने महापुरुष को कहाँ देखा? मुझे दर्शन क्यों नहीं करा दिये?

ठाकुर—संसार में तो अविश्वास भरा हुआ है। इतने बड़े महात्मा पर भला क्यों विश्वास होगा? हिमालय पर्वत पर ही रहा करते हैं, ऐसे महापुरुष अक्सर वहाँ से उतरकर नीचे नहीं आते। कभी आ जाते हैं तो इसी प्रकार नकली वेश में ही तीर्थ आदि की यात्रा करके चले जाते हैं। पहले और एक बार इन महात्मा से मेरी भेंट हुई थी। इस दफे तो पल भर में ही प्रकाश फैलाकर, बात की बात में, अन्तर्धान हो गये। बहुत ही विचित्र हैं! सचमुच महापुरुष हैं।

मैं—मैंने देखा कि ऐसी भीड़ के बीच आप एक आदमी की ओर देख रहे हैं। *उनका तो कोई वेश भी न था, मामूली मजदूर से देख पड़ते थे, तो वही महापुरुष थे?*

ठाकुर—हाँ—वही होंगे। उनके दोनों पैर पृथ्वी से आध हाथ ऊपर थे, उन्होंने रज पर पैर नहीं रक्खे। पैरों की ओर तो कोई देखता नहीं है। पैरों की ओर देखते ही, कई बार, पकड़ में आ जाते हैं।

कालीदह का घाट—श्रीवृन्दावन
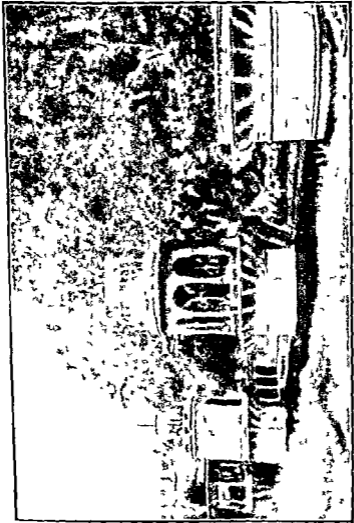
मैं—न तो वे खड़े हुए और न आप से उन्होंने कुछ बात-चीत ही की।

ठाकुर—जो कुछ कहना था सभी तो कह दिया है। वे लोग क्या हम लोगों की तरह सिर्फ मुँह से ही बातचीत करते हैं? वे लोग आकार से, इशारे से और दृष्टि से, अनेक उपायों से, सब कुछ कह देते है।

मैं—तो क्या आकार, इशारे और दृष्टि से भी बातचीत की जा सकती है?

ठाकुर—भला की नहीं जा सकती है? खूब की जा सकती है। ऐसे बहुत से प्राणी हैं जो मुँह से नहीं बोलते, आकार, इङ्गित और दृष्टि द्वारा ही सब कुछ व्यक्त कर देते हैं।

ब्रह्मचर्य लेने के लिए दिन स्थिर होना

श्रावण शु०५

आज दोपहर को ठाकुर ने सदाचार के सम्बन्ध में बहुत उपदेश दिया। उन्होंने समझाकर बतलाया कि ब्राह्मणों का आचार, नित्यकर्म और सन्ध्या तर्पण आदि कैसा क्या उपकारी है।

बातों ही बातों में मैंने पूछा, वैदिक धर्म कर्म करने से आजकल क्या कोई ऋषियों की तरह हो सकता है? क्या इस समय भी वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य आदि की तरह ब्राह्मण होना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा—आजकल वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना बहुत ही कठिन है, आसान काम नहीं है। यदि कोई वैसा ही अनुष्ठान कर सके तो सम्भव क्यों नहीं है? बहुत समय चाहिये।

मैं—वैदिक धर्म का अनुष्ठान करके प्राचीन ऋषियों की तरह ब्राह्मण बनने की इच्छा होती है। आप दया करके मुझे वैसा ब्राह्मण बना दीजिए।

ठाकुर—यही तो ठीक है। इसके लिए अब वैदिक ब्रह्मचर्य व्रत लेना पड़ेगा। उक्त व्रत को ग्रहण करके उसके नियमों को मानकर, चलो। बस, फिर ठीक हो जायगा। कोई दिन देखकर बतलाओ, ब्रह्मचर्य दे देंगे।

मैं—मैं दिन देखना नहीं जानता।

ठाकुर—तो पञ्चाङ्ग न ले आओ।

मैंने पञ्चाङ्ग लाकर ठाकुर को दे दिया।

उन्होंने देखकर कहा—१२ वीं श्रावण अच्छा दिन है। उसी दिन एकान्त में आकर ब्रह्मचर्य ग्रहण कर लो। बल्कि उस दिन हम समय पर तुमको बुला लेंगे। इसी समय किसी से कुछ कहना-सुनना नहीं। जब मैं हरिवंश पढ़कर सुना चुका तब ठाकुर ने कहा—पाठ का एक नियम रखना अच्छा है। समय निर्दिष्ट करके नियमानुसार अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ा करो।

म—मैं नहीं जानता कि मेरे लिए किन किन पुस्तकों का पढ़ना उपयोगी है। आप ही मुझे बतला दीजिए।

ठाकुर—गीता का पाठ प्रतिदिन नियम से किया करो, महाभारत का शान्तिपर्व और श्रीमद्‌भागवत पढ़ा करो।

केलिकदम्ब वृक्ष में राधाकृष्ण का नाम

तीसरे पहर हम सब लोग ठाकुर के साथ घूमने को निकले। श्रीमदनमोहनजी के दर्शन करके कालीदह की ओर चले। प्रबोधानन्द सरस्वती की समाधि-वेदी को देखकर यमुना किनारे पहुँच गये। वहाँ कालिय ह्रद पर एक प्राचीन पेड़ के नीचे हम लोग बैठ गये। ठाकुर ने कहा—यह वही बहुत पुराना केलि-कदम्ब का पेड़ है। कहा जाता है कि इसी पेड़ पर खड़े होकर श्रीकृष्ण कालिय दमन के समय यमुना में कूद पड़े थे। इस वृक्ष में 'राधाकृष्ण', 'राम राम', 'राधाश्याम' आदि नाम, बिना ही किसी के लिखे मौजूद हैं। तुम लोगों की इच्छा हो तो देख लो।

ठाकुर के मुँह से यह बात सुनते ही हम लोग वृक्ष के तने के पास जाकर उक्त नामों को ढूँढ़ने लगे। पेड़ के तने और शाखा प्रशाखाओं में वे नाम साफ-साफ वक्कल की शिराओं द्वारा, देवनागरी और बँगला लिपिमें लिखे हुए मिले। दो एक स्थान पर दो-चार नाम नहीं, बल्कि सारे वृक्षमें ऐसे असंख्य नाम देखकर बड़ा अचम्भा हुआ। मैं बड़ा शक्की हूँ, सहज में किसी बात पर विश्वास नहीं कर लेता। मैंने ठाकुर से पूछा—"दुष्ट पण्डों ने दो पैसे पैदा करने के लिए छुरी से काट-काटकर ये नाम तो नहीं खोद दिये हैं?' मेरी बात सुनकर ठाकुर ने कहा—"तुम्हारा कहना भी ठीक है। पण्डा लोगों ने भी दो-चार जगह छुरी से नाम खोद दिये हैं। किन्तु यह तो नजर पड़ते ही पहचान में आ जाता है। पहले

स्वाभाविक नाम था, इसी से तो पण्डों ने लिख दिया है।" अब ठाकुर उठ बैठे और वृक्ष के पास जाकर ४।५ नाम दिखलाकर कहने लगे—"यह देखो, यह पण्डों की करतूत है। धन कमाने के लोभ से पण्डों ने इन स्वाभाविक वस्तुओं की नकल करने जाकर असल चीज़ पर लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न करा दिया है। यह बड़ा भारी अपराध है। कितने ही देवता, देवी, ऋषि-मुनि और वैष्णव महापुरुषगण श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए वृक्षों और लताओं के रूप में मौजूद हैं; उन्हें इस प्रकार से काटना-कूटना बड़ा भारी अपराध है। तनिक ध्यान से देखो, असल और नकल को समझ लोगे।"

मैं—इनको देखने से कैसे मालूम होगा कि इनमें कौन स्वाभाविक है और कौन कृत्रिम? छुरी से बनाये हुए अक्षर भी तो बहुत दिन तक हरे पेड़ में बने रहने से असली की तरह देख पड़ेंगे।

ठाकुर ने तनिक हँसकर कहा—हाँ, हो सकता है। अच्छा, एक काम करो, पेड़ का जो मोटा मोटा वक्कल सूखकर पेड़ से थोड़ा-थोड़ा हट रहा है, उसी के भीतर नजर डालकर देखो। वहाँ पर तो कोई लिख नहीं सकता।

अब मैंने चटपट उसी पुराने पेड के ३।४ इञ्च लम्बे आधे उखड़े हुए बकल (छाल) को खींचकर उठाया। उस समय ठाकुर 'ओफ! यह क्या किया?' कहकर काँप उठे। अब मै छाल को और न उखाडकर बड़े ध्यान से उसके भीतर की ओर देखने लगा। 'राधाकृष्ण' 'राम राम' नाम साफ साफ वृक्ष की प्रत्येक शिरा मे लिखा हुआ देखकर मैं—दङ्ग रह गया। ऊँचाई पर, पेड की शाखा-प्रशाखाओं मे, डाली-डाली में और नीचे की ओर भी साफ साफ वे नाम देख पड़े। मैं समझ गया कि उन स्थानों मे कोई किसी तरह नाम नहीं लिख सकता। देवी देवता अथवा महापुरुष लोग वृक्ष रूप में मौजूद हैं या वृक्ष का सहारा लेकर रहते है, इन बातों पर विश्वास करने का मुझे अधिकार नहीं है; हाँ इसमें सन्देह नहीं रहा कि यह वृक्ष असाधारण है। ठाकुर के साथ सब लोगो ने वृक्ष की प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग प्रणाम किया। मैंने भी नमस्कार किया।

* *
*

मनोहर वनशोभा ; हिंसाशून्य वृन्दावन

कालीदह के दर्शन करके हम लोग यमुना किनारे किनारे चलकर श्रीवृन्दावन के घने जङ्गल के भीतर पहुँचे। वन की स्वाभाविक शोभा देखने से बड़ा आनन्द हुआ। छोटे बड़े सभी वृक्षों को अन्यान्य स्थानों के पेड़ पौदों से मैंने निराला देखा। ऊँचे-ऊँचे पुराने और बड़े पेड़ भी सब जगह झुके हुए हैं। उनकी शाखा प्रशाखाएँ चारों ओर फैलकर क्रम से झुककर जमीन से लग गई हैं। देखने से ही जान पड़ता है, मानों श्रीधाम की रज को छूने के लिए ही सभी वृक्ष, शाखारूप हाथ फैलाकर, उसे प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। जिन पुराने वृक्षों की शाखा-प्रशाखाएँ जमीन को छू रही हैं उन्होंने, मानों रज का स्पर्श हो जाने से सफलमनोरथ होकर, स्थिर समाधि लगा ली है। मैंने अपने जीवन में वृक्षों की ऐसी अद्भुत शोभा और कहीं नहीं देखी। श्रीवृन्दावन के छोटे-बड़े सभी वृक्षों और

है; भागने की फ़िक्र नहीं है, भला उनकी स्फूर्ति का क्या कहना है। देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। वन के हिरन आदि भी मानों मनुष्य को मनुष्य समझते ही नहीं; वे बेखटके होकर मनमाने तौर पर मनुष्यों के बिलकुल ही नज़दीक से चलते-फिरते हैं। आँखों से देखे बिना मैं कभी विश्वास न करता कि भगवान के राज्य में यह अपूर्व मामला है। मैंने ठाकुर से पूछा—'वन के हिरन और जंगली मोर भी ऐसे निडर क्यों हैं?' ठाकुर ने बतलाया—श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं है; इसी से यहाँ के जीव-जन्तु और पशु-पक्षी मनुष्य के समीप भी इतने निडर बने रहते हैं।

हम लोग श्रीवृन्दावन के घने जङ्गल में पशु-पक्षी और वृक्ष-लताओं के ये भाव तथा असाधारण अवस्थाएँ देखकर शाम होने से पहले ही कुञ्ज में लौट आये। श्रीवृन्दावन के इन स्थानों में पहुँच जाने पर फिर बस्ती में जाने को जी नहीं चाहता। जान पड़ता है, इन सब स्थानों में जिन्दगी भर बने रहने पर भी इनकी नित्य-नवीनता दूर नहीं होती।

ब्राह्मण की विशेषता; सद्गुरुसमाश्रित जन की गति

भोजन करके हरिवंश पढ़ चुकने पर मैंने ठाकुर से पूछा—जो लोग जाति से ब्राह्मण हुए हैं, उनका क्या कुछ विशेष सुकृत था?

श्रावण शु० ६
मङ्गलवार, २२ जुलाई

ठाकुर—अवश्य ही। थोड़ी सी विशेषता थी ही।

मैं—यदि फिर संसार में आना पड़े तो कैसा व्यवहार करने से वर्तमान अवस्था की अपेक्षा और नीचे न जाना पड़ेगा? ब्राह्मण लोग कैसा व्यवहार करने से अगले जन्म में भी ब्राह्मण ही होंगे?

ठाकुर—ब्रह्मचर्य को ग्रहण करके उसी के अनुसार चलो। ब्रह्मचर्य के नियमों की रक्षा करते हुए व्यवहार करने से फिर कभी नीचे न जाना पड़ेगा। सन्ध्या, गायत्री, नित्यक्रिया आदि करते रहने से ब्राह्मण अगले जन्म में भी ब्राह्मण ही होता है।

मैं—जिन लोगों को हमारा यह साधन प्राप्त हो चुका है क्या उन्हें भी फिर जन्म लेना पड़ेगा?

इस प्रश्न को सुनकर माताठाकुराणी ने प्रसङ्ग पाकर कहा—श्यामाकान्त पण्डितजी ने एक दिन देखा था कि सभी साधन-प्राप्त लोगों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है;

पण्डितजी प्रथम श्रेणी में हैं, द्वितीय श्रेणी में बहुत अधिक लोग नहीं हैं, तीसरी श्रेणी में ही लोगों की अधिक संख्या है। जो लोग प्रथम श्रेणी में हैं उनको दुबारा न आना पड़ेगा, उनका यही अन्तिम जन्म है। जो लोग दूसरी श्रेणी में हैं उनको एक बार और आना पड़ेगा। किन्तु जो लोग तीसरी श्रेणी में हैं उनको, सम्भव है, दो बार और भी आना पड़ेगा।

मैं—अच्छा, जो लोग सद्गुरु को पाकर देह छोड़ेंगे और इस संसार में फिर आवेंगे उनको क्या फिर भी सद्गुरु की कृपा प्राप्त होगी?

ठाकुर—इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है, उनको अवश्य ही सद्गुरु की कृपा प्राप्त होगी।

मैं—जब सद्गुरु की कृपा प्राप्त हो ही जायगी तब फिर संसार में आने में झिझक ही किस बात की है? कठिनाई ही कौन सी है?

ठाकुर—बापू, दुनिया की माया से बड़ी आशंका है, संसार में बड़ी जलन है।

मैं—सद्गुरु मिल जाने पर क्या एक जन्म में ही मुक्त हो जाना सम्भव है?

ठाकुर—निःसन्देह रूप से गुरु की आज्ञा का पालन करने और गुरु में निष्ठा उत्पन्न हो जाने से एक जन्म में ही मुक्त हो जाना सम्भव है।

मैं—गुरु की आज्ञा का प्रतिपालन, चेष्टा करने से, बहुत कुछ हो भी सकता है किन्तु निःसन्देह रूप से होना तो चेष्टा की सीमा से बाहर की बात है। मन में अपने आप जो संशय उपस्थित होता है उसको रोकूँगा किस तरह?

ठाकुर—गुरु जो कुछ करने को कहें वह कर देने से ही काम हो गया। सन्देह हो तो हुआ करे, काम को ठीक ठीक कर लेने से ही सब हो गया।

मैं—जिनको यह साधन इस जन्म में प्राप्त हो गया है वे यदि सावधानी से इसे करते जायँ तो क्या फिर संसार में न आवेंगे? इसी एक जन्म में उन लोगों का बेड़ा पार हो जायगा?

ठाकुर—तीन जन्म के पहले मुक्ति प्राप्त करते प्रायः नहीं देखा जाता। अक्सर तीन जन्म लगते हैं।

मैं—तो हम सभी को तीन बार जन्म लेना पड़ेगा?

ठाकुर—हाँ, लेना पड़ेगा और नहीं भी लेना पड़ेगा।

मैं—जिन लोगों को इस जन्म में सद्गुरु प्राप्त हुए हैं उन्हें क्या इससे पिछले भी जन्मों में सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर—किसी-किसी को पिछले जन्मों में भी सद्गुरु का आश्रय प्राप्त था; और बहुतों को इस बार भी प्राप्त हो गया है।

मैं—तो क्या मुझे पिछले जन्म में भी सद्गुरु का आश्रय प्राप्त हुआ था?

ठाकुर ने सिर हिलाते हुए इशारे से मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैंने फिर पूछा, 'सद्गुरु का आश्रय लेने पर जिन लोगों की मुक्ति तीन जन्मों में होगी उनके मुक्त न होने तक क्या सद्गुरु को भी संसार में आना पड़ेगा? जन्म लेकर क्या सद्गुरु शिष्य के साथ-साथ रहते हैं?

ठाकुर—हाँ, सद्गुरु साथ ही साथ रहते हैं। जन्म लिये बिना भी कई तरह से, कई उपायों से वे शिष्य पर कृपा करते हैं। वृक्ष, लता, मनुष्य इत्यादि के भीतर होकर, अनेक···के भीतर होकर सद्गुरु कृपा करते हैं। वे लोग क्या हमेशा आते रहते हैं? चार कल्पों के बाद इस दफा नानक आये थे।

मैं—तब तो बड़ी मुसीबत है। प्रत्यक्ष रूप में गुरु न मिलने से बड़ा झमेला है।

ठाकुर—मुसीबत तो है ही। हाँ, जो लोग गुरु का वचन मानकर चलते हैं उनको तो फिर कुछ भी झञ्झट नहीं है। अपनी सूझ-बूझ से, मनमाने तौर पर, चलने पर भटकना पड़ता है। जब तक गुरु के वचन के अनुसार नहीं चलेगा, उनमें निष्ठा नहीं उत्पन्न होगी, तब तक आवागमन से पीछा छूटने का नहीं। सद्गुरु का दुनिया से कुछ भी मायिक सम्बन्ध नहीं है, वे तो सिर्फ शिष्य के भले के लिए ही संसार में आते हैं, उनके आने का उद्देश्य शिष्य का उपकार करना ही है। अतएव उनकी आज्ञा के अनुसार बिना चले काम कैसे बनेगा? गुरु जैसा कहें उसके अनुसार सोलहों आने चलना चाहिए, बस फिर किसी तरह का बखेड़ा नहीं रह जाता।

मैं—कई बार तो शायद गुरुजी शिष्य की तरह-तरह से परीक्षा किया करते हैं न? इस दशा में यह कैसे मालूम होगा कि उनकी ठीक-ठीक क्या आज्ञा है?

ठाकुर—सद्गुरु कभी शिष्य की परीक्षा नहीं करते। वे यह काम करेंगे ही किस लिए? सद्गुरु तो वही काम बतला देते हैं जिसके करने से शिष्य का सचमुच कल्याण होता है। हाँ, जो लोग उनकी बात को न मानकर अपनी मर्जी का काम करते हैं उन्हीं को अनेक झमेलों में फँसाकर गुरु महाराज ठीक कर लेते हैं।

पितृ-ऋण आदि के सम्बन्ध में उपदेश

विक्रमपुर निवासी श्रीयुक्त सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय मास्टरी करते थे, गृहस्थी की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति उन्हीं की नौकरी पर अवलम्बित थी। कुछ दिन हुए कि पिता के देहान्त की खबर पाकर वे तुरन्त ही उदासीन की तरह घर से निकल पड़े, देश में विधवा माता के क्लेश की जरा भी परवा न की। पैदल चलकर श्रीवृन्दावन में आ गये और अब ठाकुर के साथ रहते हैं। ठाकुर ने उनसे कई बार कहा है कि घर जाकर पिता का श्राद्ध करो और बीमार, शोकपीड़ित माता की सेवा-शुश्रूषा करो; किन्तु उन्होंने कहा है कि हम आपकी आज्ञा का पालन न कर सकेंगे, वैराग्य लेकर ही शेष जीवन को बिता देंगे। सतीश से घर जाकर पिता का श्राद्ध करने और गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए कहते ही उनका सिर गरम हो जाता है, उस समय वे ठाकुर के साथ तरह-तरह से बहस करके गोलमाल करने लगते हैं। आज फिर ठाकुर सतीश को लक्ष्य करके बड़ी तेजी से कहने लगे—मैं बारंबार सतीश से वही करने को कहता हूँ जिसमें उसका वास्तविक कल्याण होगा। इस समय नहीं सुनता तो क्या किया जाय? पितृ-ऋण को चुकाये बिना उसके किये कुछ होने का नहीं; घर जाकर माता की सेवा न करने से यह जीवन ही अकारथ हो जायगा। सिर्फ यही जन्म नहीं, इस अपराध की बदौलत न-जाने कितने जन्म बर्बाद हो जायँगे। माना कि शुक प्रभृति की तरह वैसा तीव्र वैराग्य होने पर कुछ अटकाव नहीं रह जाता है; किन्तु वैसा हुए बिना तो निर्वाह नहीं होने का। जब तक असली वैराग्य नहीं हो जाता तब तक सिलसिले से ही चलना चाहिए। जिसका जो कर्तव्य है उसकी उपेक्षा करके टाल देने का उपाय नहीं है। गृहस्थी करने को मैंने हरिमोहन से बहुत-बहुत कहा है, इस समय ये लोग समझते नहीं हैं;

किन्तु मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि इस समय नियमानुसार न चलेंगे तो इसके बाद सूद और असल मिलाकर कौड़ी-पाई से वसूल कर लिया जायगा। कोई बात न माने तो क्या किया जाय ? पीछे से अच्छी तरह समझेंगे।

ठाकुर थोडी देर तक उन लोगों से इस प्रकार कहकर चुप हो गये। तब मैंने धीरे-धीरे पूछा—देव ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ ऋण से किस प्रकार उद्धार होता है ?

ठाकुर ने कहा—पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से; याग-यज्ञ, पूजा, तीर्थयात्रा आदि के द्वारा देव-ऋण से और ऋषि-प्रणीत शास्त्र-ग्रन्थों के अध्ययन, आदि के द्वारा ऋषि-ऋण से छुटकारा मिलता है। इसके लिए दूसरा उपाय नहीं है।

मैं—श्राद्ध-तर्पण आदि करने से क्या पितरों के ऋण से छुटकारा नहीं मिल सकता ? इसके लिए क्या सभी को पुत्र उत्पन्न करना पड़ेगा ?

ठाकुर—सिर्फ तर्पण आदि कर देने से पितृ-ऋण से छुटकारा नहीं मिलता। ऋण से मुक्त होने का वही उपाय है। हाँ, जो लोग असमर्थ हैं उनके लिए दूसरे प्रकार की व्यवस्था है।

मैं—असमर्थ और किस प्रकार के ?

ठाकुर—यों समझो कि कोई बहुत बीमार है; शारीरिक अस्वस्थता के कारण वह पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकता। अथवा ऐसा भी होता है कि अन्य किसी विशेष असुविधा या असमर्थता के कारण उक्त कार्य सम्पन्न नहीं हुआ। बहुतों के विवाह कर लेने पर भी लड़का नहीं पैदा होता। इन कारणों से यदि पुत्र न पैदा हो तो ऋणी नहीं रहना पड़ता।

भोजन करने के बाद इसी तरह देर तक हम लोग प्रश्न करते रहे और ठाकुर उत्तर देते रहे। दिन ढलने पर हम लोग ठाकुर के साथ वस्त्रहरण घाट (चीर घाट) पर गये। यमुनाजी की ओर देखते हुए ठाकुर देर तक घाट पर बैठे रहे। माताठाकुराणी, कुतू, भारत पण्डितजी*, सतीश, श्रीधर और मैं सभी स्थिर बैठे हुए नाम का जप करने लगे।

---

* विक्रमपुर निवासी, गुरुनिष्ठ साधनपरायण गुरुभ्राता, ढाका नार्मल स्कूल के भूतपूर्व शिक्षक।

पीछे सतीश के साथ बातों ही बातों में मेरा झगड़ा हो गया। इसमें श्रीधर भी शामिल हो गये। सन्ध्या हो जाने पर हम लोग कुञ्ज में लौट आये।

बारोदी के मार्ग में श्रीधर की कार्रवाई

तीसरे पहर सभी गुरुभाई दाऊजी के बरामदे में बैठकर गप-शप करने लगे। बारोदी के ब्रह्मचारीजी के अद्भुत योगैश्वर्य और दया की चर्चा होने लगी। श्रीधर की एक बार विपिन बाबू के साथ बारोदी को जाते समय जो घटनाएँ हुई थीं उनको सुनने का सभी गुरुभाइयों ने आग्रह प्रकट किया। श्रीधर ने जो कुछ कहा उसको सुनने से बड़ा अचम्भा हुआ। श्रीधर ने घटना का जो वर्णन सुनाया वह यों है :—

श्रावण शु० ८

हमारे गुरु-भाई श्रीयुक्त विपिन विहारी राय यक्ष्मारोग के शिकञ्जे में फँसकर प्राणों के भय से भीत हो गये। ढाका आकर गुरुदेव की सलाह से, श्रीधर प्रभृति कुछ गुरुभाइयों को साथ लेकर, वे बारोदी को रवाना हुए। श्रीधर ने उपदेश दिया—"खाली हाथ जाकर साधु के दर्शन नहीं करना चाहिए।" इसके अनुसार ब्रह्मचारीजी के लिए अनेक प्रकार की तरी तरकारी और फल-फलहरी ले ली गई। विपिन बाबू ने अपने हाथ से ब्रह्मचारीजी को देने के लिए बाजार से बहुत बढ़िया चार फजली आम अधिक दाम देकर मोल लिये और उन्हें बड़ी सावधानी से बाँध लिया। श्रीधर साथ जायँगे, लेकिन उनकी मति गति का कुछ ठिकाना नहीं है, कहीं रास्ते में कुछ बहाना पाकर उन आमों को साफ न कर डालें, यह सोचकर विपिन बाबू ने श्रीधर प्रभृति के लिए भी अलग एक टोकरी आम खरीद लिये। नाव में जब सामान ठीक तौर से रक्खा जाने लगा तब श्रीधर उन फजली आमों को बड़े ध्यान से देखने लगे। यह देखकर विपिन बाबू ने श्रीधर से कहा—"भैया, दोहाई है तुम्हारी। बड़ी आशा से इन चार आमों को महापुरुष के लिए लिये चलता हूँ। इनमें हाथ न लगाना। तुम लोगों के लिए एक टोकरी आम अलग ले लिये हैं। उन्हीं को खाना।" श्रीधर ने आश्चर्य प्रकट करके कहा—"हैं! तुम यह क्या कहते हो! तुमने मुझसे ऐसी बात कह डाली! ब्रह्मचारी के लिए एक प्रिय वस्तु लिये जा रहे हो, उसे मैं खा लूँगा! ऐसी ओछी कल्पना को तुम्हारे मन में जगह किस तरह मिली, तुम तो बुरे आदमी जान पड़ते हो।'

विपिन बाबू ने लज्जित होकर श्रीधर से क्षमा माँगी। कुछ दूर चलकर नाव एक बाजार के पास पहुँची। सभी गुरुभाई बाजार में चले गये। श्रीधर को भी साथ ले जाने की विपिन बाबू ने दो-तीन बार चेष्टा की; किन्तु श्रीधर भजन कर रहे थे। इससे उन्होंने हाथ हिलाकर इशारे से समझाया—"तुम लोग जाओ। मैं न जाऊँगा।" नाव से उतरकर भी विपिन बाबू ने और एक बार श्रीधर से कहा—"भाई, आम खाने की इच्छा हो तो टोकरी में जो अच्छे-अच्छे आम रक्खे हैं उनको खा लेना।" श्रीधर गम्भीर भाव से बैठे रहे। विपिन बाबू जाते-जाते भी मुड़ मुड़कर बार बार पीछे की ओर देखते हुए कुछ दूर पर बाजार में गये। उन लोगों के नजर की ओट होते ही श्रीधर आसन से हड़बड़ाकर खड़े हो गये और चारों ओर चञ्चलता से देखने लगे। इसी समय ५।७ वर्ष के चार नङ्गे बालक एक भिखारिन के साथ नाव के पास आ गये। श्रीधर ने उन लोगों से बड़े आग्रह के साथ पूछा—"क्या चाहिए?" दुखी बालकों ने कहा—"बाबा, कुछ खाने को दोगे?" श्रीधर ने तुरन्त लपककर वही बड़े-बड़े चारों फजली आम लाकर उन भिखारी बच्चों को दे दिये और धमकाकर कहा "भागो, यहाँ से झटपट भाग जाओ, नहीं तो मैं आम छीन लूँगा।" श्रीधर की धमकी सुनकर बच्चे बात की बात में नौ दो हो गये। अब श्रीधर फिर आसन पर आ बैठे और बड़ी उमङ्ग के साथ तद्गत चित्त से भजन गाने लगे। दैवयोग की बात देखिए कि गुरुभाइयों के साथ विपिन बाबू जिस राह से आ रहे थे उसी मार्ग से वे बालक हाथ में आम लिये चले जा रहे थे। उनके हाथों में बड़े-बड़े फजली आम देखकर विपिन बाबू की टकटकी बँध गई। उन्होंने जीभ काटकर सिर में हाथ लगाकर गुरुभाइयों से कहा—"देख ली न पागल की करतूत? पगले ने सत्यानाश कर दिया। इतनी खुशामद करके उसको रोका था, लेकिन पगला न माना। वही चारों आम दे दिये।" अब विपिन बाबू ने आठ आना देकर उन लड़कों से फिर उन आमों को ले लिया; फिर जोर शोर से तर्जन-गर्जन करते हुए नाव पर आ गये। विपिन बाबू श्रीधर को गालियाँ देने लगे। तब श्रीधर दूना जोर लगाकर जोर जोर से गाने लगे। थोड़ी देर में भजन को समाप्त करके श्रीधर, विपिन बाबू के कुछ कहने से पहले ही, उन्हें धमकाकर बोले—"यह क्या बात है? भजन के समय तुम बड़ा गड़बड़ कर रहे थे? तुम्हें अक्ल नहीं है?" धमकी खाकर विपिन बाबू तनिक दब गये, किन्तु फिर गुरुभाइयों का

बल पाकर बोले—"तुम तो बड़े अक्लमन्द हो, तुमने क्या समझकर मेरे चारों आम दूसरे को दे दिये ?" श्रीधर ने कहा, "दे दिये तो क्या हुआ ? फिर वापस नहीं मिल गये हैं ? क्या इस हाथ से उस हाथ में जाने में कुछ दोष होता है ?" विपिन बाबू ने कहा—"मैंने ब्रह्मचारीजी के नाम से अलग आम रख दिये थे, तुमने किसके हुक्म से उन्हें दूसरे को दे डाला ?" श्रीधर ने कहा—"ब्रह्मचारीजी के हुक्म से ही मैंने आम दे दिये थे। जाओ, उनसे पूछ लो।" इस तरह लड़-झगड़कर दोनों ही चुपचाप बैठ रहे। इधर सन्ध्या समय हो गया। दिया जलाने को पलीता नहीं था। जरा से चिथड़े के लिए सभी उतावले हो गये। सभी जानते हैं कि श्रीधर के झोले में ऐसे मैले कपड़े के टुकड़ों की कमी नहीं है। श्रीधर झोले को सहज में नहीं खोलते, मैले चिथड़ों के झोले को वे सिर के नीचे रखकर सोते हैं। विपिन बाबू ने अँधेरा देखकर, गुरुभाइयों के इशारे से, श्रीधर के झोले में से ज्योंही एक चिथड़ा निकाला त्योंही श्रीधर जोर से चिल्लाकर विपिन बाबू के आगे जा पहुँचे और बिना कुछ कहे-सुने उनकी जाँघ को दाँतों से पकड़ लिया। विपिन बाबू "बाप रे, मार डाला, खून कर दिया" कहकर चिल्लाने लगे। गुरुभाई आकर खींच-तान करके भी जब छुड़ा न सके तब सभी श्रीधर की पीठ में लगातार घूँसे मारने लगे। श्रीधर ने इसकी भी परवा न की। तब सभी लोग नाव की पटरी लेकर श्रीधर की पीठ में धड़ाधड़ मारने लगे। इस समय श्रीधर बारबार सिर हिलाकर और भी तेजी के साथ जी-जान से काटने लगे। जाँघ में जो दाँतों के घाव हो गये थे उनसे खून बहने लगा। तब दूसरा उपाय न देखकर माँझियों ने कहा—"आप लोग भी उसको इसी तरह दाँतों से पकड़ कर काटिए, ऐसा करने पर ही वह छोड़ेगा।" माँझियों की बात मानकर दो-तीन व्यक्तियों ने श्रीधर की पीठ पर दो तीन जगह दाँत गड़ा दिये। अब काटना छोड़कर श्रीधर एकदम कूद पड़े, "जय निताई", "जय निताई" कहकर दो एक बार उछल कर चलती हुई नाव में से वे नदी में कूद पड़े। सभी जानते थे कि श्रीधर तैरना नहीं जानते। अतएव जो जिस हालत में था वह उसी हालत में नदी में कूद पड़ा। गोते पर गोते खाकर सभी ने खींच-खाँचकर श्रीधर को नाव पर पहुँचाया। सारी रात इस तरह फिक्र में कटी। क्रम से नाव आकर बारोदी के बाजार में पहुँची।

सबेरे सभी लोग फल-फलहरी और 'सीधे' का सामान लेकर ब्रह्मचारीजी के दर्शन

करने को चले। श्रीधर के पास कुछ नहीं है; ब्रह्मचारीजी के लिए क्या ले जायँगे, इस सोच में श्रीधर चुपचाप बैठे रहे। अकस्मात् नाव से कूदकर नीचे आ गये और नहर से दल घास, करेमुआ का शाक, लता, पत्र आदि एकत्र करके नहर किनारे जमा करने लगे। जब बड़ा सा ढेर हो गया तब सिर्फ लँगोटी पहने रहकर बहिर्वास से उस सबको कसकर बाँध लिया; फिर घास के बड़े से बोझे को सिर पर रखकर वे ब्रह्मचारीजी के आश्रम की ओर दौड़े। इधर विपिन बाबू प्रभृति को आश्रम में पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी के दर्शन नहीं हुए। थोड़ी देर तक बाट जोहनी पड़ी। ठीक समय पर ब्रह्मचारीजी ने सब लोगों को बुलवाया। उन लोगों के ब्रह्मचारीजी को प्रणाम करके बैठते ही उन्होंने पूछा—"हाँजी, वह श्रीधर कहाँ है? तुम लोगों के साथ आया नहीं?" गुरु-भाइयों ने कहा—"वह नाव पर बैठा हुआ है।" ब्रह्मचारीजी ने कहा—"वह आया क्यों नहीं? तुम लोगों ने क्या उसे मारा पीटा है?" विपिन बाबू ने कहा—"महाशय, उसकी बदौलत बड़ी हैरानी हुई। उसने रास्ते भर तङ्ग किया है। मेरी जाँघ में काटकर घाव कर दिया है।" ब्रह्मचारीजी ने आमों को देखकर कहा—"ये आम तुम लोगों को फिर कहाँ मिल गये?" इसी समय सिर पर बोझा लिये हुए श्रीधर हाँफते हाँफते आश्रम में आ गये। श्रीधर पर नजर पड़ते ही ब्रह्मचारीजी आसन से उठकर तनिक आगे बढ़े; इसी समय श्रीधर ने घास के बोझे को ब्रह्मचारीजी के सामने धमाके के साथ पटक कर, "यह खाओ, यह खाओ" कहकर नीचे गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी तनिक हँसकर बड़ी प्रफुल्लता से घास की प्रशंसा करने लगे। श्रीधर का यह काम देखकर सभी को हँसी आ गई। एक व्यक्ति ने श्रीधर से पूछा—"यह सब क्या ब्रह्मचारीजी के खाने को ला दिया है?" श्रीधर ने सिर ऊँचा करके बड़े तेज के साथ कहा—"शास्त्र को जानते हो? 'गोब्राह्मणहिताय च'।" उन लोगों ने पूछा—"इस शास्त्र का अर्थ क्या हुआ?" श्रीधर ने कहा—"अरे पहले गोरूओं का; पीछे ब्राह्मणों का; फिर तुम्हारा, हमारा दुनिया का। 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः' ॥ इससे पहले गोरू का जो प्रिय है वही तो ब्रह्मण्यदेव का भी सबसे अधिक प्रिय है।" श्रीधर की बातें सुनकर सभी लोग हँसने लगे। अब विपिन बाबू ने अपनी बीमारी का ब्योरा सुनाकर चङ्गे होने के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने कहा—"क्या श्रीधर ने तेरी जाँघ में काट लिया है? रक्त बह गया है न?" विपिन बाबू ने कहा—"जी हाँ। बुरी तरह काट खाया

है।" ब्रह्मचारी जी ने कहा —"उसी से तेरी बीमारी दूर हो जायगी। तू ने पूछा नहीं कि श्रीधर, तुमने क्यों काट लिया है?" सब लोगों ने श्रीधर से पूछा तो वे बड़ी उमङ्ग के साथ कहने लगे—"अरे भाई, तुम तो सब लोग बाज़ार को चले गये और मैं अकस्मात् सकीर्तन की ध्वनि सुनकर चौंक पड़ा। नाव से बाहर निकलकर चारों तरफ देखा, सकीर्तन आदि कहीं कुछ न था। चार ऋषि-बालकों के साथ ब्रह्मचारीजी नाव के पास मौजूद हो गये। कहने लगे—'ओरे, मेरे लिए जो चार आम रक्खे हुए हैं वे उठा लाकर इन लोगों को दे दे।' मैंने चप्पट आम लाकर दे दिये। ब्रह्मचारीजी से पूछ लो कि सच है या झूठ। इसी के लिए तुम लोगों ने मुझे न-जाने कितनी गालियाँ दीं! तुम लोगों की बातें न सुनकर मैं नाम का जप करने लगा। देखा कि आकाश मार्ग से एक सङ्कीर्तन मण्डली आ रही है। ब्रह्मचारीजी ने उस मण्डली के आगे आगे आकर कहा—'ओरे, उसकी जाँघ में काटकर खून बहा दे, इसीसे वह चङ्गा हो जायगा।' मैंने सोचा कि यों ही किस तरह काट खाऊँ। इसी समय विपिन बाबू की ओर देखा तो वे मेरे झोले में से एक चिथड़ा निकाल रहे थे। बस, मेरा सिर गरम हो गया। नैपाल कामाख्या, चन्द्रनाथ, और पश्चिम के अनेक स्थानों की यात्रा करके जिन महात्मा महापुरुषों के मैंने दर्शन किये हैं उनमें से हर एक के पहनने का कुछ न कुछ—बहिर्वास, लँगोटी, आसन आदि के टुकड़े—एकत्र करके मैंने अपने झोले में रख छोड़ा है, उस समय मेरे हृदय का रक्त समझिए। गँदली कह कर मैली सी फिज़ूल 'चिन्दी' समझकर ज्यों ही विपिन बाबू उसमें से एक टुकड़ा निकालने लगे त्यों ही मैंने उनकी जाँघ को दाँतों से दबोच कर पकड़ लिया। फिर तुम लोग चाहे घूँसे मारो चाहे लाठियाँ, बिना खून गिराये मैं छोड़ने का नहीं। रक्त निकलते ही मैं उछल पड़ा। सामने देखा कि खासा सङ्कीर्तन हो रहा है। महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैत प्रभु नृत्य कर रहे हैं तथा सङ्कीर्तन-मण्डली के आगे आगे गोस्वामीजी 'हरि बोलो', 'हरि बोलो' कहते जा रहे हैं। मैं झटपट उस सङ्कीर्तन में कूद कर जा पहुँचा। फिर देखा कि गोते खा रहा हूँ। तब तुम लोगों ने मुझे खींच-खाँच कर नाव पर चढ़ा दिया।" श्रीधर के मुँह से यह कहानी सुनकर सभी लोग अचरज के मारे दङ्ग रह गये। श्रीधर, तुम धन्य हो!

• •
•

ब्रह्मचर्य की दीक्षा

आज ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने का महायोग है। सुना कि वहाँ पर स्नान करने के लिए हजारों आदमी एकत्र हुए हैं। हमारी कुञ्ज के भी सब लोग आज वहाँ गये हैं। मैं और-और दिनों की तरह सवेरे शौचादि से निवृत्त होकर यमुना नहाने को जाने लगा तो ठाकुर ने मुझे पुकार देकर कहा—तुम केशीघाट पर जाकर मुण्डन करा लो, फिर ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके झटपट आ जाओ। एक चोटी रहने देना।

श्रावण शु० दशमी, रविवार

गुरुदेव के कथनानुसार मैं यमुना-किनारे केशीघाट पर पहुँचा। चोटी बचाकर मैंने सिर मुँड़वा लिया। ब्रह्मकुण्ड पर जाकर देखा कि वहाँ इतनी भीड़ भाड़ है कि तिल रखने को भी जगह नहीं है। यद्यपि जल का रङ्ग मटमैला हो गया है और वह बहुत ही गन्दा है, फिर भी स्नान करनेवालों की भाव-भक्ति देखकर मुझे भी वहाँ स्नान करने की बहुत ही प्रबल इच्छा हुई। स्नान करके तर्पण किया और फिर झटपट कुञ्ज को लौट आया। गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रणाम करके मैं अपने आसन पर जा बैठा। इसी समय ठाकुर ने मुझको बुलाकर कहा—"कुलदा, हमारे आसनवाले कमरे में आओ। तुमको अभी ब्रह्मचर्य देंगे। बैठने को एक आसन लेते आओ।" आसन लेकर उस कमरे में पहुँचते ही मैंने देखा कि ठाकुर पहले से ही आकर अपने आसन पर बैठे हुए हैं। मुझ से कहा—"पूर्व की ओर मुँह करके मेरे सामने बैठो।" कम्बल का आसन बिछाकर मैं ठाकुर के सामने स्थिर होकर बैठ गया। अब मैं फूट फूटकर रोने लगा। सोचा, गुरुदेव आज मुझे ऋषि-मुनियों के पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दे रहे हैं। ठाकुर की कितनी दया है! ठाकुर थोड़ी देर तक स्थिर रहकर धीरे-धीरे मुझसे कहने लगे—

यह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत बारह साल, तीन साल या एक साल के लिए भी लिया जाता है। अभी तुम्हें एक वर्ष के लिए ही यह व्रत देते हैं। यदि नियम की रक्षा करके भली भाँति इस एक वर्ष को बिता सको तो फिर दुबारा दिया जायगा। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में निष्ठा ही मुख्य वस्तु है। निष्ठा खूब होनी चाहिए। किसी दशा में अपनी निष्ठा को न छोड़ना। जिन नियमों को बताये देते हैं उनकी रक्षा निष्ठा के साथ नियमानुसार करनी होगी।

(१) प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर साधन करना। फिर प्रातःक्रिया करके, पवित्र और शुद्ध होकर आसन पर बैठना। गायत्री का जप करना। इसके बाद गीता के कम से कम एक अध्याय का पाठ करना। पाठ कर चुकने पर फिर साधन करना। नहा लेने पर गायत्री का जप करके तर्पण आदि करना।

(२) स्वयंपाक करके उसी को भोजन करना, अथवा अच्छे ब्राह्मण के हाथ की रसोई भी खा सकते हो। भोजन में किसी प्रकार का अनाचार न होना चाहिए। भोजन का एक नियम बना लेना। परिमित आहार करना, न तो बहुत अधिक ही खाना और न कम ही, ऐसी चीज़ न खाना जिससे कामभाव उत्तेजित हो। अधिक मात्रा में चरपरा, खट्टा और मिठा भोजन न करना। शहद और घी के खाने से उत्तेजना बढ़ती है; अतएव इन चीज़ों को भी अधिक न खाना। खाने-पीने के सम्बन्ध में सदा चौकन्ने बने रहना। भोजन को शुद्धता से करना।

(३) भोजन करने के बाद थोड़ी देर तक बैठकर विश्राम करना। फिर भागवत, महाभारत, रामायण आदि को कुछ देर तक पढ़ना। इसके बाद एकान्त में बैठकर ध्यान करना। जी चाहे तो तीसरे पहर के बाद तनिक टहल सकते हो।

(४) सन्ध्या समय गायत्री का जप करना। फिर जिस तरह साधन आदि किया करते हो उसी तरह करते रहना। यदि कड़ी भूख लगे तो थोड़ा सा 'जल-पान' कर लेना। दोनों वक्त दाल-भात मत खाना।

(५) बहुत ही मामूली कपड़ा पहनना। साधारण बिछौने पर सोना। इन चीज़ों को अपने लिए निर्दिष्ट रखना। दिन को कभी न सोना। समय-समय पर साधुओं का सत्सङ्ग करना, उनके उपदेश को श्रद्धा के साथ सुनना। अपने साधन में विशेष रूप से निष्ठा रखना।

(६) न तो किसी की निन्दा करना और न किसी की निन्दा सुनना; जहाँ पर निन्दा होती हो उस स्थान को विष की तरह छोड़ देना।

(७) किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भाव न रखना। जो जिस रूप में साधन करें उन्हें उसी रूप में साधन करने को उत्साहित करना।

(८) किसी के दिल को चोट न पहुँचाना; सभी को सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करना। तुम से जहाँ तक बने वहाँ तक दूसरे की सेवा करना। मनुष्य, पशु-पत्ती, वृक्ष-लता प्रभृति की यथासाध्य सेवा करना। दूसरे के आगे अपने को छोटा समझना। सभी को मर्यादा देना। प्रत्येक काम को विचारपूर्वक करना। सदा प्रत्येक काम को विचारपूर्वक करने से कुछ भी विघ्न नहीं होता।

(९) सदा सच बोलना, सच्चा व्यवहार करना। असत्य कल्पना को मन में भी न आने देना। बातचीत कम करना।

(१०) युवती स्त्रियों को मत छूना। देव-दर्शन के समय, भीड़भाड़ में, रास्ते में, घाट पर अथवा बिना जाने छू जाना छू जाना नहीं माना जायगा। बहुत ही गुप्त रूप से अपना काम किये जाना।

(११) सदा खूब साफ और पवित्र रहना। पवित्र स्थान में पवित्र आसन पर बैठना। इन नियमों की रक्षा करके चल सकने पर अगले साल और भी नियम बतला दिये जायँगे।

इन नियमों का उपदेश देकर ठाकुर मेरी ओर देखते हुए खूब प्राणायाम करने लगे। मुझ से भी साथ साथ प्राणायाम करने को कहा तो मैं भी करने लगा। फिर मुझे दुर्लभ ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी। इस समय पर आनन्द के मारे मुझे नृत्य करने की इच्छा हुई। भाव में मस्त होकर मैं थोड़ी देर तक बैठा रहा। फिर ठाकुर ने मुझ से यहाँ से जाने को कहा।

मैं ज्योंही ठाकुर के कमरे से निकलकर बाहर आया त्यों ही सब लोग कुञ्ज में लौटकर आ गये। मेरे व्रत के सम्बन्ध में किसी को कुछ मालूम न हो पाया।

विचारपूर्वक दान का उपदेश

तीसरे पहर के बाद हम लोग ठाकुर के साथ श्रीश्रीगोविन्दजी के दर्शन करने को चले। मन्दिर के पास एक वृद्ध को देखकर ठाकुर खड़े हो गये। वृद्ध बहुत ही जरातुर

और कङ्गाल के वेश में थे। ठाकुर के सामने आकर वे हावभाव द्वारा अपने मनोगत भाव को व्यक्त करने लगे। इस समय मैंने ठाकुर से पूछा—'बुड्ढा क्या कहता है?' ठाकुर ने कहा—'तुम जिस कम्बल को ओढे हुए हो उसी को माँगता है।' मैंने कहा—'तो दे दूँ?' ठाकुर ने कहा—'जी चाहे तो दे दो।' वृद्ध को अपना कम्बल देकर मैं नङ्गे बदन ठाकुर के पीछे-पीछे चलने लगा। ठाकुर ने मुझ से पूछा—'तो तुम्हारे पास ओढने के लिए और कपडा नहीं है?' मैंने कहा—'सिर्फ एक फटी धोती है। और कुछ नहीं है। सवेरे पहर अपनी अलवान एक भिखारी को दे चुका हूँ।' सुनकर ठाकुर ने कहा—जिस चीज के न रहने से बहुत क्लेश सहना पडे ऐसी अत्यन्त आवश्यक वस्तु का दे डालना ठीक नहीं। उसके न रहने पर कष्ट होने से यदि एक बार भी दान के लिए पछतावा हो तो फिर सब व्यर्थ है। इस लिए हर एक काम को सोच विचार करके ही करना चाहिए। खैर, भगवान् ने तुम्हारे लिए प्रबन्ध कर रक्खा है।

कुञ्ज में आकर ठाकुर ने माताठाकुराणी से कहा—तुम अपने आसन का कम्बल कुलदा को सोने के लिए बिछाने को दे देना। उन्होंने तुरन्त मुझे अपना कम्बल ला दिया। माताठाकुराणी इस कम्बल के आसन पर बैठकर मुद्दत से साधन भजन करती आ रही थीं, इसका मिल जाना मेरे लिए बड़े भाग्य की बात थी। मुझे बडी प्रसन्नता हुई।

आसन का ग्रंथ

सवेरे रीति के अनुसार प्रातः क्रिया से छुट्टी पाकर मैंने यमुना में स्नान और तर्पण किया। कई दिन से ब्राह्मसमाजी मित्र गुरुभाई सतीश भी मेरे साथ तर्पण करते हैं। तर्पण करने से शायद उनको अपना शरीर हलका जान पडता है, मन में भी वे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। जब से उनकी यह बात सुनी है तबसे तर्पण पर मेरी भी श्रद्धा बढ़ गई। स्नान करके अपने आसन पर बैठकर मैंने थोड़ी देर तक साधन किया। मुझे प्रतिदिन गीता एक एक अध्याय का पाठ करने की आज्ञा हुई है, और मेरे पास गीता की प्रति है नहीं। हिम्मत करके मैं ठाकुर के आसनवाले कमरे में जाकर उनकी गीता की पुस्तक उठा लाया। पाठ कर चुकने पर फिर उसे यथास्थान रख

श्रावण शु० ११
सोमवार

आया। ठाकुर ने मुझ से कहा—"आसन के ग्रन्थ को कभी स्थानान्तरित न करना चाहिए, हानि होती है।"

मैं—मुझे गीता का पाठ करने की आज्ञा हुई है और मेरे पास गीता है नहीं।

ठाकुर—तो उस गीता को तुम बेधड़क पढ़ा करो। उसे दूसरे कमरे में न ले जाना। हमारे आसनवाले कमरे में ही बैठकर पढ़ सकते हो।

मैं—आसन से ग्रन्थ को उठाते ही तो उसका स्थानान्तरित करना हो जायगा न ?

ठाकुर—इसमें कुछ दोष नहीं होता। आसनवाले कमरे में ही रहना काफी है।

दृष्टिसाधन

दोपहर के बाद थोड़ी देर तक दृष्टिसाधन करके मैंने ठाकुर के पास आकर पूछा—बहुत दिनों से क्षिति में ही दृष्टिसाधन करता आता हूँ। अब क्या अन्य भूत में अभ्यास करूँ ?

ठाकुर ने कहा—नहीं, अभी वही करते रहो जिसे किया करते हो। और भी पक्का होने दो। जब एक में ठीक हो जाय तब दूसरे में करना ठीक होता है। एक ही बिन्दु में सारी दृष्टि को स्थिर करना चाहिए।

मैं—दृष्टि-साधन करने से क्या लाभ होता है ? ठाकुर ने कहा—आँखें साफ होती हैं; दृष्टिशक्ति बहुत बढ़ जाती है। बहुत दूर की चीज और सब सूक्ष्म विषय साफ देख पड़ते हैं। इसके सिवा जो कुछ और होता है उसको दृष्टि-साधन करते-करते ही समझोगे।

'करते-करते ही समझोगे'—ठाकुर के यह कह देने से और कुछ पूछने का मुझे साहस न हुआ। मैंने समझा कि उस बात के द्वारा ही ठाकुर ने मुझ से चुप रहने का इशारा किया है। मैं चुपचाप बैठा बैठा नाम का जप करने लगा।

श्रीविग्रह के दर्शन का उपदेश

थोड़ी देर में ठाकुर ने अपने आप कहा—जब तक श्रीवृन्दावन में हो, प्रतिदिन मंदिर में जाकर ठाकुरजी के दर्शन कर आया करो, लाभ होगा। मैं कहा—ठाकुरजी तो पाषाण की प्रतिमा है, पाषाण प्रतिमा के दर्शन करने से भला क्या लाभ होगा ?

आपके साथ जाकर कई बार तो दर्शन कर आया हूँ। समझ में नहीं आया कि इससे क्या लाभ हुआ।

ठाकुर ने कहा—हजारों मनुष्य जिन स्थानों में भगवद्बुद्धि से श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते हैं वहाँ पर उन भावों का एक योग बना रहता है। उन स्थानों में जाने से ही भीतर के धर्मभाव जाग उठते हैं। यह क्या थोड़ा लाभ है? और श्रीवृन्दावन के विग्रह तो साधारण पाषाण-मूर्तियाँ नहीं हैं। तुमने "भक्तमाल" पढ़ी है? एक बार पढ़ो।

मैंने पूछा—श्रीवृन्दावन के मन्दिरों के ठाकुरजी क्या बातचीत करते हैं? हाथ-पैर हिलाते-डुलाते हैं? सभी लोग कहते हैं कि यहाँ के सब ठाकुरजी जाग्रत हैं। तो किस तरह के जाग्रत हैं? ठाकुर ने कहा—जिनके उस तरह के कान और आँखें हैं वे ठाकुरजी का हाथ पैर हिलाना भी देखते हैं और उनकी बातचीत भी सुन लेते हैं। यह सब कहने से भला साधारण आदमी विश्वास कर सकेंगे?

स्वप्न। गङ्गा के भँवर में डूबना

माताठाकुरानी के आजाने से ठाकुर के चाय पीने का अब खासा प्रबन्ध हो गया है। श्रावण शु० १२, मङ्गलवार रामकृष्ण परमहंसदेव के कृपापात्र श्रीयुत राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी), प्रबोधचन्द्र और दत्त बाबू प्रतिदिन चाय पीने को हमारी कुञ्ज में आते हैं। कठिया बाबा के आश्रित श्रीयुत अभय बाबू भी प्रतिदिन आया करते हैं। सब लोगों के चाय पी लेने पर श्रीधर श्रीचैतन्यचरितामृत पढ़कर सुनाते हैं। इसके बाद ठाकुर की आज्ञा पाकर अभय बाबू "इमीटेशन आफ क्राईस्ट" पढ़कर उसका बँगला में अर्थ सबको सुनाया करते हैं। ठाकुर ने आज इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा करके कहा—'इमीटेशन आफ क्राईस्ट' प्रतिदिन पढ़ने लायक है। जिन्होंने इस ग्रन्थ को लिखा है वे एक महापुरुष हैं।

सबके चले जाने पर गत रात्रि के एक स्वप्न का वृत्तान्त मैंने ठाकुर को सुनाया। स्वप्न यह है—निर्मल, शीतल गङ्गाजल में गले तक उतर कर प्रफुल्ल मन से स्नान कर रहा हूँ, किसी ओर मेरी नजर नहीं है। अकस्मात् प्रबल धारा में फँस गया। धारा मुझे बहा ले

चली। मैं बढ़िया तैराक हूँ, इसलिए मैंने धारा में फँस जाने की कुछ परवा न की। फिर जब देखा कि किनारे से बहुत दूर हट आया हूँ तब पार जाने के लिए जी-जान से कोशिश करने लगा। किन्तु बहाव के प्रतिकूल तैरते तैरते मैं थककर बिलकुल सुस्त हो गया। बेहद थक जाने के कारण मैंने लाचार होकर हाथ-पैर चलाना बन्द कर दिया। थोड़ी ही देर में देखा कि बहुत ही भयावनी जगह में आ गया हूँ। बड़ी भारी भँवर है जिसमें तरङ्ग नाम लेने को भी नहीं, यह सन्-सन् करके चक्कर काटती हुई धीरे-धीरे नीचे की ओर एक अज्ञात-केन्द्र गह्वर में जाकर गिर रही है। मैं उसी भँवर के पानी के साथ-साथ धीरे-धीरे पाताल की तली में जाने लगा। चारों ओर आँखें फाड़कर देखा, स्थल का किनारा कहीं नज़र न आया। तब सोचा, 'हाय, यह क्या हुआ? परमपवित्रतोया साक्षात् ब्रह्मरूपिणी गङ्गाजी में था, इन्हीं के भँवर में पड़कर अब रसातल को चला!' इसी समय अकस्मात् मँझले दादा गङ्गा किनारे आ गये, मुझे जीवन-सङ्कट में पड़ा हुआ देखकर वे उन्मत्त की तरह हित-अहित का विचार छोड़कर झटपट गङ्गाजी में कूद पड़े और फुर्ती से तैरकर मेरे पास आ गये। फिर बायें हाथ से मुझे छाती से लगाये हुए, दाहने हाथ से जी-जान से तैरते-तैरते, किनारे पर पहुँच गये। पार लग जाने पर हाँफते हाँफते मैं जाग पड़ा।

स्वप्न को सुनकर ठाकुर ने कहा—स्वप्न में जो कुछ देखो उसे लिख रक्खो। अनेक अवसरों पर स्वप्न में भविष्यत् की घटना का आभास मिल जाता है।

स्वप्न की बातें करते करते मैंने मँझले दादा की चर्चा छेड़ दी। ठाकुर से पूछा—क्या मँझले दादा ने दीक्षा ले ली?

ठाकुर—दीक्षा ले ली होगी तो भेंट होते ही समझ जाओगे।

मैं—किस तरह समझ जाऊँगा? वे मुझे बतलावेंगे थोड़े ही।

ठाकुर—उनके बतलाये बिना भी तुम जान जाओगे। जिनको यह शक्ति प्राप्त हो जाती है उनसे कहीं दुराव हो सकता है?

मैं—आपकी बात से ही तो मालूम हो गया कि उन्होंने दीक्षा ले ली है। फिर आप साफ़-साफ़ बतला क्यों नहीं देते?

ठाकुर ने बच्चे की तरह हँसते-हँसते कहा—बतलाऊँ किस तरह ? उन्होंने मुझको मना जो कर दिया है।

ठाकुर की यह बात सुनकर सभी लोग खूब हँसने लगे।

श्री वृन्दावन की रज

श्रीवृन्दावन में आकर देखता हूँ कि गुरुभाइयों को जूठे-मीठे का विचार नहीं है, साफ-पाक रहने की भी किसी को ज्यादा परवा नहीं है। भोजन कर चुकने पर सभी जूठे हाथ से मिट्टी लपेट लेते हैं, जूठे मुँह से मिट्टी मलते हैं। उनके हाथ धुलाने जाता हूँ तो वे लोग मुझे जोर से पकड़ लेते हैं और जबर्दस्ती मेरे हाथों में तथा मुँह में धूल और बालू घिसकर कहते हैं, 'अब तू पवित्र हुआ'। नहाकर आते समय भी वे मेरे साफ़ शरीर में कीचड़, मिट्टी और धूल लगा देते हैं। यदि मैं नाराज होता हूँ अथवा चिढ़ जाता हूँ तो रास्ते के दोनों ओर से वैष्णव बाबा लोग मुझे ठण्डा रहने का उपदेश देकर कहते हैं—"क्रोध न कीजिए। आनन्द कीजिए। इससे राधा रानी कृपा करती हैं, कृष्णभक्ति प्राप्त होती है।" इससे गुरुभाइयों को और भी उत्साह बढ़ जाता है। आज दोपहर को हरिवंश पढ़ चुकने पर गुरुभाइयों के इस अत्याचार, अनाचार और अशिष्ट बर्ताव में रुकावट होने की आशा से मैंने ठाकुर से पूछा—'श्रीवृन्दावन की मिट्टी में क्या इतना गुण है कि उसे लगा लेने से जूठा भी शुद्ध हो जाता है ?'

ठाकुर—श्रीवृन्दावन की मिट्टी नहीं, रज कहना चाहिए। व्रज की रज परम पवित्र है। पृथिवी के अन्य किसी स्थान की मिट्टी के साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती। इस रज के लगा लेने से जूठन आदि सब कुछ शुद्ध हो जाता है; श्रीवृन्दावन में जल की अपेक्षा रज से ही अधिक पवित्रता होती है।

मैं—खा-पीकर जूठे हाथ मुँह में रज लगा लेने से शुद्धता हो जायगी ! फिर पानी से धोने की आवश्यकता नहीं होगी ?

ठाकुर—जब मैं यहाँ पहले-पहल आया तब भोजन कर चुकने पर जल से ही हाथ-मुँह धोता था; व्रजवासियों ने मुझसे कहा, "बाबा, व्रज की रज लगा लेने से और भी अधिक शुद्धि हो जाती है।" मुझसे दो दिन तक इस प्रकार कहे

जाने पर मैंने सोचा कि 'अच्छा, यही कर देखें।' तीसरे दिन से मैं पानी का उपयोग न करके हाथों में और मुँह में रज ही लगाने लगा। ऐसा करते ही मेरे मन से दुविधा दूर हो गई, जूठन का कुछ संस्कार ही न रह गया। गंगाजल से धोने पर जैसे पवित्रता मालूम होने लगती है वैसा ही मुझे जान पड़ने लगा। तब से मैं इस रज से ही काम लेता हूँ। सफाई के लिए थोड़े से पानी से हाथ-मुँह धो लेना बहुत है। यहाँ तो ठाकुरजी के भोग के बर्तनों तक को रज से रगड़ लिया जाता है, इसी से वे पवित्र हो जाते हैं।

मैंने पूछा —तो क्या ब्रज की रज में बहुत ही गुण हैं? उसको शरीर में लपेट लेने से तो सत्वगुण की वृद्धि होती है? रज में विश्वास हुए बिना क्या सिर्फ देह में मल लेने से ही सत्वगुण बढ़ जायगा?

ठाकुर—देह में रज को मलने से ही इसका मतलब समझोगे। विश्वास करो चाहे न करो, वस्तु का गुण कहाँ जायगा? कुछ दिन हुए, एक बङ्गाली भले मानस श्रीवृन्दावन में आये थे। दो-तीन दिन तक मन्दिरों में दर्शन करके दाऊजी के यहाँ आये। मैं उस समय मन्दिर के समीप बैठा हुआ था। बातचीत में उन्होंने मुझसे कहा "महाशय, देश में रहते समय वृन्दावन के माहात्म्य की न जाने कितनी बातें सुनी हैं। किन्तु है वह कहाँ? कहीं कुछ भी तो नहीं देखा। रज का बहुत गुण सुना था, वह भी तो कुछ समझ में नहीं आया। जैसे जैसे और स्थान हैं, वैसा ही मुझे वृन्दावन जान पड़ता है।" मैंने उनसे कहा, 'रज में तो अवश्य ही विशेषता है। आप एक बार रज में गिरकर तो देखिए।' उन्होंने एक बार रज में माथा टेककर कहा "कुछ तो नहीं है, जैसे का तैसा ही हूँ।" मैंने कहा, 'कोट उतार डालिए, साष्टाङ्ग प्रणाम करके रज में एक बार लोट जाइए, फिर देखिए कि कुछ परिवर्तन होता है या नहीं।' वे तुरन्त ही जाँच करने को कोट उतारकर रज में लोटने लगे। दो-तीन बार लोटते ही वही जानते हैं कि उन्हें क्या हो गया, उन्होंने ऊँ-ऊँ करके रो दिया। कहने लगे, "महाशय, हूँ तो मैं बड़ा अविश्वासी; किन्तु ज़िन्दगी में कभी रज के इस गुण को न भूलूँगा।"

ठाकुर इसी प्रकार बहुत देर तक अनेक दृष्टान्त दे-देकर, रज के असाधारण माहात्म्य का वर्णन करते रहे। फिर थोड़ी देर में हम लोग ठाकुरजी के दर्शन करने गये।

मथुरा के मार्ग में श्रीधर की करतूत

और-और दिनों की भाँति ६ बजे के भीतर ही मैंने आसन का कार्य पूरा कर लिया।

श्रावण शु० १४

मुझको बुलाकर ठाकुर ने कहा—कई दिन से हरिमोहन ज्वर में बड़ा कष्ट पा रहे हैं। तुम्हें देखना चाहते हैं। मनोमोहन (मथुरा के असिस्टट सर्जन) के डेरे पर हैं। तुमको वहाँ आज ही जाना चाहिए। पीड़ित अवस्था में यदि कोई देखना चाहे तो जाना पड़ता है। तुम अभी चले जाओ।

मैंने कहा—मैं रास्ता नहीं जानता, मैंने मनोमोहन बाबू का डेरा भी नहीं देखा। किसके साथ जाऊँ? ठाकुर ने श्रीधर को बुलाकर कहा—कुलदा को मथुरा में मनोमोहन के डेरे पर ले जाओ। यह मथुरा गया नहीं है, अस्पताल भी इसने नहीं देखा।

मैं श्रीधर के साथ रवाना हुआ। हम लोगों के साथ सतीश भी हरिमोहन को देखने चले। अनेक स्थानों में चक्कर काटकर बड़ी मुश्किल से एक बजे के लगभग हम लोग मथुरा पहुँचे। स्वामीजी हरिमोहन को मुझे देखने से बड़ा आराम मिला। थोड़ी देर तक वहाँ विश्राम करके हम लोग श्रीवृन्दावन को लौट पड़े। श्रीधर का सिर गरम हो गया है। रास्ते भर उन्होंने हम लोगों को बेहद परेशान किया। मनोमोहन बाबू के डेरे पर हम लोगों को पहुँचाकर ही, बिना कुछ कहे-सुने, सहज ही श्रीवृन्दावन की ओर उन्होंने दौड़ लगा दी। हम लोग घाट-बाट कुछ जानते नहीं। तीन बजे के लगभग कुञ्ज में पहुँचे। भोजन आदि से छुट्टी पाकर ठाकुर के पास बैठते ही उन्होंने पूछा—श्रीधर तुम लोगों को ठीक रास्ते से ले गये थे न? उन्होंने कुछ गड़बड़ तो नहीं किया?

मैं उत्तर देने लगा—कुञ्ज से बाहर पैर रखते ही श्रीधर हाथ-मुँह मटकाकर बोले कि 'चल, मथुरा को चल, अब की तुम लोगों को मथुरा दिखाऊँगा', बस, अब लम्बे-लम्बे *डग रखकर वे उलटी ओर सीधे बंशीवट पर पहुँचे। हम लोगों को वहाँ से यमुना* किनारे किनारे एकदम राधाबाग में ले गये। जङ्गल में जाकर श्रीधर ने कहा, "सीधे चलो"। हम लोगों ने पूछा, 'रास्ता कहाँ है?' तब श्रीधर फुर्ती से हम लोगों को वन के भीतर चक्कर

खिलाने लगे। एक ही स्थान में दो-तीन बार चक्कर लगाने पर हम लोगों ने समझा कि श्रीधर की अक्ल ठिकाने पर नहीं है। तब धीरे-धीरे पूछा, 'भाई श्रीधर, मथुरा है किस ओर!' श्रीधर ने उत्तर दिया "मोर देखो!" हम लोग करते क्या? चुप हो रहे। थोड़ी देर में श्रीधर साफ़ रास्ते से न चलकर रास्ते के दाहने और बायें वन के भीतर दौड़ने लगे। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे जंगल में दौड़ लगाकर थक गये। इस तरह हैरान होते-होते अन्त में हम लोग एक बड़े से मैदान के सामने पहुँचे। अब श्रीधर को समीप देखकर फिर पूछा, "भाई, श्रीधर, मथुरा अब कितनी दूर है!" श्रीधर ने रास्ते का एक बड़ा सा बरगद का पेड़ दिखाकर कहा, "नमस्कार करो। इस पेड़ को गोस्वामीजी ने खोज निकाला है।" हम लोगों ने बरगद को नमस्कार करके देखा कि उसमें नीचे से लेकर ऊपर तक देवमूर्तियाँ बनी हुई हैं; जड़ की ओर साफ़-साफ़ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और गणेश आदि की मूर्तियाँ अपने आप बनी मौजूद हैं। हम लोग यह सोचकर दङ्ग हो गये कि हाथ की बनाई हुई मिट्टी की पुतली की तरह इतनी साफ़ देवमूर्ति वृक्ष में कैसे उत्पन्न हो गई। सतीश और मैं दोनों ही मूर्तियों को ध्यान से देख रहे थे, इतने में ही श्रीधर एकाएक फिर मैदान के बीच में होकर दौड़ चले। हम लोग उनके पीछे-पीछे चलकर एक बस्ती में पहुँचे। वहाँ की बहुत ही बुरी-बुरी जगहों पर से हम लोगों को ले जाकर फिर एक बड़े भारी मैदान में पहुँचा दिया। उस लम्बे चौड़े मैदान के बीचोंबीच तक श्रीधर थोड़ी देर खूब धीरे-धीरे चले। फिर मैदान के बीच में पहुँचते ही हम लोगों से बिना कुछ कहे दौड़ना शुरू कर दिया। हम लोग भी पीछे-पीछे दौड़ लगाने लगे। अब श्रीधर एक बार दाहनी ओर तो दूसरी बार बाईं ओर बेतहाशा दौड़ने लगे। हम लोग रास्ता जानते न थे, क्या करते! उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। यह मुसीबत झेलकर, बड़ी देर में, हम लोग उनके साथ यमुना किनारे पहुँचे। अब श्रीधर घास के जङ्गल के भीतर होकर धीरे-धीरे चले। थोड़ी दूर जाकर, अकस्मात् "जलजन्तु रे जलजन्तु" कहकर घास के ऊपर से दौड़ लगा दी। दूसरा उपाय न देखकर हम लोग भी पीछे-पीछे दौड़ने लगे। कुछ दूर जाने पर हम लोग एक छोटे से नाले के किनारे पर पहुँचे। मैंने पूछा, "भाई, श्रीधर यहाँ कहाँ ले आये!" श्रीधर ने कहा, "नाले को पार करो।" हम लोगों ने कहा, "पहले तुम्हीं उस पार जाओ।"

उन्होंने कहा, "तैरना नहीं जानते।" तब सतीश ने धमकाकर कहा, "आओ, अब तुम्हें पानी में डुबाता हूँ।" श्रीधर ने चटपट एक बार आगे-पीछे ताककर सीधी दौड़ लगा दी। हम लोगों ने भी उनका पीछा किया। एक जगह थोड़ी सी हड्डियाँ देखकर श्रीधर ठहर गये, हड्डियों को इधर उधर हटाते हुए हम लोगों की ओर बार-बार देखने लगे। सतीश ने कहा—"श्रीधर, यह क्या करते हो? वे तो गोरू की हड्डियाँ हैं! छि' छि'।" यह सुनते ही श्रीधर "रहो साले" कहकर बड़ी सी रीढ़ की हड्डी को कन्धे पर रखकर सतीश को भगा आये। "पगला साला इस दफे खून कर डालेगा" यह कहकर सतीश भाग खड़े हुए, प्राणों की भय से मैंने भी यही किया। श्रीधर पीछा करके हम लोगों को पकड़ने पर तुल गये। दूसरा उपाय न देखकर सतीश के साथ मैं भी नाले में कूद पड़ा। श्रीधर भी दौड़कर आ गये और वह हड्डी लिये हुए पानी में कूद पड़े। वे तैरना नहीं जानते हैं; गोते-खाते-खाते हड्डी छोड़ दी। तब हम लोगों ने किसी तरह उन्हें खींच-खाचकर दूसरे पार पर पहुँचाया। फिर बड़ी मुश्किल से उनके साथ मथुरा में मनोमोहन बाबू के डेरे पर पहुँचे। स्वामीजी हरिमोहन को देखा, अब उनको कुछ आराम है। चङ्गे होते ही वे यहाँ आवेंगे। हम लोगों के 'जल-पान' के लिए श्रीधर ने मनोमोहन बाबू से कई आने पैसे वसूल करके कहा—"भाई, तुम लोग थोड़ी देर बैठो, तुम लोगों के लिए भुने चने ले आऊँ।" बस, श्रीधर वहाँ से सीधे स्टेशन जा पहुँचे, और हम लोगों के 'जल-पान' के उन्हीं पैसों से टिकिट लेकर श्रीवृन्दावन चले आये हैं। हम लोग बड़ी देर तक उनकी बाट जोहते रहकर फिर यहाँ चले आये हैं।"

श्रीधर के पागलपन की ये बातें सुनकर ठाकुर हँसने लगे। ठाकुर की प्रसन्नता देखकर हम लोगों को भी आनन्द हुआ। धन्य श्रीधर! तुम्हीं धन्य हो! तुम्हारा यह पागलपन तो साधन-भजन से भी बढ़कर है।

मैंने ठाकुर से पूछा—तो क्या उस वृक्ष को आपने ही पहले-पहल ढूँढ निकाला था? उन मूर्तियों पर सिन्दूर आदि का तिलक भी लगा मिला।

ठाकुर—पञ्चकोशी परिक्रमा करते समय मैंने उस वृक्ष को देखा था। तब तक उस वृक्ष की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। जो लोग साथ में थे उन्हें उक्त वृक्ष में देवी देवताओं की मूर्तियाँ दिखा दी थीं; उन्होंने उसको सब जगह

प्रसिद्ध कर दिया है। अब पण्डे उस पेड़ को दिखलाकर यात्रियों से टके वसूल करते हैं; सिन्दूर आदि भी पण्डों ने ही लगा दिया है।

मैं—किन्तु वृक्ष तो सचमुच विचित्र है। सुना कि वे देव-देवियाँ सचमुच उस वृक्ष में हैं। भला देव-देवियाँ वहाँ पर उस जङ्गल में पेड़ के सहारे रहेंगी ही किस लिए!

ठाकुर—अरे बापू, कितने ही देवी-देवता, ऋषि-मुनि इस श्रीवृन्दावन की रज को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं! यहाँ की रज के प्रत्येक कण में महाविष्णु वर्तमान हैं।

अब ठाकुर के मुँह से श्रीवृन्दावन की रज का माहात्म्य सुनते-सुनते दिन डूब गया। हम लोग श्रीदाऊजी महाराज की आरती देखने को नीचे उतर आये।

स्वप्न। गृहस्थ न होना पड़ेगा

रात के पिछले पहर एक स्वप्न देखने से मेरे मन में बड़ी बेचैनी हो गई है। समय भाद्र कृ० १, सं० १६४७; पाकर मैंने ठाकुर को स्वप्न सुनाया—"एक निर्जन मनोरम

शुक्रवार

स्थान में पाँच महापुरुष अपने-अपने आसन पर बैठे हुए धर्मप्रसङ्ग में निमग्न हैं; मैं उन लोगों के समीप जा पहुँचा। उन पाँचों में एक बारोदी के ब्रह्मचारीजी भी थे। सबके चरणों के उद्देश्य से साष्टाङ्ग प्रणाम करके मैं उनके दर्शन करने लगा। मुझे देखकर सभी महापुरुष एक साथ कहने लगे—'यह क्या? तुम यहाँ क्यों आये? क्या चाहते हो? तुम्हारा तो कर्म अभी तक बाकी पड़ा है। तुमको तो संसार का बहुत काम करना है।' मैंने कहा,-'यदि मेरे प्रारब्ध में संसार का कर्म होगा तो हो जायगा। किन्तु प्रारब्ध कर्म तो मेरे ठाकुर की ही मुट्ठी में है। वे जो कहेंगे वही तो कर्म है। उसके सिवा और कर्म क्या है? अच्छा, जाकर अपने गुरुदेव से पूछता हूँ, वे मुझसे ब्याह-शादी करके गृहस्थ बनने को कहते हैं या नहीं।' अब मैं उन्हें प्रणाम करके आपके पास आ पहुँचा। आपको महापुरुषों का वचन सुनाकर मैंने पूछा—'तो क्या मुझे कर्म के फन्दे से छुटकारा न दीजिएगा? तो क्या मुझे सचमुच फिर गृहस्थी के जञ्जाल में पड़ना होगा?' आपने मुझे सस्नेह दृष्टि से देखकर, सिर हिलाकर, कहा—नहीं, नहीं, तुमको

अब गृहस्थी के पचड़े में न पड़ना होगा। ये कई बातें सुनकर ही मैं उठ बैठा। तो क्या यह स्वप्न सत्य है?

ठाकुर ने कहा—ऐसे स्वप्न मिथ्या नहीं होते। तुम्हें अब गृहस्थी का काम धाम या ब्याह-शादी कुछ न करना होगा। स्वप्न को लिख रक्खो। अब से सभी स्वप्नों को लिख लिया करो। और भी बहुत देखोगे।

वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष

कल श्रीवृन्दावन की परिक्रमा के मार्ग में, बड़े रास्ते के किनारे, जिस पुराने बरगद को देख आये हैं उसी वृक्ष के सम्बन्ध में दो चार बातें छेड़ते ही बहुत सी बातें होने लगीं। नहीं कहा जा सकता कि श्रीवृन्दावन में कितने महापुरुष वृक्षरूप में मौजूद हैं। गुरुदेव ने जो कुछ देखा है उसका वर्णन वे करने लगे—एक दिन हम घूमते-घामते राधा-बाग में जा पहुँचे। यमुना-किनारे थोड़ा सा एकान्त स्थान पाकर वहाँ एक पेड़ के तले स्थिर होकर बैठ गये। थोड़ी ही देर में हम को 'सर् सर्' शब्द सुनाई पड़ने लगा। देखा तो सामने एक पेड़ काँप रहा है। देखने से बड़ा अचम्भा हुआ। हम आम के पेड़ की ओर देखते रहे। अब देखा कि वहाँ वृक्ष तो है नहीं, एक परम सुन्दर वैष्णव महात्मा खड़े हुए हैं। उनके द्वादश अङ्गों में यथारीति तिलक लगे हुए हैं, गले में कण्ठी है और तुलसी की माला है, हाथ में भी जप करने को तुलसी की माला लिये हुए हैं। उनका हाल जानने की इच्छा करने से उन्होंने हमें अपना पूरा परिचय दिया और कहा कि 'यहाँ पर हम वृक्ष रूप में रहते हैं।' और भी बहुत सी बातें करके वे तुरन्त ही वृक्षरूपी हो गये। हमने दो-एक वैष्णवों से यह बात कही तो उन्हें इस पर विश्वास न हुआ, उलटा मजाक करके उन लोगों ने जाकर यह हाल गौर शिरोमणिजी को सुनाया। शिरोमणिजी ने हमसे पूछा तो हमने उन्हें सब हाल खुलासा कह सुनाया। सुनकर वे रज में लोटने लगे, रोने लगे; फिर हम से कहा—"प्रभो, ये बातें चाहे जिससे न कहिएगा, विश्वास तो करेगा नहीं, उलटा हँसी करेगा।"

मैंने सुना कि फिर गौर शिरोमणिजी भी राधा-बाग में जाकर उन वृक्षरूपी वैष्णव महात्मा के दर्शन कर आये थे। मैंने ठाकुर से पूछा—महात्मा लोग फिर यहाँ वृक्षरूप में रहते किस लिए हैं?

ठाकुर—श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है। यहाँ पर अप्राकृत लीला नित्य ही होती रहती है। बेखटके होकर उसी के दर्शन करने को वैष्णव महापुरुष लोग वृक्ष आदि के रूप में रहते हैं; ब्रजधाम में रहकर आनन्द से भजन करते हैं और लीला देखते हैं।

मैं—वृन्दावन में जो महापुरुष लोग वृक्षरूप में रहते हैं उनको तो साधारण लोग पहचान नहीं पाते। वृक्षों के ऊपर किसी प्रकार का उपद्रव करने से उन महापुरुषों की क्या कुछ भी हानि नहीं होती?

ठाकुर—इसी लिए तो ब्रज के पेड़-पौदों की भी हिंसा का निषेध है। उपद्रव करने से उनकी बहुत हानि होती है। यही कुछ दिन की बात है, एक वृक्ष के ऊपर अत्याचार करने से बेढब अनिष्ट हो गया।

मामले को जानने के लिए कौतुक प्रकट करने पर ठाकुर कहने लगे—यहाँ से पास ही एक कुञ्ज में बहुत पुराना नीम का सुन्दर पेड़ था, कुञ्ज के वैष्णव बाबाजी पेड़ की खासी हिफ़ाज़त करते थे। एक दिन वहाँ की एक वैष्णव युवती ने, रजस्वला अवस्था में, उसे पकड़ लिया। रात को बाबाजी ने सपने में देखा—एक वैष्णव ब्रह्मचारी ने आकर उनसे कहा—"तुम्हारी इस कुञ्ज में इतने दिन से बड़े आराम में रहते थे, कल तुम लोगों की वैष्णवी अशुद्ध काम-कलुषित दशा में रहकर वृक्ष से बारबार लिपटी है। इससे मेरा बहुत नुक़सान हुआ है; इसी से मैंने इस स्थान को छोड़ दिया।" बाबाजी ने सवेरे उठकर देखा कि पेड़ बिलकुल सूख गया है। हम लोगों ने भी जाकर देखा, एक ही रात के बीच में वह भारी पेड़ बिलकुल सूख गया है।

ठाकुर से ये बातें सुनकर मैं दङ्ग हो गया। मुँगेर में जो गुलाब के पौदे की घटना हुई थी उसकी मुझे याद हो आई। ठाकुर से उन पौदों की चर्चा की तो उन्होंने कहा—ठीक तरह से सेवा की जाय तो वृक्ष की बातचीत भी सुनाई दे सकती है।

श्रीवृन्दावन के सभी वृक्ष सचमुच में अद्भुत हैं। छोटे-बड़े सभी वृक्षों की शाखा-प्रशाखाएँ लता की तरह झुककर पृथ्वी की ओर लटक आई हैं, पत्ते तक मय डंडियों के नीचे को झुके रहते हैं। ऐसा और कहीं नहीं देखा। निधुवन में और अन्यान्य पुरानी पुरानी कुञ्जों में तथा वन में बड़े बड़े वृक्ष रज में लोटे रहकर बढ़ रहे हैं। कुछ समझ में नहीं आता कि ये ऊँचे ऊपर की ओर क्यों नहीं तने रहते। उन वनों में बहुत दिनों के पुराने पुराने बहुत से पेड़ तो लता जान पड़ते हैं। अद्भुत ब्रजभूमि है! यह भूमि का ही गुण जान पड़ता है कि मस्तक ऊँचा नहीं करने देती। उद्दण्ड स्वभाव के दुर्विनीत आदमी का भी, श्रीवृन्दावन में बहुत समय तक रहने पर, रज के प्रभाव से मस्तक झुक जाता है, इस पर अविश्वास करने को जी नहीं चाहता। और-और सैकड़ों दोषों के रहते हुए भी ब्रजवासियों का स्वभाव मृदु और विनीत देखता हूँ।

श्रीवृन्दावन में भयंकर मच्छर

श्रीवृन्दावन में दिन भर तो आनन्द से रहता हूँ, किन्तु सन्ध्या होते ही आतङ्क छा जाता है। दिन डूबना आरम्भ होते ही मच्छरों के उत्पात की याद करके घबरा जाता हूँ। ऐसे भयङ्कर मच्छरों से और कहीं पाला नहीं पड़ा। रात होते ही मच्छरों के झुण्ड के झुण्ड आकर बदन पर टूटते हैं। सोने का कुछ उपाय नहीं है, एक स्थान पर आराम से थोड़ी देर बैठना भी असम्भव हो जाता है। सारी रात तड़प-तड़पकर बिताता हूँ; सोचता हूँ, अब कितनी देर में सवेरा होगा। रात को ठाकुर भी कमरे के भीतर न रहकर अब तक पहले की तरह बरामदे में ही बैठे रहते हैं। माताठाकुराणी भी रात भर पखा हाथ में लिये ठाकुर को हवा किया करती हैं। ठाकुर दो-तीन बार माताठाकुराणी से विश्राम कर लेने के लिए कहते हैं, किन्तु वे उस बात को नहीं मानतीं, स्थिरता से सवेरे तक मच्छरों को भगाती रहती हैं। पखा झलती रहकर माताठाकुराणी ठाकुर की सेवा में ही रात बिता देती हैं। उधर मच्छरों के काटते रहने से कुत्ते तड़पते रहते हैं। बड़ा ही कष्ट है। ठाकुर की एक मसहरी थी, किन्तु वे उसका उपयोग नहीं कर सके। श्रीवृन्दावन में पहुँचकर कई दिन बाद ही श्रीयुक्त राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी) को बुखार आ जाने से खाट पर गिरना पड़ा। देखने जाकर ठाकुर ने देखा कि राखाल बाबू अँधेरे कमरे में पड़े हुए हैं।

तुरन्त ही कुञ्ज में आकर ठाकुर अपनी मसहरी, डोरी और लोहे की ४ छड़ें लेकर राखाल बाबू के कमरे में पहुँचे और उसे उनके बिछौने पर चुपचाप टाँग कर चले आये। आज बातों ही बातों में कूतू ने ठाकुर से कहा—"बाबूजी, श्रीवृन्दावन में तो हिंसा करने की मनाही है, किन्तु रात को मच्छरों को भगाते समय हिंसा हो ही जाती है।"

ठाकुर—तो क्या तू मच्छरों को मार डालती है? दो-चार दिन तक मच्छरों को काटने न दे! फिर देखना कि उनका काटना ही न जान पड़ेगा।

कूतू—तुम्हें क्या मच्छरों का काटना कष्ट नहीं देता?

ठाकुर—अब तो उनका काटना जान ही नहीं पड़ता। जब पहले-पहल आये थे तब बहुत कष्ट देता था। एक दिन मच्छरों को भगाते समय हाथ पर हाथ फेरने में क्या देखा कि हाथ पर मच्छर ही मच्छर हैं! उस समय क्या करते? भगाते हैं तो सैकड़ों मच्छर मरते हैं। तब हम हाथ-पैर हिलाये-डुलाये बिना एक से ही बैठे रहे। रात भर में उन्होंने हमारा इतना रक्त पी लिया कि सवेरे उठने पर हमारा शरीर बेकाबू जान पड़ने लगा। किन्तु इससे हमारा तनिक भी नुक्सान न हुआ, उलटा फायदा ही हुआ। उस समय हमें प्रतिदिन *जूड़ी-बुखार (मलेरिया) आ जाता था। जिस दिन हमें मच्छरों ने बुरी तरह* काटा उस दिन से बुखार का आना बन्द हो गया। मच्छरों ने मलेरिया के विष को चूस लिया। फिर उस दिन से हमें मच्छरों के काटने से कुछ तकलीफ भी नहीं होती। क्या तुम लोग थोड़ा सा सह न सकोगे? दो-एक दिन तक उनका काटना सह लो तो देखना फिर कुछ कष्ट होता है या नहीं! न हो तो मच्छर से तनिक कह तो सकती है कि हमें मत काटो। बस, इतने से ही हो जायगा।

कूतू—कहने से ही मच्छर भला क्यों सुनने लगे?

ठाकुर—जरूर सुनेंगे। अच्छा हम कहे देते हैं, देखें मानते हैं कि नहीं? "मच्छरो, तुम कूतू को मत काटना।" जा, अब जो तुझे मच्छर काटें तो हम से कहना।

साधन में अनेक प्रकार के अनुभव का क्रम

शनिवार भाद्रपद कृ० २

भोजन करके हरिवंश का पाठ करने के उपरान्त हम सब लोग गुरुजी के पास बैठे हुए हैं, गुरुदेव अपने आप धीरे धीरे कहने लगे—दर्शन का विषय जिस प्रकार क्रम क्रम से थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे, साफ़ तौर पर प्रकट होता है वही हाल श्रवण का भी होता रहता है। श्रवण के आरम्भ में एक तरह का 'किच् किच्' शब्द सुन पड़ता है। उस शब्द के होते ही ऊबकर, न सुनने से अनिष्ट हुआ करता है। नाम का जप करते हुए उस शब्द को बड़ी निष्ठा से सुनना चाहिए, निष्ठा रखने से ही धीरे धीरे सब प्रकार के शब्द सुनाई पड़ने लगते हैं। हाँ, अन्यान्य शब्दों की तरह यह शब्द नहीं है, इसमें थोड़ी सी विशेषता रहेगी ही। उसका पता पहले से ही लग जाता है। निष्ठा रख कर स्थिर चित्त से उन शब्दों को सुनने से ही धीरे धीरे बातचीत भी सुनाई देने लगती है। सब बातें की जा सकती हैं, प्रश्न करने पर उत्तर मिलता है। किन्तु जब तक बातचीत नहीं होती, तब तक पूरा पूरा विश्वास नहीं होता। विश्वास की दृढ़ता के साथ साथ बातें करनेवाले के अङ्ग आदि का स्पर्श भी क्रम-क्रम से साफ़-साफ़ हुआ करता है। यह स्पर्श पाञ्चभौतिक स्पर्श नहीं है। यह स्पर्श दूसरे ढंग का है। यह सब जब होता है तभी ठीक ठीक समझ में आता है, नियमानुसार साधन करते जाने पर ये अवस्थाएँ सभी को प्राप्त होंगी। इच्छा करने से भी होंगी और न करने से भी होंगी। ठीक समय आने पर ही इनकी प्राप्ति होगी। इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें करके ठाकुर चुप हो गये। वे बातें मेरी समझ में नहीं आईं। मैंने ठाकुर से पूछा—इन दर्शन स्पर्शन और श्रवण आदि के लिए तथा नाना प्रकार के अलौकिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए क्या कोई दूसरे प्रकार का साधन करना पड़ता है?

'इसी नाम से सब हो जाता है' यह उत्तर देकर ठाकुर तनिक चुप हो रहे, फिर अपने आप कहने लगे—एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम के जप का अभ्यास हो जाने से ही सब कुछ होता है। जब तक यह ज्ञान नहीं हो जाता कि हम शरीर से अलग हैं, तब तक उक्त अवस्थाओं की प्राप्ति नहीं होती। शरीर से अपनी

पृथक्ता समझने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करना चाहिए। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करना कुछ सहज काम नहीं है; चाहे नाम का तीन-चार लाख जप करो, चाहे तीन-चार करोड़, किन्तु श्वास-प्रश्वास पर लक्ष्य रखकर किये गये नाम के जप की तरह लाभ और किसी तरह नहीं होता। इसका लाभ दूसरे ही ढँग का है। सहज श्वास-प्रश्वास में एक बार ठीक-ठीक नाम के गूँथ जाने से ही आत्मदर्शन हो जाते हैं। 'शरीर से आत्मा की पृथक्ता' को जानकर जहाँ तनिक स्थिर होना आया वहीं आत्मा में नाना प्रकार की क्षमता आ जाती है। तब वह आत्मा बहुत से अलौकिक काम सहज में कर सकता है।

ठाकुर की बातों से मेरे बहुत बड़े भ्रम का संशोधन हो गया। प्रतिदिन २१६०० बार गिनकर नाम का जप करना भी, थोड़ी देर तक श्वास-प्रश्वास के साथ नाम के जप की चेष्टा के तुल्य नहीं है। अतएव मन ही मन लजाकर अपने उस जप की संख्या का मैंने परिचय न दिया।

मैंने पूछा—आत्मा में उस प्रकार की क्षमता उत्पन्न हो जाने पर भी तब किसी प्रकार का अलौकिक काम करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है ?

ठाकुर—बहुतों को देखा गया है कि वैसा थोड़ा सा ऐश्वर्य लाभ होते-न-होते ही उसका प्रयोग करने से वे बिलकुल चौपट हो गये हैं। उस ऐश्वर्य से अनेक प्रकार की सम्पत्ति की वृद्धि, रोग को हटाने तथा इच्छानुयायी और भी अनेक काम करने की क्षमता तो हो जाती है, किन्तु धर्म की प्राप्ति के मार्ग में वह विषम विघ्न और प्रलोभन है। उन ऐश्वर्यों की प्राप्ति होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। तभी क्रमशः अनेक अद्भुत अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। और शक्ति का प्रयोग करने पर थोड़े ही समय मे उसका सत्यानाश हो जाता है; धर्म-कर्म तो चूल्हे में जाय, वह शक्ति भी चली जाती है। किन्तु वह ऐसा प्रलोभन है कि थोड़ा सा कुछ होते-न-होते ही शक्ति का प्रयोग करने की इच्छा होती है। इस मामले में बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

लाल के सम्बन्ध में ठाकुर का अनुशासन

बातचीत के सिलसिले मे माताठाकुराणी ने इस समय लाल की चर्चा छेड़कर

कहा—"लाल में बहुतेरी अद्भुत शक्तियाँ देखी हैं। बहुतों के अतीत जीवन की ऐसी गोपनीय बातें उन लोगों को बतला दी हैं जिन्हें उन लोगों के सिवा संसार में और कोई नहीं जानता। बहुतों की भविष्यत् की बातें भी साफ बतला देते हैं। साधारण बातचीत में भी लाल की एक ऐसी शक्ति है कि जो लोग उसे सुनते हैं, लट्टू हो जाते हैं। योग-जीवन घर में बैठा लिखता-पढ़ता था, और लाल गेण्डारिया के जङ्गल से ही एक प्रकार का शब्द करते थे ; उस शब्द में ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि उसे सुनकर योगजीवन फिर घर में न रह सकता था ; लिखना-पढ़ना छोड़-छाड़कर तुरन्त लाल के पास दौड़कर चला जाता था। इन्हीं कारणों से तो योगजीवन परीक्षा पास नहीं कर सका।" माताठाकुराणी ने लाल के सम्बन्ध में और भी बहुत सी ऐश्वर्य की बातें सुनाईं। तब मैंने भी क्रम से भागलपुर में लाल के ऐश्वर्य प्रकट करने का हाल कहा। सब बातों को स्थिर भाव से सुनकर ठाकुर ने कहा—लाल को वह सब करने से बारंबार रोका है, वह किसी तरह नहीं मानता। इसके बाद ठोकर खाने पर सीखेगा।

यह सुनकर मैंने तनिक अचरज करके कहा, क्यों ! कुछ लोगों के जीवन का भार आपने ही तो लाल को सौंपा है ; मुझसे लाल ने कहा है कि उन लोगों की भलाई के लिए वह यथासाध्य चेष्टा करता है।

ठाकुर--यह क्या ? तुम कहते क्या हो ? साफ-साफ कहो। ठीक बतलाओ कि तुमसे लाल ने क्या कहा था ?

इस तरह बतलाने के लिए ठाकुर के आज्ञा देने पर मैंने कहा—"लाल ने मुझसे पहले भी एक बार कहा था, और इस दफा भी भागलपुर में कहा है, 'गोस्वामीजी बूढ़े हो गये हैं, इतने लोगों का बोझा वे कब तक सँभालेंगे ? इसी से हम तीन व्यक्तियों को उन्होंने सब का भार बाँटकर दे दिया है ; कुछ का भार तो श्यामाकान्त पण्डितजी को दिया है, कुछ का विहारी नाम के एक पछाँहीं सन्यासी गुरुभाई को दिया है और कुछ का मुझे सौंपा है।" मैंने पूछा—'मैं किसके हिस्से में हूँ ?' लाल ने उत्तर दिया—'तुम मेरे हिस्से में हो।' सब बातें सुनकर ठाकुर ने कहा—अच्छा, यहाँ तक हो गया है ? बहुत ज्यादा उछल-कूद करने लगा है। महापुरुषों की कृपा से मामूली सरसों की बूँद पाकर ही, अभिमान के मारे बहुत को तुच्छ समझने लगा है। बहुत जल्द उस

कण को छीन लेने पर उसकी समझ में आ जायगा कि यह है क्या चीज। ठहरो, घबराओ मत।

अब आसन पर बैठे-बैठे ही ठाकुर एक बार तनिक दाहनी ओर और बाईं ओर हिले, तभी मुझे मालूम पड़ा कि 'आज प्रलय हो गया, लाल का सर्वनाश हो गया, अब निस्तार नहीं है।'

साधन के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान

थोड़ी देर में बातों ही बातों में मैंने ठाकुर से पूछा—'देहतत्त्व की शिक्षा न मिलने से कैसे मालूम होता है कि देह में कहाँ पर कौन सा रोग है और क्यों है! और नीरोग होना किस प्रकार सम्भव है?'

ठाकुर—ज्यों ही साफ-साफ यह ज्ञान हो जाता है कि इस शरीर से आत्मा अलग है, त्यों ही ठीक ठीक देख पड़ता है कि स्थूल शरीर मे कहाँ पर क्या है। उस समय शरीर के भीतर और बाहर के सभी स्थानों की चमड़ी, मांस, हड्डी, मज्जा, नाड़ी-नसें, धमनियाँ जो कुछ है, साफ देख पड़ता है। तब मालूम किया जा सकता है कि शरीर के किस स्थान मे किस चीज की कमी है और कहाँ पर कौन चीज अधिक है; साफ-साफ समझ लिया जा सकता है कि पृथिवी की किस वस्तु के साथ देह का क्या सम्बन्ध है।

गेरुवा क्या है?

बातचीत के सिलसिले में सतीश ने पूछा—गेरुवा कपडा पहनने की क्या कोई विशेष अवस्था है, अथवा धर्मार्थी लोग जब चाहे तब उसे पहन सकते हैं?

ठाकुर—गेरुवा कपड़ा, दण्ड-कमण्डलु और चिमटा प्रभृति धारण करने तथा भस्म रमाने की—इन सभी कामों की—एक एक विशिष्ट अवस्था है। उन अवस्थाओं के आने पर ही उन चिह्नों के धारण करने का अधिकार होता है; उससे पहले तो विडम्बना है, और अपराध लगता है। आज-कल इन बातों का विचार न रहने से बहुत अनिष्ट होता है। तुम लोगों को उन चीजों की इस समय कुछ भी आवश्यकता नहीं है। जब वह समय आवेगा, तब उन्हें ग्रहण

कर सकोगे। शास्त्र में लिखा है—भगवती के रज से गेरुवे की उत्पत्ति है। गेरुवे कपड़े का नाम भगवान्-वस्त्र है। वह कपड़ा भगवान् नारायण का है। देव-देवी, ऋषि मुनि और योगी महापुरुषों के लिए वह बड़े ही आदर और सम्मान की चीज है। उसको ग्रहण करके यदि ठीक-ठीक उसकी मर्यादा की रक्षा न की जा सके तो बड़ा अपराध होता है। गेरुवे कपड़े में किसी का किसी तरह एक बिन्दु वीर्य गिर जाने से समस्त देव-देवी, ऋषि-मुनि और सिद्ध महात्माओं का शाप लगता है। पहले इन बातों पर दृष्टि थी, शासन था, वस्तु की भी ठीक-ठीक मर्यादा थी। अब विदेशी राजा है, शासन भला करेगा ही कौन? इससे फेरी लगानेवाला भी गेरुआ कपड़ा पहन लेता है।

नित्य नये तत्त्व का प्रकाश; परतत्त्व।

भोजन करके हरिवंश का पाठ कर चुकने पर थोड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहता हूँ। ठाकुर अपने आप कोई चर्चा छेड़ देते हैं तो मैं हिम्मत करके अनेक विषयों पर प्रश्न करता हूँ। जिस दिन कथा वार्ता होती है उस दिन माताठाकुराणी भी कुञ्ज में ही रहती हैं, नहीं तो श्रीधर के साथ कुतू को लेकर दर्शन करने चली जाती हैं। जिस दिन ठाकुर बाहर निकलते हैं उस दिन हम सब लोग उनके पीछे-पीछे चलते हैं; और जिस दिन ठाकुर कुञ्ज में ही रहते हैं उस दिन और सब लोगों के दर्शन करने को चले जाने पर भी मैं ठाकुर के ही समीप बैठा रहता हूँ और मौका पाकर अनेक विषयों पर प्रश्न करता हूँ। तीसरे पहर ठाकुर किसी-किसी दिन आसन पर ही बैठे रहते हैं, और हम लोगों को देवदर्शन करने के लिए जाने को कहा करते हैं। किन्तु वे स्वयं उस दिन सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक एक बार भी आसन छोड़कर कहीं नहीं जाते। इसका मतलब जानने की मुझे इच्छा हुई। मैंने ठाकुर से पूछा, 'आप भी नियम से दर्शन करने को क्यों नहीं जाते?' थोड़ा सा चलना-फिरना लेने से शरीर भी नीरोग बना रहता है।'

ठाकुर—श्रीवृन्दावन में आने के बाद ही मुझसे गुरुजी ने कहा—'कम से कम एक वर्ष तक यहीं तुमको आसन लगाना होगा। आसन पर नित्य तुम्हारे आगे नये-नये तत्त्व प्रकट होंगे।' तब से प्रति दिन ही दो-एक नये तत्त्व प्रकट

हो रहे हैं। जब तक एक-आध तत्त्व प्रकट नहीं हो जाता, मैं आसन छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाता। इसी से मैं प्रतिदिन दर्शन करने नहीं जा सकता। जब वह हो जाता है तभी मैं आसन छोड़ता हूँ, दर्शन करने भी जाता हूँ।

ठाकुर की बात सुनकर मैं एकदम दङ्ग हो गया। थोड़ी देर तक कुछ न कहकर मैं सोचने लगा, ठाकुर ने अब यह किस तत्त्व का उल्लेख किया? कठोर वैराग्य का अवलम्बन करके युग-युगान्तर तक लगातार कठोर साधन-भजन करने में रक्त-मांस-हड्डी-मज्जा को गलाकर प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग जिस एक तत्त्व को आयत्त करने से ही ऋषि-पद प्राप्त कर लेते थे; कई घण्टे तक आसन पर बैठे-बैठे, क्षण-क्षण में हँसी और बातचीत में समय बिताकर भी, इस धर्मविरोधी घोर कलिकाल में वही तत्त्व ठाकुर प्रतिदिन दो-एक सहज प्राप्त कर रहे हैं। यह कैसी असम्भव बात है! मैं चुप न रह सका। मैंने फिर पूछा—तत्त्व किसे कहते हैं? तत्त्व कुल कितने हैं? कैसा साधन करने से वे सब तत्त्व प्राप्त होते हैं? मेरे मुँह खोलते ही ठाकुर ने मेरा सारा मतलब समझ लिया, इसीसे मन्द-मन्द मुसकुराकर कहने लगे—स्वयं भगवान् ही तत्त्व हैं। भगवान् के भाव, कार्य और लीला का भला विराम है? तत्त्व तो अनन्त हैं। ये तत्त्व कहीं साधन आदि करके प्राप्त किये जा सकते हैं? लाखों जन्म कठोर साधन-भजन में लगा देने पर भी इन तत्त्वों में से सिर्फ एक को भी कोई नहीं जान सकता। ये साधन सापेक्ष नहीं, ये तो साधनातीत हैं, एकमात्र भगवान् की कृपा से ही इन तत्त्वों की उपलब्धि होती है। साधन द्वारा इनकी प्राप्ति होनी असम्भव है। उनकी कृपा से पल भर में भी सब कुछ हो सकता है। जीव मुक्त होकर एकमात्र भगवान् की कृपा से ही लीलातत्त्व में प्रवेश कर सकता है। यही परतत्त्व है।

ठाकुर की बातें सुनने से मैंने मामले को समझा। और कुछ न कहकर मैं नाम का जप करने लगा।

अभिनव तिलक। श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार

श्रीवृन्दावन में आकर इस दफा ठाकुर का नया रँग-ढँग देख रहा हूँ। नहीं मालूम ठाकुर का क्या अभिप्राय है; उनका उद्देश्य भी मेरी समझ से बाहर है। और उनके क्रिया-कलाप के सम्बन्ध में पूछताछ करने का ही

भाद्रपद
कृ० ३; रविवार

अधिकार मुझे कहाँ है ? वे अपने आप दया करके जब हम लोगों में हिल-मिल करके बातचीत करते हैं तब मौका मिलते ही दो-एक बातें पूछकर अपने सन्देह का निर्णय कर लेता हूँ। अब तक ठाकुर को जैसा देखा है वैसे अब वे नहीं हैं। अब वे सहज ही देवमन्दिर में जाकर मूर्ति को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं ; पाषाण-प्रतिमा के आगे रखी हुई खाद्य-सामग्री को प्रसाद मानकर खाते हैं ; गले में अनेक प्रकार की मालाएँ पहने रहते हैं और द्वादश अङ्गों में गोपीचन्दन का तिलक लगाये रहते हैं। सीधी बात यों कह सकते हैं कि अब उन्होंने वैष्णवों के समस्त आचार को ग्रहण कर लिया है। उनसे इस विषय की सारी बातें पूछने की इच्छा होती है, किन्तु हिम्मत नहीं पड़ती।

जो हो, आज भोजन करने के अनन्तर मैंने ठाकुर से पूछा—'श्रीवृन्दावन में रहने से ही क्या ऐसा तिलक लगाना पड़ता है ? आपको पहले तो कभी माला तिलक धारण करते नहीं देखा। कहा था कि हमारा कोई पन्थ नहीं है, किन्तु आपका तिलक तो वैष्णवों का सा ही है।' ठाकुर ने कहा—हाँ, यह ठीक है। जब हम श्रीवृन्दावन में आये तो तिलक धारण करने की आज्ञा हुई। तब हमने सोचा कि किस तरह का तिलक लगाया जाय। किसी सम्प्रदाय-विशेष का चिह्न न लेने का निश्चय करके एक नये ढंग का तिलक बना लिया। हमारा यह नये ढंग का तिलक देखकर वैष्णव बाबाजियों ने बड़ा आन्दोलन मचा दिया। एक दिन गौर शिरोमणि महाशय ने आकर हम से कहा—'प्रभु, समझ में नहीं आता कि आप ऐसा तिलक क्यों करते हैं। ऐसा तिलक तो किसी सम्प्रदाय में नहीं देखा ! दया करके इस तिलक का तात्पर्य हमें समझा दीजिए।' हमने उनसे कहा, 'हमारा तो कोई सम्प्रदाय है नहीं ; इसी से मुहम्मद के अर्धचन्द्र, ईसा मसीह के क्रूस और महादेव के त्रिशूल को लेकर एक नये ढँग का तिलक बना लिया है।' शिरोमणिजी ने कहा, 'आप सब कुछ कर सकते हैं, किन्तु आप जो कुछ करेंगे उसकी नकल करके हजारों आदमी सम्प्रदाय बना लेंगे। अतएव, शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ही आप यह काम क्यों नहीं करते ? नया सम्प्रदाय खड़ा करने की क्या आवश्यकता ? हमारा विनीत अनुरोध है कि आप इस तिलक को हटाकर यथारीति तिलक धारण करें।' शिरोमणिजी की बात सुनकर हमने कहा—'इस विषय में जो कर्तव्य

निश्चित होगा वह आपको शीघ्र ही मालूम हो जायगा।' फिर एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने इस प्रकार का तिलक दिखलाकर कहा—"तुम ऐसा ही तिलक लगाया करो।" श्रीअद्वैत प्रभु ऐसा ही तिलक लगाया करते थे। उनकी आज्ञा के अनुसार ही हम ऐसा तिलक लगाते हैं।

श्रीवृन्दावन में साम्प्रदायिक भाव

मैंने कहा—'जब आप श्रीवृन्दावन में पधारे तब माला तिलक न देखकर बाबाजी लोग कुछ गड़बड़ तो न करते थे? इन लोगों का भाव देखने से जान पड़ता है कि साम्प्रदायिक कट्टरता इन लोगों में बहुत अधिक है। अन्य वेषधारी साधुओं को तो ये साधु ही नहीं मानते। जो माला तिलक धारण नहीं करता उसको अपवित्र समझते हैं। जब तक सिर मुँड़ाकर मैंने चोटी नहीं रक्खी थी और माताठाकुराणी ने जब तक मुझे गले में यह कण्ठी नहीं पहना दी थी तब तक वैष्णव वैरागियों ने मुझे प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखा। अब मेरे इस घुटे हुए सिर पर चोटी और गले में कण्ठी देखकर वे कहते हैं 'अहा, कैसा अच्छा रूप बन गया है, अङ्ग से ज्योति फूटी पड़ती है।' किन्तु मैं जब अपनी सूरत को आईने में देखता हूँ तब दूसरी बार देखने को जी नहीं चाहता। घुटे हुए सिर पर चोटी इतनी भद्दी देख पड़ती है।

मेरी बातें सुनकर ठाकुर बहुत हँसे, फिर कहने लगे—भेक लिये बिना यहाँ रहना तो बहुत मुश्किल हो जाता है। हम से यह गेरुआ छुड़वाने की ये लोग बहुत-बहुत कोशिश कर चुके हैं। उन्होंने तो गौर शिरोमणिजी के द्वारा भी बहुत अनुरोध कराया है। हम एक दिन शिरोमणिजी के साथ भागवत सुनने गये। सब लोग बैठे हुए भागवत सुन रहे थे कि एक आदमी ने गन्दी नाली के पानी में थोड़ा सा गोबर घोलकर ऊपर से हमारे सिर पर गिरा दिया। पास ही शिरोमणिजी बैठे हुए थे, सारा पानी उन्हीं के सिर पर गिरा। वे सब कुछ समझ गये, फिर हमसे कहने लगे,—"देख लिया, प्रभु, इन लोगों का काम? चलिए, अब यहाँ पर ठहरने की आवश्यकता नहीं।" यह कहकर वे हमारे साथ चले आये। वैष्णव वेश न देखकर यहाँ पर बाबाजी लोग ऐसा ही बर्ताव किया करते हैं।

यह सुनकर मैंने सोचा कि "इतने दिन से ठाकुर यहाँ आये हुए हैं, न जाने और कितने अत्याचार इस समय के बीच इन लोगों ने ठाकुर के ऊपर किये हैं!" बातचीत के सिलसिले में कभी-कभी ठाकुर के मुँह से ये बातें निकल पड़ती हैं, इसी से एक आध घटना का पता चल जाता है, नहीं तो इन बातों के जानने का दूसरा उपाय नहीं है। जो हो, दामोदर पुजारी और श्रीधर प्रभृति से पूछने पर भी शायद कुछ-कुछ हाल मालूम हो सके, यह सोचकर मैंने थोड़ी देर में नीचे आकर उन लोगों से पूछा—"जब ठाकुर श्रीवृन्दावन में आये थे तब यहाँवालों ने उन्हें नीचा दिखाने के लिए क्या किसी प्रकार की चेष्टा की थी?' उन लोगों ने इसके उत्तर में जो बातें कहीं उनको सुनने से मैं दङ्ग हो गया। उनमें से एक का हाल यहाँ पर लिख रखता हूँ, घटना यह है,—

दर्शन में विरोध डालनेवाले प्रभुसन्तान को उत्कट शिक्षा

श्रीवृन्दावन में आकर ठाकुर ने ब्रजवासी दामोदर पुजारी की कुञ्ज में डेरा किया। कई दिन बीतने पर कहा—कल सवेरे गोविन्दजी के दर्शन करने जायँगे। ठाकुर का यह कहना था कि बस्ती भर में यह खबर फैल गई। हवा से भी आगे यह समाचार प्रभुचरणों के दरबार में पहुँचा। सबसे अधिक प्रभावशाली सम्मानित वैष्णव नेता एक प्रभु सन्तान उत्तेजित होकर कह बैठे—"यह क्या? ऐसे ही मन्दिर में चला जायगा! आकरके न तो हम लोगों के दर्शन किये और न अनुमति माँगी। उसको तो जानते हैं। वह इतनी आसानी से मन्दिर में चला जायगा? अच्छा, देखा जायगा।" अब उन्होंने तीन-चार प्रभु-सन्तानों सहित सारे वैष्णव-समाज को बुलवाकर विराट् सभा की। प्रभुचरणों ने अपनी नाराजी प्रकट करते हुए सब लोगों से कहा—"अद्वैत घराने का कुलाङ्गार, जाति-नाशक, स्वेच्छाचारी एक गोसाईं आजकल श्रीवृन्दावन में आया है। सनातनधर्म विरोधी ब्राह्मधर्म का प्रचार करके यह हजारों आदमियों को धर्मभ्रष्ट कर चुका है। इतनी उम्र अनाचार में बिताकर अब गेरुवा कपड़ा पहनकर संन्यासी के वेश में वह वृन्दावन में आया है। हम लोगों से भेंट किये बिना ही, अनुमति माँगने की कुछ परवा न करके, कल ही यह गोविन्दजी के दर्शन करने को मन्दिर में जाने का साहस कर रहा है। अब उसे मन्दिर में प्रवेश करने दिया जायगा या नहीं?" प्रभुचरणों का प्रश्न सुनकर वैष्णव लोग एकदम चिल्ला उठे तथा और

लोग भी उत्तेजित होकर बोले, "यह कभी नहीं होगा। हम लोग रोकेंगे।" इस सिद्धान्त से सन्तुष्ट न होकर प्रभुचरणों ने कहा, "सिर्फ रोक-टोक करने से काम नहीं होगा। मन्दिर में प्रवेश करने को आते ही उसे दरवाज़े पर विशेष रूप से अपमानित करके खदेड़ देना।" गोविन्दजी के सेवायत को भी यही हुक्म दिया गया। बहुत ही ग़रीब दो-चार वैष्णवों के सिवा और सब लोग इस काम में खासा उत्साह प्रकट करके अपनी-अपनी कुञ्ज को चल दिये।

रात को भोजन करके प्रभुसन्तान जब गहरी नींद में सोये तब एकाएक उत्पात हुआ। स्वप्न देखा—एक भयावने जङ्गली सूअर ने गर्जन करते हुए दौड़ते-दौड़ते आकर प्रभुसन्तान पर बड़ी तेजी से आक्रमण किया। चोट पर चोट लगने से प्रभुचरणों की नींद टूट गई; 'अरेरे अरेरे' करते हुए वे जाग उठे। फिर थोड़ी देर बैठकर, हाथ-मुँह रगड़कर दुबारा लेटकर सो गये। थोड़ी भी देर न हुई थी कि वही जङ्गली सूअर भयङ्कर गर्जन करता हुआ प्रभुजी के ऊपर टूट पड़ा और लगातार चोट मार-मारकर उसने प्रभुसन्तान का नाकोंदम कर दिया। अब वे हाय हाय करके चिल्लाते हुए उठ बैठे। थोड़ी देर तक बेचैनी की हालत में रहकर फिर लेट गये। अब की वैसी गहरी नींद न आई। साधारण तन्द्रा आते ही उन्होंने देखा—स्वयं बलदेवजी वराह-मूर्ति धारण किये हुए घोर गर्जन करके चारों दिशाओं को कँपाते हुए बड़ी-बड़ी खीसें निकालकर बड़े प्रचण्ड वेग से उन्हीं की ओर दौड़े आ रहे हैं। पल भर में वे प्रभुजी के ऊपर टूट पड़े; जल्दी-जल्दी रेला दे-देकर प्रभुचरणों के शरीर को चूर-मार करके और अपने थूथन से प्रभुजी की छाती को मसलकर कहने लगे—"तेरा इतना हौसला बढ़ गया है! गोसाईं को मन्दिर में न घुसने देगा? जानता नहीं कि वे कौन हैं? उन्हें मामूली आदमी समझ लिया है? आज तुझे जीता न छोड़ूँगा।" प्रभुजी बिलकुल जाग गये; होश-हवास की हालत में प्रभुजी चौंककर वराहदेव का बारबार गर्जन सुनने लगे। कड़ी चपेट खा जाने से उनका दम घुटने लगा, उन्हें करवट तक बदलने की हिम्मत न हुई। अब वे चिल्लाते हुए उठकर बैठ गये; फिर धीरे-धीरे साँस लेकर क्रमशः स्वस्थ हुए। अब उन्होंने सोचा कि 'इस समय क्या करें? इस अपराध से क्योंकर छुटकारा मिले?' श्रीवृन्दावन में श्रीमत् गौर शिरोमणिजी को सभी लोग सिद्ध महापुरुष मानते हैं। प्रभुसन्तान उसी समय रात को उनके स्थान पर पहुँचे और बिना कुछ छिपाये हुए उनको सारा हाल सुनाकर अपने शरीर में वराह की मारी हुई चोटों के चिह्न दिखलाकर बोले,

"इस समय मैं क्या करूँ ? कृपा करके बतलाइए।" शिरोमणिजी ने कहा, "प्रभु, आपने बेढब दुस्साहस किया था। ऐसा विचार करने से भी भयङ्कर पाप लगता है। रात बीतते ही आप बड़े तड़के गोस्वामी प्रभु के पास जाकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करें; और खूब आदर सम्मान करके हिफ़ाज़त से उन्हें गोविन्दजी के मन्दिर में ले जाइए।" सबेरा होने पर तड़के प्रभुसन्तान ने यही किया। श्रीगोविन्दजी के दर्शन करके ठाकुर भाव के आवेश में अचेत होकर गिर पड़े; तब उनकी यह दशा देखकर विद्रोही लोग बहुत ही लज्जित होकर पछतावा करने लगे। फिर सब लोग बड़े ही आनन्द से ठाकुर के साथ इस कुञ्ज में आये। जान पड़ता है कि ऐसी असाधारण घटना न होती तो इतने थोड़े समय के भीतर यहाँ पर ठाकुर का ऐसा गौरव तथा ऐसी प्रतिष्ठा न होती।

साधक का सुरा पीना क्या है ?

ठाकुर आज तीसरे पहर आसन छोड़कर नहीं उठे। उनके पास बैठकर हम लोग अनेक विषयों पर प्रश्न करने लगे। मैंने पूछा—'हम लोगों को तो बिलकुल नशे से परहेज करने के लिए कह दिया है, किन्तु साधु-सन्यासी लोग तो बेहद नशा किया करते हैं। शास्त्र में क्या मादक सेवन करने का निषेध है ?

ठाकुर—मादक सेवन करना सोलहों आने निषिद्ध है; शास्त्र में कहीं भी धर्मार्थियों के लिए मादक का सेवन करने की व्यवस्था नहीं है। जो लोग सदा पहाड़ों में घूमते रहते हैं और वहीं पर रहकर साधन आदि करते हैं उन्हें शरीर से बहुत क्लेश सहना पड़ता है अनेक स्थानों में अनेक प्रकार की सर्दी-गर्मी आदि से शरीर को बचाये रखने के लिए उन लोगों को मादक सेवन करने की आवश्यकता होती है। लेकिन सिर्फ़ शरीर की रक्षा के लिए ही वे यह काम करते हैं, उससे साधन में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती; उलटा बहुत अनिष्ट हो जाता है, चित्त अस्थिर हो जाता है। योगशास्त्र में और आयुर्वेद में मादक के व्यवहार को बड़ा भारी दोष बताया गया है। सिर्फ़ शरीर की रक्षा के लिए ही लोग दवा के तौर पर उसका सेवन करें और दवा का काम पूरा होते ही उससे परहेज़ करने लग जायँ— यही व्यवस्था है।

मैंने कहा—क्यों ? देखते तो हैं कि तान्त्रिक साधक लोग डटकर शराब पिया करते हैं। शायद शराब पिये बिना उन लोगों का साधन ही नहीं होता। यह तो सभी जानते हैं कि वीराचारी लोग जी भर कर शराब पीते और मांस खाते हैं।

ठाकुर—वीराचारियों के लिए भी शराब पीकर साधन करने की व्यवस्था नहीं है। हाँ, वे लोग अपनी परीक्षा करने के लिए उसका उपयोग किया करते हैं। इतनी ही बात है। तन्त्र में जिस अवस्था को 'वीर' कहते हैं वह बहुत मामूली नहीं है।

मैंने पूछा—किस अवस्था में तान्त्रिक साधक लोग 'वीर' होते हैं ?

ठाकुर—वीर आसानी से नहीं हो जाता; सारा पशुभाव विनष्ट होने पर ही वीर होता है। काम क्रोध आदि सभी शत्रु जब बिलकुल नष्ट हो जाते हैं तभी वीराचारी हो सकता है।

मैं—आपने कहा है कि सुरा पीने की व्यवस्था शास्त्र में नहीं है; किन्तु तान्त्रिक लोग तो सुरा-पान का माहात्म्य दिखाकर कहते हैं—"पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥"

ठाकुर—यह जिस सुरा-पान की व्यवस्था है वह बाहरी सुरा नहीं है। ये नशीली चीजें नहीं। मनुष्य इस बात को समझे बिना ही चक्कर में पड़ जाते हैं। भक्ति के द्वारा इस देह से ही एक प्रकार की सुरा उत्पन्न होती है; उसको पीने से बेहद नशा चढ़ता है। उसी को अमृत कहते हैं; उसको पी लेने से फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

मैं—भक्ति के द्वारा देह के भीतर सुरा किस तरह उत्पन्न हो जाती है ? और उसको पीते ही किस तरह हैं ?

ठाकुर—देखो, जब हम लोग क्रोध करते हैं तब मस्तिष्क के एक विशेष स्थान में एक प्रकार का अनुभव होने से उस स्थान के रक्त में दूसरी तरह का परिवर्तन हो जाता है। तब वही रक्त गरम होकर अस्वाभाविक अवस्था में सारे शरीर में फैल जाता है। यही दशा काम की अवस्था में भी होती है। इस प्रकार

सत् और असत् सभी भावों में मस्तिष्क के विशेष विशेष स्थानों में एक-एक तरह का अनुभव होने से रक्त आदि में परिवर्तन होता है। वही नसा और नाड़ियों में होता हुआ सारे शरीर में पहुँच जाता है। भाव भक्ति और आनन्द होने से भी रक्त में एक प्रकार का परिवर्तन होता है। भक्ति में मस्तिष्क के रक्त की जो दशा होती है वही बहुत अधिक होते ही क्रमशः गरम होकर भाव के द्वारा एक तरह के रस को उत्पन्न करती है। वही रस धीरे धीरे तालू से चूकर जीभ पर आ गिरता है, वही रस अमृत है। उस रस की दो तीन बूँदें पीते ही इतना नशा चढ़ जाता है कि ५।७ दिन सहज में ही बीत जाते हैं, कुछ खाने की भी जरूरत नहीं होती। उसी को सुरा कहा गया है, उसी के पीने की व्यवस्था है। उस सुरा का नशा इतना अधिक होता है कि जिन्हाने उसे पिया नहीं है व सिर्फ सुनकर किसी तरह नहीं समझ सकेंगे। उसे पीते ही मनुष्य बेसुध हो जाता है—शरीर बिलकुल अचल हो जाता है, किन्तु भीतरी ज्ञान नहीं घटता, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। सिर्फ बाहरी ज्ञान नहीं रहता।

मैं—आपने जिस अमृत का उल्लेख किया है उसका स्वाद कैसा होता है? जब कि वह रक्त के ही किसी प्रकार के परिवर्तन से उसी का चुवाया हुआ रस है तब उसको पीने से क्या किसी तरह का अनिष्ट नहीं होता?

ठाकुर—भिन्न भिन्न समया पर उसका स्वाद विभिन्न प्रकार का होता है। भक्ति के भावा के साथ उसका योग है। जिस भाव से भक्ति होती है वैसा ही स्वाद भी हो जाता है। कभी नमकीन, कभी मीठा, कभी नमकीन और मीठा मिला हुआ और कभी तीखा, इस प्रकार तरह-तरह का स्वाद होता है। भक्ति का जब जैसा भाव होगा वैसा ही स्वाद रहेगा। हम तो देखते हैं कि उसको पीने से कुछ भी अनिष्ट नहीं होता बल्कि शरीर और भी चङ्गा रहता है। उसको पीकर मुद्दत तक भोजन न करने पर भी किसी तरह की सुस्ती नहीं जान पड़ती, शरीर खासा सबल और नीरोग बना रहता है। उससे शरीर का बहुत कल्याण होता है इसीसे शास्त्र ने उसको 'अमृत' कहा है। वह सचमुच अमृत है।

मैं—जिस भक्ति से यह अमृत उत्पन्न होता है वह भक्ति कैसे प्राप्त हो? हम लोग क्या उस अमृत को प्राप्त कर सकते हैं?

ठाकुर—यह अमृत प्राप्त करना चाहो तो श्वास-प्रश्वास में नाम का जप किया करो। जब ऐसा करने लगोगे तभी देखना कि क्रम-क्रम से सब कुछ मिलेगा। श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करना ही सबसे बढ़िया उपाय है।

नाम का जप करने से ठाकुर की शुष्कता और जलन।

परमहंसजी की सान्त्वना

ठाकुर की बात सुनकर मैंने कहा—चेष्टा करने में तो कुछ कसर नहीं रखता हूँ; किन्तु श्वास प्रश्वास में नाम का जप करना तो मुझे असम्भव जान पड़ता है। नाम का जप करने से यदि आनन्द प्राप्त होता हो तो श्वास-प्रश्वास में उसकी चेष्टा की जाय। नाम जब तक सूखी लकड़ी की तरह नीरस रहता है तब तक चेष्टा करने का धैर्य ही क्यों रहेगा? यह भी तो नहीं समझ पड़ता कि नाम का जप करने से क्या फायदा है।

ठाकुर कहने लगे—अभी समझ में न आवेगा कि क्या फायदा हो रहा है। अभी तो सिर्फ जप करते जाओ। धीरे-धीरे सब मालूम हो जायगा। इसमें संदेह नहीं कि श्वास प्रश्वास में नाम का जप करना बहुत कठिन काम है। किन्तु कठिन होने से छोड़ देना नहीं चाहिए। पहले-पहले नाम बहुत ही रूखा लगता है। हम से जब गुरुदेव ने श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करने के लिए कहा तब कुछ दिनों तक चेष्टा करते ही हमारा जी बेहद ऊबने लगा। क्योंकि बिना कुछ समझे-बूझे रूखे-सूखे नाम का जप भला कब तक किया जाय? कई बार तो नाम का जप करने में इतनी रुखाई जान पड़ती कि जप करना, व्यर्थ समझकर, छोड़ देने की इच्छा होती थी। तब एक दिन परमहंसजी ने दर्शन दिये, हमने कहा—'अब व्यर्थ इस तरह जप नहीं हो सकता। रूखा नाम जपने से क्या होगा? कुछ भी तो समझ नहीं पड़ता।' तब उन्होंने तनिक हँसकर हम से कहा—'सिर्फ हमारा अनुरोध मानकर नाम का जप किये जाओ। सूखा जान पड़ता है तो उसकी परवा न करो। जी ऊबता है तो उसमें भी कुछ हानि नहीं है। नाम का जप करते

जाओ, धीरे धीरे सब मालूम हो जायगा।' परमहंसजी की बात मान कर मैं फिर नाम का जप करने लगा। गयाजी में आकाश गङ्गा पहाड़ पर, बराबर पहाड़ पर और विन्ध्याचल में नाम का जप करते-करते छः महीने बिता दिये, तब थोड़ा थोड़ा पता चलने लगा। वहाँ पर हमारी अनेक प्रकार की अवस्थाएँ होने लगीं। समय-समय पर यह भी सन्देह होता था कि हम जागते हैं या सोते, तब सन्देह को दूर करने के लिए कभी-कभी शरीर में काँटा चुभो दिया है, या और न जाने क्या किया है। फिर जब दरभङ्गे में आये तब एक दिन गुरुदेव ने दर्शन दिये। उनको हमने सारा हाल खुलासा कह सुनाया, उस समय उन्होंने इतना ही कहा—'हठयोग प्रदीपिका' और 'विचार सागर' ग्रन्थ लाकर एक बार पढ़ो। हमने कहा—'ये ग्रन्थ हमको मिलेंगे कहाँ?' उन्होंने एक दूकान का नाम बतलाकर कहा—'दरभङ्गे में सिर्फ उसी दूकान में ये ग्रन्थ हैं, पाँच रुपये में देगा। जाकर ले आओ।' गुरुजी के कहने के अनुसार हमने उस दूकान में जाकर देखा—सिर्फ वही दो पुस्तकें उस दूकान में हैं। कीमत भी पाँच रुपये था। हमने दोनों पुस्तकें पढ़ीं। देखा कि उन दोनों ग्रन्थों में जितनी अवस्थाओं की बातें लिखी हुई हैं वे सभी हमको प्राप्त हो गई हैं। उक्त अवस्थाएँ जब हमको प्राप्त हुई थीं तब समझा था कि हमारा दिमाग खराब हो गया है। जब हमने दोनों ग्रन्थों को पढ़ लिया तब फिर गुरुजी ने दर्शन दिये। हमने उनसे कहा—पहले से क्या न, आपने इन पुस्तकों के पढ़ने के लिए हमसे कह दिया, तब तो मैं इस झमेले से बचा रहता। गुरुजी ने कहा—"नहीं, पहले से पढ़ लेना ठीक न होता। हम जानते न हैं कि तुम तो वेदव कट्टर लड़के हो। अगर उक्त ग्रन्थ तुम्हें पहले से पढ़ने को दिये जाते तो तुम इस समय समझते कि उनके पढ़ लेने के संस्कार से ही तुम्हारे दिमाग में कुछ खराबी पैदा हो गई है। उन अवस्थाओं की वास्तविकता पर तुम्हें विश्वास न होता। अब तो अपनी अवस्था का अनुभव तुम स्वयं कर रहे हो। हजारों वर्ष पहले मुनि ऋषियों ने जिन शास्त्रों को लिख दिया है उनसे भी उन अवस्थाओं को साक्षी मिलती है, अब हम भी कहते हैं कि साधन के द्वारा तुम्हें जो अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं वे सब सत्य हैं। अब इस विषय में तुम्हें

रत्ती भर भी सन्देह न होगा।" अवस्था की प्राप्ति हो चुकने पर उसकी सत्यता का प्रमाण शास्त्र में देखना ही ठीक है। इससे शास्त्र पर भी सोलहो आने विश्वास जम जाता है। यहाँ तक कहकर ठाकुर तनिक रुक गये, इसके बाद फिर कहने लगे—बहुत लोग हमसे अनेक विषयों के प्रश्न करते हैं; किन्तु उनका उत्तर देना हमको अच्छा नहीं लगता। सिर्फ श्वास-प्रश्वास में नाम का जप कर सकने से ही क्रम-क्रम से सब अवस्थाएँ प्रकट होती रहेंगी। उस समय उसके प्रमाण के लिए शास्त्र देख लेना चाहिए। शास्त्र ही वास्तविक अवस्था की गवाही देगा। जो भी अनुभव हो उसको ठोक-बजाकर देख लेना। तुम लोग तो थोड़ा-बहुत कुछ अनुभव होते ही उस पर विश्वास कर लेते हो; किन्तु हमारा तो दूसरा ही हाल है। हम तो जब तक दस इन्द्रियों की सहायता से तीन बार ठोक-बजाकर सचाई की जाँच नहीं कर लेते, तब तक उसे सत्य मानकर ग्रहण नहीं करते। असल बात यह है कि दस इन्द्रियों के द्वारा जिसके सचाई की जाँच करके ग्रहण किया जायगा उसी पर विश्वास किया जायगा। किसी विषय को सिर्फ देखकर, सुनकर अथवा छूकर ही, यों ही, सत्य मत मान लो; सारी इन्द्रियों और कर्मेन्द्रिया के द्वारा तीन बार उसकी सचाई की जाँच कर लेने पर फिर शास्त्र में देखो। यदि उसमें भी प्रमाण मिल जाय तो फिर बिलकुल सन्देह न रह जायगा। नहीं तो ठीक न होगा।

मैंने कहा—सुनता हूँ कि सभी देव देवियाँ, विशेषतः ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि पञ्च देवताओं को सन्तुष्ट न किया जाय तो मुक्ति नहीं हो सकती, तो क्या उन सबकी पूजा करनी चाहिये?

ठाकुर—सभी का खूब सम्मान करना; अनादर, अमर्यादा किसी को न करना। उनकी पूजा न की जाय तो भी चल सकता है। पूजा करने से सिर्फ उनके लोक प्राप्त हो जाते हैं, मुक्ति नहीं मिलती।

मैंने फिर कहा—यदि पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट न किया जाय तो वे रास्ते में किसी प्रकार का विघ्न तो नहीं करते?

ठाकुर—एक मात्र भगवान् की पूजा करने से ही सब की पूजा हो जाती है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी देने से शाखा-प्रशाखा, पत्ते-फूल सभी को पानी

मिल जाता है उसी प्रकार अकेले भगवान् की पूजा करने से ही सबको सन्तोष, आनन्द प्राप्त होता है।

मेरे और हरिमोहन के श्रीवृन्दावन से जाने के सम्बन्ध में ठाकुर की उक्ति

भाद्रपद कृ० ४ व ५

कुछ दिन से मेरे सिर में दर्द होने लगा है। ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के पश्चात् मैंने रात को भोजन करना बन्द कर दिया है। जान पड़ता है कि उसी के कारण यह दर्द फिर लौट आया है। ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमानुसार गुरु के प्रसाद के सिवा और कुछ दूसरी बार खाना नहीं चाहिए। शायद इसी कारण आज कई दिन से ठाकुर प्रतिदिन मुझे रात को दूध-रोटी का प्रसाद देते हैं। ठाकुर के भोजन की मात्रा निर्दिष्ट है, मुझे प्रसाद देते हैं इसके लिए वे परिमाण से अधिक सामग्री कभी नहीं लेते, अपने भोजन में से ही मुझे हिस्सा दिया करते हैं। शायद ऐसी ही व्यवस्था है। मैंने अपनी इस बीमारी का पता ठाकुर को तनिक भी नहीं लगने दिया, क्योंकि मालूम होते ही शायद वे मुझसे बड़ दादा के पास चले जाने के लिए कहेंगे।

ठाकुर की अनुमति पाकर श्रीयुक्त योगजीवन भागलपुर में नौकरी की आशा से गये हैं। श्रीयुक्त मथुर बाबू ने उन्हें भरोसा देकर चिट्ठी लिखी थी। स्वामीजी (हरिमोहन) बहुत दिनों तक भागलपुर में थे। वे भी बहुत जल्द वहाँ जाना चाहते हैं। ठाकुर सतीश से माता की सेवा करने के लिए देश जाने को बराबर कहते हैं, किन्तु सतीश की जिद है कि वे किसी हालत में ठाकुर का साथ छोड़कर न जायँगे। ठाकुर के साथ बड़े आनन्द में समय बीत रहा है, किन्तु मस्तिष्क की पीड़ा के कारण बीच-बीच में बहुत ही सुस्त हो जाता हूँ।

आज नित्य कर्म समाप्त करके ठाकुर के पास जाकर बैठते ही उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा—हम देखते हैं कि तुम्हारा शरीर बहुत कृश हो रहा है; तुमको आध सेर दूध पीने की जरूरत है। इतना दूध न मिलेगा तो बीमार हो जाओगे। आज रात को नियमानुसार रोटी खाना। पहले पहल ब्रह्मचर्य के सभी नियमों की पाबन्दी कर लेना सहज काम नहीं है; धीरे-धीरे अभ्यास कर लेना चाहिए। शरीर के लिए जो कुछ आवश्यक हो उसका प्रबन्ध न किया जायगा तो कैसे निस्तार होगा?

शरीर चङ्गा नहीं रहेगा तो कुछ भी न कर सकोगे। सिर का दर्द बहुत ही खराब होता है। सिर के सहारे ही तो सब काम-काज होता है। अगर दिमाग दुरुस्त न रहे तो जिन्दगी बर्बाद हो जाती है। अच्छा हो कि कुछ दिनों के लिए तुम दादा के पास चले जाओ। फ़ैज़ाबाद बहुत अच्छी जगह है। सिर का दर्द भी जाता रहेगा और साधन में भी कुछ हानि न पहुँचेगी। दादा का साथ हो जाने से तुम्हारा लाभ ही होगा। शरीर अच्छा हो जाने पर फिर चले आना।

ठाकुर की बातें सुनने से मैंने समझ लिया कि मुझे शीघ्र ही फ़ैज़ाबाद जाना पड़ेगा। तनिक आराम होते ही स्वामीजी (हरिमोहन) मथुरा से यहाँ आ गये हैं। रोग की यन्त्रणा से बहुत ही दुखी होकर उन्होंने मुझ से कहा—"भाई, भागलपुर में मज़े में था, यहाँ आने की दुर्मति मुझे क्यों हुई ? देह का यह क्लेश तो सहा नहीं जाता। किसी तरह तनिक चङ्गा हो जाऊँ और ताक़त आ जावे तो मैं फिर भागलपुर चला जाऊँगा। धर्म कर्म तो सभी जगह हो सकता है, बल्कि रिश्तेदार के पास रहने में कुछ खटका नहीं है। बातचीत के सिलसिले में आज मैंने ठाकुर से स्वामीजी के पछताने की चर्चा की। सुनकर ठाकुर ने कहा—तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुए बिना कर्म का अन्त नहीं होता। कहीं ज़बर्दस्ती करके कर्म काटा जा सकता है ? हमने हरिमोहन से पहले बराबर कहा था कि इन कर्मों को पूरा कर डालो। अब देखो, संन्यास लेकर पछतावा तक कर लिया। यह पछतावा करने से उसका सभी कुछ नष्ट हो गया। अब कायदे से कर्म को पूरा न कर आवेंगे तो हरिमोहन किसी तरह शान्त न रह सकेंगे। अब कुछ भी न होगा।

ठाकुर की ये बातें सुनकर स्वामीजी ने भी शीघ्र ही वृन्दावन से रवाना होने का निश्चय कर लिया।

वैराग्य, वासना और वैध कर्म

मैंने ठाकुर से पूछा—आपने कहा है कि कर्म पूरा किये बिना मुक्ति नहीं मिलती ; किन्तु क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है जिसका सहारा लेने से मनुष्य कर्म को काटकर मुक्त हो सके ?

ठाकुर—है क्या नहीं ? तीव्र वैराग्य का सहारा लेकर भी मुक्त होना सम्भव है। किन्तु वैसा वैराग्य है कहाँ ? विषय से मन को जब सोलहों आने भीतर की ओर खींच ले सको और प्रति श्वास प्रश्वास में नाम कर सको तभी आशा की जा सकती है। एक भी श्वास अथवा प्रश्वास व्यर्थ चला जायगा तो काम न होगा ; क्योंकि वह छिद्र पाते ही कितने ही शत्रुओं की पहुँच भीतर हो सकती है। इस निष्काम मुक्ति के मार्ग में मनुष्य, गन्धर्व, देवता आदि अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित करते हैं, सभी इस मार्ग में कठोर परीक्षा लेते हैं। वासना से बचकर तीव्र साधन किये बिना इस मार्ग में चलना सम्भव नहीं। इसी लिए वैध कर्म की व्यवस्था है। वैध कर्म के द्वारा भोग को पूरा कर लेने से रास्ता सहज हो जाता है।

मैं—जिस कर्म को पूरा कर डालने के लिए आप कह रहे हैं वह कर्म है कैसा ? नौकरी-चाकरी करके गृहस्थी चलाना ही क्या कर्म है ?

ठाकुर—कर्म का मतलब गृहस्थ हो जाना अथवा नौकरी कर लेना नहीं है। जिसकी जिस विषय में आसक्ति है उसका कर्म उसी विषय के साथ है।

मैंने पूछा—आपने जो वैध भोग की चर्चा की सो वह कैसा है ? शास्त्रानुसार भोग करना ही क्या वैध भोग है ?

ठाकुर—यह समझना बहुत कठिन है कि वैध भोग क्या चीज है। शास्त्रोक्तभोग तो है ही, किन्तु शास्त्र में भोग काटने के लिए प्रकृति भेद से भिन्न भिन्न कर्म की व्यवस्था है। जिसकी जैसी प्रकृति है उसके लिए वैसे ही कर्म की व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्था के अनुसार किया गया कर्म का भोग ही वैध भोग है। शास्त्र देखकर प्रकृति के उपयुक्त व्यवस्था पसन्द कर लेना बहुत ही कठिन काम है। विधि के अनुसार प्रकृति के उपयुक्त कर्म कर लेने से ही क्रम-क्रम से भोग कट जाता है।

मैं—शास्त्रोक्त लक्षणों द्वारा क्या प्रकृति की पहचान नहीं हो सकती ?

ठाकुर—प्रकृति को पहचान लेना क्या इतना सहज काम है ? शास्त्र के पढ़ने अथवा अन्य किसी चेष्टा के बल-बूते पर उसका कुछ पता नहीं लगता।

मैं—तो फिर अन्दाज़ से किस प्रकार कर्म किया जाएगा ?

ठाकुर—स्वयं अपनी प्रकृति कभी नहीं पहचानी जा सकती। इसी लिए सद्गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। जिसकी जैसी प्रकृति है उसको साफ़ साफ़ देखकर सद्गुरु, प्रकृति के अनुसार, कर्म की व्यवस्था कर देते हैं। बिना आगा-पीछा किए उनकी आज्ञा के अनुसार कर्म करते जाने से ही सहज में कर्म पूरा हो जाता है। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

मैं—अब तक मैं समझता था कि नौकरी करना और गृहस्थ हो जाना ही कर्म है।

ठाकुर—वासना में ही कर्म है; वासना की निवृत्ति करना ही कर्म का उद्देश्य है। वैध भोग द्वारा ही वासना का अन्त करना चाहिए। जिसकी वासना जिस ओर हो उसका कर्म भी उसी ओर है। सिर्फ शादी ब्याह करके गृहस्थ हो जाना अथवा नौकरी कर लेना ही कर्म नहीं है।

मैंने पूछा—धर्म को प्राप्त करने के लिए घर द्वार, माता पिता को छोड़कर जो लोग आते हैं वह धर्म प्राप्ति ही तो उसकी वासना है। अतएव वही तो उसका कर्म हुआ न ?

ठाकुर—सो तो है ही, हाँ यदि सिर्फ धर्म की ही ओर उसकी वासना रहे तब तो वह उसे निर्विघ्न कर सकेगा। और यदि अन्यान्य ओर भी उसकी वासना हो तब तो वह शान्त होकर धर्म-कर्म न कर सकेगा। जिस परिमाण में दूसरी ओर वासना रहेगी उसी परिमाण में उसे अशान्त होना होगा और कष्ट सहना होगा। इसी लिए अन्यान्य वासनाओं से पीछा छुड़ाकर आना चाहिए।

मैं—सद्गुरु तो वही करने के लिये कहते हैं जिससे कर्म बेबाक हो जाय। किन्तु कैसे मालूम होगा कि वैसा करने से कर्म पूरा हुआ अथवा नहीं ?

ठाकुर—जब देख पड़े कि किसी ओर तनिक सी वासना नहीं रह गई है, विषयों के पास होते हुए भी इन्द्रियाँ बिलकुल अनासक्त हैं, निवृत्त हैं, तभी समझ ले कि सारा कर्म बेबाक हो गया।

गोस्वामी जी के दिये हुए जनेऊ की शक्ति

आज दोपहर को सतीश ने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा—"भाई, बतलाओ क्या करें ? मेरी दुर्दशा तो दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। गोस्वामी जी प्रायः मुझसे कहा

करते हैं कि घर जाकर माँ की सेवा करो—किन्तु यह इच्छा मेरी है ही नहीं। कर्म में यदि मातृसेवा हो तो क्या गोस्वामी जी उसको काट न सकेंगे ?" मैंने कहा—"रत्ती भर भी भुगाये बिना सहज में यह कर्म काटा जा सकता तो क्या वे काट न देते ? ठाकुर जो कुछ कहें उसको, आगा-पीछा किये बिना, कर डालना ही अच्छा है।" सतीश ने कहा—"भाई, यह मुझसे न होगा, फिर यह बात मुझसे न कहना। गोस्वामीजी चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं। नाहक हम लोगों को हैरान कर रहे हैं। मैं तो उनकी अद्भुत शक्ति को देखकर दङ्ग हो गया हूँ। तुम जानते तो हो कि मैं कैसा कट्टर ब्राह्मसमाजी था। आसानी से किसी बात पर विश्वास न करता था; किन्तु गोस्वामीजी की अद्भुत शक्ति देखकर अब मुझे अविश्वास करने की हिम्मत नहीं होती। थोड़े दिनों की एक घटना सुनो, समझ जाओगे।" इसके बाद सतीश मुझसे इस प्रकार कहने लगे—भाई, जनेऊ उतार कर मैंने ब्राह्मधर्म की दीक्षा ली थी, यह सब हाल तो तुम्हें मालूम ही है। मेरे पिताजी की मृत्यु हुए अभी थोड़े दिन हुए हैं। माताजी ने मुझे घर पर बुला भेजा; किन्तु पिता के मरने की खबर सुनते ही मैं न जाने कैसा हो गया। सब कुछ छोड़ छाड़कर उसी दम पैदल श्रीवृन्दावन के लिए रवाना हो गया। नहीं कह सकता कि रास्ते में मुझे कैसी-कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ीं और मेरी क्या क्या दशा हुई। बड़ी मुसीबतें उठाकर श्रीवृन्दावन में आया। तब प्रतिदिन ही गोस्वामीजी से मेरा झगड़ा होता था। यहाँ आते ही मुझसे गोस्वामीजी ने कहा—तुम्हारे पिता की प्रेतात्मा सदा तुम्हारे ऊपर बनी रहती है, जाकर शास्त्रानुसार श्राद्ध करो। इससे उनका भी विशेष कल्याण होगा और तुम्हारा भी लाभ होगा। मैंने गोस्वामीजी से कहा—मैं तो जनेऊ तोड़कर ब्राह्म हो गया था। शास्त्र की रीति से श्राद्ध किस तरह करूँ ? गोस्वामीजी बोले—फिर से जनेऊ पहन लो, बस फिर तो कुछ दिक्कत न रहेगी। मैंने कहा—"जब पहनना ही होगा तब फिर उसका त्याग किस लिए किया था ? जनेऊ में यदि ऐसा कुछ गुण होता तो क्या मैं उसे उतार डालता या उसको त्याग सकता !" मेरी बातें सुनकर गोस्वामीजी बड़े तेहे के साथ बोले—अच्छा जनेऊ का गुण नहीं है ! उस तरह से तुम को जनेऊ मिला नहीं है इसीसे यह कहते हो; उस तरह से यदि ब्राह्मण तुम्हें जनेऊ पहनाता तो तुम्हारी क्या बिसात थी कि उसे उतार डालते ? जनेऊ का गुण देखोगे ? अच्छा, हम तुम्हें जनेऊ

पहनाये देते हैं, देखें तुम उसका त्याग कैसे करते हो ? अब थोड़ी देर में गोस्वामीजी ने मेरे गले में एक लम्बी जनेऊ को पहनाकर कहा—"सतीश, अब तुम इस जनेऊ को उतार कर फेंको तो !" भाई, मैंने सोच रक्खा था कि ज्योंही गोस्वामीजी मुझे जनेऊ पहनायेंगे त्योंही मैं उसे फेंक दूँगा—इसकी मुझे ज़िद भी बहुत हुई। गोस्वामीजी ने वह बात कहकर जब मुझे जनेऊ पहनाया और उसीदम उतार फेंकने के लिए ज्योंही मैंने जनेऊ को छुआ त्योंही मेरी न जाने कैसी दशा हो गई, मेरा शरीर जल्दी-जल्दी काँपने लगा, भीतर से बड़े वेग से गायत्री मन्त्र उठने लगा, हृदय में एक अपूर्व आनन्द का उच्छ्वास हुआ। मेरा बदन सुस्त हो गया ;—मैं रोने लग गया, बारबार गोस्वामीजी को नमस्कार करने लगा। इसीसे कहता हूँ भाई, मैं तो कई बार देख चुका हूँ कि गोस्वामीजी सब कुछ कर सकते हैं। फिर हम लोगों को नाहक भटकाते किस लिए हैं ? सतीश की बातें सुनने से मुझे तनिक भी अचम्भा नहीं हुआ। ठाकुर ने मुझे जब से ब्रह्मचर्य दिया है उसके बाद से मैं अपने जीवन में जिन अद्भुत घटनाओं का अनुभव कर रहा हूँ उनकी याद करके सोचने लगा—'यह है ही क्या !' अपने अद्भुत अनुभव की बातें सोलहों आने छिपाये रहकर मैंने सतीश से कहा—यह सब देखकर ही तो ठाकुर की किसी बात को टालने की हिम्मत नहीं होती।

सतीशने अपने रिपु की उत्तेजना के सम्बन्ध में मुझे जो सारी शोचनीय दुर्दशा की बातें सुनाईं उनको सुनने से मुझे आश्चर्य हुआ। उनकी दुरवस्था का ब्योरा सुनकर मैं व्यथित मन से चुपचाप बैठा रहा। मैं थोड़ी देर में जब ठाकुर के पास गया तब उन्होंने तुरन्त ही कहा—सतीश ने अपनी जिन अवस्थाओं का हाल तुमसे कहा था उससे जान पड़ता है कि अब उनका यहाँ पर रहना ठीक नहीं है। उनसे कह दो, दूसरी जगह जाकर रहें।

ठाकुर के कहने के अनुसार मैंने जाकर सतीश से सब कह दिया। मेरे ऊपर नाराज़ होकर सतीश मुझे धमकाकर बोले—"जा जा, बेटा, गोस्वामीजी क्या मुझसे नहीं कह सकते जो तेरे हाथ सँदेशा भेजेंगे !" ठाकुर से जाकर यह कहने पर उन्होंने सतीश को बुलाकर कहा—सतीश, तुम्हारे भीतर की जैसी हालत है उसको देखते हुए तुम्हारा स्त्रियों से दूर रहना ही भला है। यहाँ पर स्त्रियाँ मौजूद हैं, इसलिए तुम दूसरी

जगह जा के रहो। भोजन इत्यादि यहीं कर जाया करो, रहने का प्रबन्ध कहीं दूसरी जगह कर लो।

ठाकुर की बात सुनकर सतीश एक दम चमक कूद पड़े। बड़े तेहे के साथ कहने लगे—"क्यों, हम क्यों जावें? सब स्त्रियाँ ही क्यों न यहाँ से चली जायँ! उनसे दूसरी जगह जाकर रहने के लिए क्यों नहीं आप कहते? संन्यासी के आश्रम में भला स्त्रियों का क्या काम? मैं यहाँ से कभी जाने का नहीं।" यह कहकर सतीश चटपट नीचे चले गये; उन्होंने ठाकुर का उत्तर सुनने की प्रतीक्षा ही नहीं की। माताठाकुराणी ने कहा—"सतीश की माता की बहुत बुरी हालत है। समय-समय पर उनकी जलन की आँच आकर मेरी छाती में लगती है। इसी से मैं बेचैन हो जाती हूँ।" ठाकुर ने कहा—पिता का श्राद्ध किये बिना ही सतीश इस रूप में चले आये हैं, इसी से अनेक प्रकार के उत्पातों को सह रहे हैं।

श्राद्ध से प्रेतात्मा की यन्त्रणा की शान्ति

तब मैंने पूछा—क्या श्राद्ध करने से सचमुच में प्रेतात्मा के क्लेश शान्त हो जाते हैं? ठाकुर ने यहाँ की, थोड़े दिन की, एक घटना का उल्लेख करके कहा—एक दिन हम यमुना किनारे-किनारे चलकर ज्योंही कालीदह के पास पहुँचे त्योंही एक प्रेत हमारे सामने आकर गिर पड़ा और बेतरह तड़पने लगा। हमने उससे पूछा—"ऐसा क्यों करते हो?" प्रेत ने कहा—'प्रभो, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, मैं अब इस क्लेश को सहन नहीं कर सकता। मुझे सदा सैकड़ों-हजारों बिच्छू डंक मारते रहते हैं। दर्द के मारे बेचैन होकर मैं दिनरात इधर-उधर दौड़ता रहता हूँ। मुझे घड़ी भर के लिए भी आराम नहीं मिलता। आप मेरी रक्षा करें।' हमने उससे पूछा—"यह आपके किस पाप का दण्ड है?" प्रेत ने ढाड़े मारकर रोते हुए कहा—'प्रभु, यहाँ पर मैं *** मन्दिर में पुजारी था। ठाकुर की सेवा-पूजा के लिए मुझे जो रुपया पैसा आदि मिलता था उसको भगवान् की सेवा में खर्च न करके मैं भोग-विलास और ऐयाशी में फूँक देता था। यही मेरा सबसे भारी अपराध है।' हमने उससे पूछा—"क्या करने से आपको इस क्लेश से छुटकारा मिलेगा?" प्रेतात्मा ने कहा—'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ; श्राद्ध कर दिया जायगा तो इन क्लेशों की शान्ति हो जायगी। आप

दया करके मेरे श्राद्ध का प्रबन्ध कर दीजिए।' हमने पूछा—'किस प्रकार का प्रबन्ध कर दें ?' प्रेत ने कहा—'श्राद्ध कर देने के लिए मैंने अपने भतीजे को डेढ़ हजार रुपये दिये थे; किन्तु उसने अब तक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके वह रुपया मँगवाकर कुछ तो ठाकुर जी की सेवा-पूजा में लगा दीजिए; और बाकी रुपये द्वारा मेरे कल्याणार्थ श्राद्ध करके महोत्सव करने से ही मेरा इस यन्त्रणा से छुटकारा हो जायगा।' प्रेत के मुँह से ये बातें सुनकर हमने उक्त मन्दिर के वर्तमान पुजारी के पास जाकर सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद उस प्रेत के भतीजे को भी यह सब खुलासा हाल बतलाया गया। उन्होंने समझ रक्खा था कि उस रुपये की कोई खबर ही न लेगा। जो हो, उन्होंने पूरी रकम देकर विधि के अनुसार श्राद्ध कर दिया। महोत्सव इत्यादि भी हुआ। इसके बाद उस प्रेत का सारा दुख-दर्द जाता रहा। यहाँ पर इस घटना को हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं।

चीरघाट पर नौकालीला

सन्ध्या होने से तनिक पहले हम लोग ठाकुर के साथ बाहर निकले। यमुना के किनारे-किनारे चलकर चीरघाट पर पहुँचे। वहाँ पर ठाकुर एक पेड़ की जड़ के पास बैठकर दूसरे पार के बेलबाग की ओर देखने लगे, फिर थोड़ी ही देर में समाधिस्थ हो गये। कुछ देर तक शान्ति से नाम का जप करते रहकर शाम होने पर हम लोग कुञ्ज में लौट आये। कुतू तुरन्त लोटे में जल लाकर ठाकुर के श्रीचरण धुलाने के लिए सीढ़ी के पास आ खड़ी हुई। ठाकुर ने हँसी करके कहा—कुतू, आज कितनी ही विल्लियों के मैले पर होकर आया हूँ। पैरों में वह मैला लगा हुआ है। कुतू ने 'क्या हर्ज है' कहकर ज्यों ही पैर पकड़ने चाहे त्योंही ठाकुर ने दोनों पैर पीछे हटाकर कहा—'अरी ठहर तो, पैरों में भद्दा मैला जो लगा हुआ है।' कुतू ने कहा—'लगा न रहे, उससे मुझे रत्ती भर घिन नहीं है। मैं रगड़ कर बहुत सफाई से धोये देती हूँ।' ठाकुर ने कहा—'अरी तेरे हाथों में मैला न लग जायगा।' कुतू ने तनिक हँसकर कहा—'यह क्या कहते हो ! जो तुम्हारे पैरों में लगा हुआ है वह भला मैला है !' ठाकुर ने इस पर फिर कुछ न कहा। कुतू का यह भाव देखकर मैं दङ्ग रह गया। अहा ! ठाकुर के श्रीचरणों में जो लगा हुआ है वह क्या अब भी मैला

है ? उसमें फिर घृणा कैसी ! मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि ठाकुर के ऊपर किस सीमा तक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होने से इस प्रकार का भाव स्वभाव-सिद्ध होता है।

हम सब लोग बरामदे में आकर ठाकुर के पास बैठ गये। कुतू ने कहा - बाबूजी, यमुना-किनारे जब हम लोग बैठे हुए थे तब तुम समाधि की अवस्था में 'डूबेगी नहीं, डूबेगी नहीं' कहकर खूब क्यों हंसे थे ? यह बात तुमने किससे कही थी ?

ठाकुर—और किससे कहूँगा ? कुतू ने कहा—खुलासा क्यों नहीं बतला देते ? ठाकुर ने कहा—ओरी, यमुना किनारे जाकर बैठते ही कृष्ण नौका ले आये, मुझसे कहने लगे—"सवार होजा, एक बार यमुना में जाकर 'बाच्' खेलें।" इनकी बात मानकर मैं नाव में बैठ गया। कृष्ण नौका के छोर पर थे। मँझधार में नाव को ले जाकर उसके छोर को पानी के भीतर दबा दिया। तब नौका डूबने लगी। नाव में जो लोग बैठे हुए थे वे सभी एकदम चिल्ला उठे। मैंने भी देखा कि कृष्ण नाव को डुबाने ही वाले हैं। तब मालूम हुआ कि ये तो सिर्फ डरवाते हैं। यह नाव कभी डूबने की नहीं। नाव के डूब जाने पर सिर्फ हमी लोग थोड़े डूबते, क्योंकि जब स्वयं कृष्ण नाव में बैठे हुये हैं तब गलही में पानी भर आने पर पहले कृष्ण ही डूबेंगे। इसी से मैंने सब से कहा था, 'डूबेगी नहीं, डूबेगी नहीं, यह सब कृष्ण की चालाकी है।'

कुतू—तुम कृष्ण के साथ चले गये, भला हम लोगों को साथ में क्यों नहीं ले गये ?

ठाकुर—अरी वह तो छोटी सी नाव थी। उसमें भला बहुत लोगों के लिए जगह कहाँ थी ?

माताठाकुराणी—अच्छा होता कि अपना खेल ही देख लेने देते। सो यह भी न हुआ।

ठाकुर—इसमें लाभ ही क्या होता ? एक तसवीर देखने की तरह के सिवा और क्या है।

माताठाकुराणी—यही सही, लेकिन देख लेने देने में हानि क्या थी ? किसी के न रहने की अपेक्षा अन्धे का रहना बेहतर है।

माताठाकुराणी, कूतू और ठाकुर, श्रीकृष्ण की लीला के सम्बन्ध में बहुत बातचीत करने लगे ; किन्तु इसमें से मेरी समझ में कुछ न आया।

कूतू ने ठाकुर से कहा—बाबूजी, जब मैं गेण्डारिया में थी तब तुमने मुझे चिट्ठी क्यों नहीं भेजी ?

ठाकुर--तुझे भला चिट्ठी क्या लिखता ? तू तो सदा मुझे देखती रहती थी।

कूतू—मैं देख लेती थी, इससे क्या, तुम्हें चिट्ठी लिखना उचित नहीं था ?

ठाकुर—जब देख लिया, बातचीत सुन ली, तब फिर चिट्ठी की क्या जरूरत ?

कूतू—देख ज़रूर लेती था, परन्तु बातचीत तो सदा नहीं सुन सकती थी।

ठाकुर—सदा बातचीत सुन पड़ना कहीं अच्छा लगता ?

मैंने थोडा सा मौका पाकर कूतू से पूछा—कूतू ! क्या आजकल तुम्हें मच्छर नहीं काटते

कूतू—काटेंगे क्यों ? बाबूजी ने उनको रोक नहीं दिया है ?

बहुत देर तक इनकी ऐसी ही बातें हो चुकने पर हम लोग लेट रहे।

माताठाकुराणी के ठाकुर के साथ रखने की बात

भाद्रपद कृ० ६

कल सतीश ने क्रोध की झोंक में ठाकुर से जो बातें की थीं उससे फिक्र हुई कि शायद ठाकुर फिर माताठाकुराणी से दूसरी जगह जाकर रहने के लिए कहें। ठाकुर ने तो कहा था कि साथ में माताठाकुराणी के रहने से आश्रम की मर्यादा टूटती है। माताठाकुराणी को साथ में रख छोडा है। समझ में नहीं आता कि यह ठाकुर ने अपनी मर्जी से किया है या परमहंसजी की आज्ञा से। यह पूछने का आरम्भ करते ही ठाकुर मन्द-मन्द मुसकुराकर कहने लगे—

कुछ दिन हुए कि एक दिन गुरुदेव मुझे सूक्ष्म शरीर में ले जाकर पहाड़ों में घूमने-फिरने लगे। फिर मुझे साथ लिये हुए मन्दार पर्वत मे पहुँचे। वहाँ पर दया करके उन्होंने मुझे ऊर्ध्वरेता बना दिया। बहुत दिनों से ऊर्ध्वरेता होने की मुझे इच्छा थी। मेरी वह अवस्था हो जाने पर मैंने उनके लिए भी विशेष रूप से अनुरोध किया तो दया करके उनको भी गुरुदेव ने वह अवस्था दे दी। फिर एक दिन गुरुदेव ने आकर मुझसे कहा 'तुम तो अब बिलकुल बेखटके हो गये हो। तुम

चाहे पहाड़ों-जङ्गलों में रहो और चाहे घर-गृहस्थी में रहो, सभी जगह तुम्हारी अवस्था एक ही प्रकार की रहेगी। उन्हें तुम यहीं रहने दो; अच्छा ही होगा।' गुरुदेव की आज्ञा से ही उन्हें फिर बुला लिया है। नहीं तो मैंने तो उत्तर कुरु में ही चले जाने का विचार किया था।

ये बातें सुनकर मैं बहुत ही लज्जित हुआ। सोचा, 'हाय कैसी दुर्दशा है। ठाकुर के काम-काज पर भी मुझे पूछ-ताछ करने की प्रवृत्ति हुई।' जो हो, मैंने थोड़ी ही देर में पूछा—क्या उत्तर कुरु में जाना सम्भव है?

ठाकुर—जाना सम्भव है क्यों नहीं? लेकिन है बड़ी कठिनाई।

मैं—सुनता हूँ कि मानससरोवर में और कैलास में शायद कोई पहुँच नहीं सकता?

ठाकुर—पहुँच क्या नहीं सकेगा? हठयोग का अच्छा अभ्यास हो तो पहुँच हो सकती है नहीं तो पहुँचना असम्भव होता है। उस दिन यहाँ पर जो परमहंस पधारे थे वे कैलास से ही आये थे।

कैलासयात्रा का विवरण

मैंने ठाकुर से पूछा—उन साधुजी से क्या आपका पुराना परिचय था? वे किस प्रकार गये थे? अकेले गये थे, या और कोई साथी भी था?

ठाकुर कहने लगे—कई वर्ष पहले उन परमहंसजी से भेंट हुई थी। एक हठयोगी साधु, ये परमहंस और मैं तीनों कैलास जाने के लिए चल पड़े। बहुत दूर पहाड़ के रास्ते से चलते-चलते एक बहुत ही बड़े पहाड़ के समीप पहुँचे। एक आदमी ने आकर हम लोगों को आगे जाने से रोककर कहा—"उस पहाड़ पर जाने का हुक्म नहीं है।" उनसे पूछा गया, क्यों? उन्होंने कहा, "उस पहाड़ पर चढ़ने से मनुष्य पत्थर बन जाता है।" उनकी बात पर सन्देह किया तो उन्होंने हम लोगों को बहुत दूर, पहाड़ पर, तीन मनुष्यों की सूरतें दिखलाकर कहा—"वह देख लीजिए, वे लोग नीचे से ऊपर तक पत्थर के हो गये हैं।" उस पहाड़ पर चढ़ने के रास्ते में पहाड़ के ही किनारे एक बड़ी सी चट्टान में बड़े बड़े, अक्षरों में खुदा हुआ है—"अत्र अमे न गच्छन्ति।" पहाड़ की यह हालत देखकर युधिष्ठिर स्वर्ग जाते समय यह बात लिख गये थे, ताकि पीछे कोई इस मार्ग से जाकर

विपत्ति में न फँसे। यह सब देखकर हम लोगों ने उस ओर से होकर जाने का विचार छोड़ दिया। हठयोग का हमें अभ्यास नहीं है, रास्ते में और और प्रकार के बहुत से विघ्न हो सकते हैं, यह सोचकर हम लौट आये। किन्तु वे दोनों संन्यासी नहीं लौटे। उन लोगों ने कहा—"हम लोगों को आग की कमी न होगी, साथ में 'चकमक' मौजूद है। रास्ते में पानी मिलता जाय तो हम लोगों की क्रिया होती रहेगी; क्रिया के करते जाने से हमारे शरीर को कुछ न होगा।" यह कहकर वे लोग दूसरे रास्ते से, तनिक चक्कर खाकर, चले गये। इस बार श्रीवृन्दावन में आने पर उन्हीं परमहंस से हमारी भेंट हुई। उन्होंने हमको रास्ते का सब ब्योरा सुनाया। सुना—वे लोग पहाड़ के रास्ते से बहुत दिन तक चलकर मानससरोवर में पहुँचे। मानससरोवर होकर कैलास जाना पड़ता है। कैलास जानेवाले सभी यात्री एक निर्दिष्ट दिन तक वहाँ पर बाट जोहते हैं। उसी निर्दिष्ट दिन मानससरोवर के बीच में महादेव का रथ ऊपर आ जाता है। जिन्हें उस रथ की चोटी भी दीख जाती है वे भी कैलास को रवाना हो जाते हैं, बाकी लोग रुक जाते हैं। यदि कोई रथ को अथवा उसकी चोटी को देखे बिना ही कैलास को चल देते हैं तो वहाँ पहुँच जाने पर भी उन्हें महादेव के दर्शन नहीं मिलते। कैलास के यात्रियों को महादेव के दर्शन होने की यही परीक्षा है। हठयोगी साधु और परमहंस ने मानससरोवर में जाकर देखा कि अभी निर्दिष्ट दिन आने में देरी है, इसलिए उन्होंने मानससरोवर की परिक्रमा कर ली। इसके करने में उन्हें सत्रह दिन लगे थे। निर्दिष्ट दिन उपस्थित होते ही सरोवर के चारों ओर हजारों साधु-महात्माओं का 'हर हर बम् बम्' शब्द गूँज उठा; फूल, बिल्वपत्र, धूप, चन्दन आदि लेकर सभी सरोवर में महादेव की पूजा आरती करने लगे। उसी समय मानससरोवर का जल चक्कर खाकर तेजी से घूमने लगा। सभी लोग महादेव की स्तुति करते हुए सरोवर की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। ठीक समय पर चक्कर खा रहे जल के बीचोंबीच सोने के रथ की चोटी निकली। उसके दर्शन पाकर परमहंसजी कैलास की ओर बढ़े; किन्तु हठयोगी साधु को चोटी के दर्शन नहीं हुए, इससे वे वहीं से लौट पड़े। परमहंसजी और और महात्माओं के साथ

ठीक समय पर कैलास पहुँचे। कैलास पर्वत के १०८ शिखर हैं जो कि एक के बाद एक जंजीर की तरह, ऊँचे हैं। प्रत्येक शिखर का आकार शिवलिङ्ग का सा है। उन शिखरों को भी शिवलिङ्ग कहते हैं। उन शिवलिङ्गों की परिक्रमा करके कैलास पर चढ़ने का नियम है। एक-एक शिखर की परिक्रमा करने में प्राय' एक-एक दिन लगता है। सुना है कि १०८ शिखरों की परिक्रमा करने में उन लोगों को पूरे १०८ दिन लगे थे। ठीक शिवरात्रि के दिन कैलास के ऊपर मन्दिर के पास वे लोग पहुँचे। ठीक समय पर रात को अपने आप मन्दिर के किवाड़ खुल गये। तब सभी लोगों ने मन्दिर के भीतर साक्षात् महादेव और भगवती के प्रत्यक्ष दर्शन किये। ये दर्शन देर तक नहीं होते, बस ३।४ मिनिट तक होते हैं। परमहंस से भेट होने पर बहुत सी बातें हुईं। ३।४ साल के बाद अब की उनसे हमारी भेट हुई है।"

तिब्बत में बङ्गाली बाबू

ठाकुर से ये बातें सुनकर मैंने पूछा—सुनता हूँ कि तिब्बत में भी बहुतेरे अच्छे अच्छे बौद्ध लामा योगी हैं। क्या उन स्थानों में हम लोग नहीं जा सकते ?

ठाकुर—आगे तो यहाँ के साधु लोग वहाँ जा सकते थे। अब वहाँ जाने का कोई उपाय नहीं है। वहाँ पर एक बङ्गाली बाबू के जाने के बाद से विघ्नों का सिलसिला बँध गया है। वहाँ पर कानून बन गया है कि अब तिब्बत में और किसी को कदम रखने का हुक्म नहीं है।

मैंने पूछा—बङ्गाली के जाने से क्या हो गया था ?

ठाकुर—कुछ समय हुआ कि वेश बदलकर एक बङ्गाली बाबू तिब्बत में गये और उस देश की भाषा सीखने लगे। गुप्त रूप से उन्होंने उस देश का नकशा बनाना भी आरम्भ कर दिया। अन्त में पकड़े जाने पर राजा ने आज्ञा दी कि अब तुम देश को वापस न जाने पाओगे। बङ्गाली बाबू ने राजा के पण्डित की शरण ली ; वे उनसे प्रार्थना करने लगे कि ऐसा सुभीता कर दीजिए जिसमें हम फिर से अपने देश में लौटकर पहुँच जायें। विपन्न शरणागत का परित्याग

न करना चाहिए, इस कारण पण्डितजी ने बाबू साहब को आश्रय दिया। फिर पण्डितजी के कहने से उन्होंने कसम खाकर कहा कि देश जाकर किसी को तिब्बती भाषा न सिखलावेंगे ; किसी को तिब्बत के रास्ते आदि की भी पहचान न करावेंगे। राज पण्डित बड़े भारी धर्मात्मा थे। उन्होंने बङ्गाली बाबू की बात पर भरोसा करके उन्हें अपने कन्धे पर बैठाकर गहरी रात के समय पहाड़ी मार्ग से कोई ४।५ कोस चलकर एक सङ्कट विहीन स्थान में पहुँचा दिया। बाबू साहब ने कलकत्ता पहुँचते ही सारा हाल प्रकट कर दिया। वे तिब्बती भाषा भी सिखाने लगे। होते होते यह खबर तिब्बत में भी पहुँची। तब वहाँ के राजा ने उन पण्डितजी को कठोर दण्ड दिया। उनको एक चमड़े के थैले के भीतर बन्द करवा के और थैले को भली भाँति सिलवाकर, नदी में डुबवा दिया। कुछ दिन हुए, एक लामा गुरु ने हमको यह सारा हाल बतलाया था। उन्होंने और भी कहा था—'राजा यदि हम जैसे दस हजार आदमियों के सिर लेकर योगीश्रेष्ठ पण्डितजी को छुटकारा दे देते तो इससे देश के सभी लोगों को प्रसन्नता होती। गुरुजी सभी विषयों में सर्वश्रेष्ठ थे, राजा भी उनका खासा सम्मान करते और पूजा करते थे। किन्तु ऐसा कठोर दण्ड न दिया जायगा तो देश की रक्षा करना कठिन हो जायगा, यह सोचकर देश के सर्वप्रधान व्यक्ति के इस प्रकार मारे जाने का दण्ड दिया।' उक्त लामा साधु आकर बार-बार "बेईमान बङ्गाली, बेईमान बङ्गाली" कहने लगे। बङ्गालियों के ऊपर अब तिब्बतियों को विश्वास नहीं है। वे अब 'बेईमान बङ्गाली' कहा करते हैं।

माताठाकुराणी का ऐश्वर्य और आकांक्षा

श्रीवृन्दावन में आकर माताठाकुराणी का असाधारण कार्य देखकर विस्मित हो रहा हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि ये घटनाएँ किस तरह हो रही हैं। माताठाकुराणी ने यहाँ आने पर हम लोगों के भोजन आदि की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली है। हम जितने आदमी हैं, इन सब को जिस समय जिस वस्तु की जरूरत होती है वह वस्तु उस समय, बिना ही माँगे, वे अपने आप समझकर मँगा देती हैं। रुपया पैसा जैसा पहले आता था वैसा ही

इस समय भी आता है ; लेकिन हम लोगों को किसी चीज़ की कमी नहीं है। भण्डारे में सदा सब चीज़ें भरी-पुरी रहती हैं। प्रति दिन हम ६।१० आदमी दोनों जून भोजन किया करते हैं, इसके सिवा दो-तीन दिन के अन्तर पर लोगों का निमंत्रण आदि अलग होता रहता है—माताठाकुराणी एक छोटे से 'बोंगना' में सिर्फ एक बार भात बनाती हैं ; 'बोंगने' (पतीली) में एक सेर से अधिक चावल नहीं समाते। दाल, तरकारी आदि ५।६ तरह की चीज़ें छोटी सी कढ़ाही में बना लिया करती हैं। यद्यपि बर्तन छोटा सा है तो भी एक चीज़ को दुबारा बनाने का माताठाकुराणी का नियम ही नहीं है। समय-समय पर जब हम १५।२० आदमी भोजन करने को पहुँचते हैं और बाहरी आदमी भी न्यौता देकर बुला लिये जाते हैं तब भी वे नियमित परिमाण से अधिक रसोई नहीं बनातीं। रसोई बन जाने पर दाऊजी महाराज को भोग लगाती हैं, वहाँ से लाकर सारा प्रसाद रसोईघर में रक्खा जाता है। वहीं पर बैठकर हम लोग भोजन करते हैं। अचम्भे की बात है कि सिर्फ एक बोंगने भर प्रसाद और निर्दिष्ट परिमाण में बनी हुई तरकारियों आदि से, हम कितने ही आदमी क्यों न हों, माजी अपने हाथ से परोसकर सब को भरपेट भोजन करा दिया करती हैं। सब लोगों के भोजन कर चुकने पर माजी और वृद्ध प्रसाद पाती हैं। समझ में नहीं आता कि अधिक भात और तरकारियाँ वहाँ से किस तरह आ जाती हैं। यहाँ पर यह अद्भुत काम प्रतिदिन होता है। दाल, तरकारी इत्यादि रसोई की चीज़ों का स्वाद भी एक नये ढंग का देख रहा हूँ। याद नहीं पड़ता कि मैंने भोजन की ऐसी स्वादिष्ट चीज़ें अपने जीवन में कभी और कहीं खाई हैं। रसोई बनाने में कुतू बूढ़ी माताठाकुराणी को सहायता देती हैं। उस समय रसोईघर में जाने का हम लोगों को हुक्म नहीं है। रसोई का सारा प्रबन्ध करके चावल और ५।७ तरकारियाँ आदि बनाने में माताठाकुराणी को दो-तीन घण्टे से अधिक समय किसी दिन नहीं लगता। तरह तरह से पता लगाने पर भी कुछ समझ में नहीं आया कि माताठाकुराणी किस हिकमत से यह सब काम सिलसिलेवार कर लेती हैं। एक दिन दोपहर को भोजन करके मैं जब हरिवंश का पाठ कर चुका तब माजी के कमरे में जा बैठा। उन्होंने मुझ से कहा—"कुलदा, जान पड़ता है कि तुम शीघ्र ही देश जाओगे। देश में पहुँचकर माता की सेवा भली भाँति करना।" यह बात सुनकर मैं चौंक पड़ा। मैंने पूछा—"क्या आप साफ़-साफ़ देखकर कह रही हैं कि मुझे देश जाना पड़ेगा?" उन्होंने कहा—"क्यों!

क्या देश जाने की तुम्हें इच्छा नहीं होती ? देश में जाने से तुम्हारी भलाई ही होगी।" मैंने कहा—"मा, आपका हाल तो मुझे बिलकुल मालूम ही न हुआ। अपनी अवस्था की दो-एक घटनाएँ मुझे बतलाइए न। कंजूस की तरह आप उन सब को छिपाये हुए क्यों रहती हैं ?" वे बोलीं—तुमसे एक बात कहती हूँ, धर्मजगत् में यदि बड़े होना चाहो, धनी होना चाहो, तो कृपण बने रहना। अपनी कोई भी अवस्था किसी को मत बतलाना, बतला देने से फिर नहीं रहती है।

मैंने पूछा—भविष्यत् की सारी घटनाएँ क्या आपके आगे प्रकट हो जाती हैं ?

माजी—कैसे न होंगी ? लेकिन सब की सब तो प्रकट नहीं हो जातीं। दूर की विशेष-विशेष घटनाएँ मालूम हो जाती हैं ; और जो घटनाएँ ५।७ दिन के बीच होने वाली होती हैं वे तो सदा ही प्रकट रहती हैं।

मैं—साधन करते समय आपको कुछ दर्शन आदि नहीं होते ? क्या कभी समाधि लग जाती है ?

माजी—मैं साधन-भजन करती कब हूँ ? दिन का समय तो सेवा के काम-काज में ही बीत जाता है। दोपहर को अवसर पाकर थोड़ा सा विश्राम कर लेती हूँ। तीसरे पहर का समय भी ठाकुरजी के दर्शन आदि में निकल जाता है, सिर्फ रात को ही बैठती हूँ। उस समय दर्शन भी होते हैं। कभी-कभी जी चाहता है कि समाधि लगाये बैठी रहूँ, फिर वह इच्छा नहीं होती। समाधि लगाने की अपेक्षा इस तरह सेवा का काम काज करते करते दिन पूरे कर देना ही भला है।

इस तरह बहुत सी बातें हो चुकने पर माजी ने मुझसे अपने आप कहा—अभी से नहीं कहा जा सकता कि भविष्यत् में किस की कौन सी अवस्था होगी। इसी से तुम से कुछ बातें कहती हूँ, याद रखना। माता के लिए मुझे बड़ा कष्ट होता है। वे बड़ी दुखिया हैं। वे हमेशा से मेरे ही आसरे रही हैं। बड़े क्लेश सहे हैं। वे एक दिन के लिए भी सुखी नहीं हो सकीं। मालूम नहीं, आगे उनके भाग्य में क्या बदा है। माँ की देख भाल करते रहना। बुढ़ापे में दूसरे का बोझा न बनकर माँ यदि किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहें तो ४।५ रुपये महीने या उनके लिए प्रबन्ध कर देना और उन्हें खूब ढाढ़स बँधाते रहना।

क्या देश जाने की तुम्हें इच्छा नहीं होती ? देश में जाने से तुम्हारी भलाई ही होगी।" मैंने कहा—"मा, आपका हाल तो मुझे बिलकुल मालूम ही न हुआ। अपनी अवस्था की दो-एक घटनाएँ मुझे बतलाइए न। कञ्जूस की तरह आप उन सब को छिपाये हुए क्यों रहती हैं ?" वे बोलीं—तुमसे एक बात कहती हूँ, धर्मजगत् में यदि बड़े होना चाहो, धनी होना चाहो, तो कृपण बने रहना। अपनी कोई भी अवस्था किसी को मत बतलाना, बतला देने से फिर नहीं रहती है।

मैंने पूछा—भविष्यत् की सारी घटनाएँ क्या आपके आगे प्रकट हो जाती हैं ?

माजी—कैसे न होंगी ? लेकिन सब की सब तो प्रकट नहीं हो जातीं। दूर की विशेष विशेष घटनाएँ मालूम हो जाती हैं; और जो घटनाएँ ५।७ दिन के बीच होने वाली होती हैं वे तो सदा ही प्रकट रहती हैं।

मैं—साधन करते समय आपको कुछ दर्शन आदि नहीं होते ? क्या कभी समाधि लग जाती है ?

माजी—मैं साधन भजन करती कब हूँ ? दिन का समय तो सेवा के काम-काज में ही बीत जाता है। दोपहर को अवसर पाकर थोड़ा सा विश्राम कर लेती हूँ। तीसरे पहर का समय भी ठाकुरजी के दर्शन आदि में निकल जाता है, सिर्फ रात को ही बैठती हूँ। उस समय दर्शन भी होते हैं। कभी-कभी जी चाहता है कि समाधि लगाये बैठी रहूँ, फिर वह इच्छा नहीं होती। समाधि लगाने की अपेक्षा इस तरह सेवा का काम काज करते करते दिन पूरे कर देना ही भला है।

इस तरह बहुत सी बातें हो चुकने पर माजी ने मुझसे अपने आप कहा—अभी से नहीं कहा जा सकता कि भविष्यत् में किस की कौन सी अवस्था होगी। इसी से तुम से कुछ बातें कहती हूँ, याद रखना। माता के लिए मुझे बड़ा कष्ट होता है। वे बड़ी दुखिया हैं। वे हमेशा से मेरे ही आसरे रही हैं। बड़े क्लेश सहे हैं। वे एक दिन के लिए भी सुखी नहीं हो सकीं। मालूम नहीं, आगे उनके भाग्य में क्या बदा है। माँ की देख भाल करते रहना। बुढ़ापे में दूसरे का बोझा न बनकर माँ यदि किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहें तो ४।५ रुपये महीने का उनके लिए प्रबन्ध कर देना और उन्हें खूब ढाढ़स बँधाते रहना।

मैं—नानी के लिये आप चिन्ता न करें। वे किसी समय कष्ट न पावेंगी। कुछ न होगा तो मैं ही भीख माँग माँगकर उनको किसी चीज़ की कमी न होने दूँगा।

माताठाकुराणी ने और भी कहा—"तुमको एक और काम करना होगा। शान्तिसुधा गर्भिणी है। मैं उसे छोड़कर चली आई हूँ। माँ के साथ उसकी पटती नहीं है। उसका सिर भी ठीक नहीं है। गर्भावस्था में यदि सदा मानसिक कष्ट पावेगी तो गर्भस्थ सन्तान का अनिष्ट होगा। तुम मेरी ओर से शान्ति को एक पत्र लिख दो। 'मेरा जो कुछ है वह सब शान्ति को दिया। गेण्डारिया-आश्रम शान्ति का ही है। शान्ति वहीं पर आराम से रहे।'"

माताठाकुराणी की आज्ञा के अनुसार उन्हीं की ओर से मैंने उसी दम श्रीमती शान्तिसुधा को पत्र लिखा। माजी ने उस पर दस्तख़त कर दिये। माताठाकुराणी की ये सब बातें सुनकर मुझे कई प्रकार की फ़िक्र हुई। ठाकुर ने कहा था कि मा को अब गेण्डारिया में वापस नहीं पहुँचाया जायगा। इस समय मुझे उसकी भी याद आ गई। सोचा, माताठाकुराणी यदि शीघ्र ही चोला छोड़ेंगी तो उनकी तो मैं कुछ भी सेवा नहीं कर सका।

मैंने उनसे पूछा—माजी, आपकी बातें सुनने से मुझे अनेक प्रकार की आशङ्का होती है। मैं जानना चाहता हूँ कि आपके मन में किसी विषय की कुछ आकांक्षा है या नहीं।

उन्होंने कहा—मेरी दो आकांक्षायें हैं, (१) कुतू का विवाह हिन्दू समाज में हो, (२) और योगजीवन समाज में सम्मिलित हो जाय। और गोस्वामीजी ने महाभारत पढ़ना चाहा था सो उन्हें महाभारत की एक प्रति देने को जी चाहता है। कुतू नादान लड़की है, मजमाइयों की तरह उसके पहनने को पायज़ेब दे दी जाती तो अच्छा होता। और मुझको कुछ वासना नहीं है।

बातों के ढँग से मालूम हुआ कि माताठाकुराणी कुतू के विवाह के लिए यहाँ तक उकतानी हुई हैं। उस सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे और भी बहुत बातें कीं।

स्वप्न में भूत का उपद्रव

आज अवसर पाकर मैंने गतरात्रि के एक भयङ्कर स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को सुनाया।

भाद्रपद कृ० ७

"रात को २॥ बजे के लगभग स्वप्न देखा कि मैं आसन पर स्थिर बैठा हुआ नाम का जप कर रहा हूँ। अकस्मात् एक भयावना भूत मेरे पास

आ गया। तरह-तरह से डरवा कर वह मुझे साधन करने से रोकने की चेष्टा करने लगा। मैं डर के मारे बीच-बीच में काँपने लग गया; किन्तु मैं बड़ी तेज़ी से इस आशंका के मारे नाम का जप करने लगा कि जप बन्द करते ही विपत्ति में फँसना पड़ेगा। वह भूत एक भयंकर खड्ग लेकर मुझे काट डालने की धमकी देने लगा और बोला—'वह नाम लेगा और वह साधन करेगा तो काट-कूट कर तेरे टुकड़े कर डालूँगा। झटपट उस साधन को छोड़ दे।' भूत की वह भयावनी सूरत और भयंकर आक्रोश देखकर बड़ा ही त्रस्त हो पड़ा। तब मुझे अकस्मात् याद आया, गुरुदेव ने कहा है—स्थिरता से साधन करने पर, नाम का जप करने पर कोई भी कुछ विघ्न नहीं कर सकेगा। इसकी याद आ जाने से, भूत की ओर नज़र करके, मैं नाम का जप करने लगा। तब भूत मेरी ओर न आ सका। 'जप बन्द कर दो,' 'जप करना छोड़ दो' कहकर वह चिल्लाने लगा। फिर तड़पता हुआ दम साधे हुए भागकर ग़ायब हो गया। नाम का जप करते-करते मैं भी जाग पड़ा।" स्वप्न सुनकर ठाकुर ने कहा—यह क्या है, यह तो कुछ भी नहीं है। जिस रास्ते पर चल रहे हो उसमें न-जाने कितने बाघ, साँप, भूत-प्रेत और देव-देवियाँ आकर बाधा डालेंगी। साधन को छुड़ाने की चेष्टा सभी करेंगे। खूब सावधान रहना, कभी किसी तरह नाम को मत छोड़ना। नाम का जप करते ही वे सब उत्पात शान्त हो जायँगे। नाम छोड़ देने के लिए बहुतेरे कहेंगे।

प्रकृति का रोग। कर्म ही धर्म है

मैंने पूछा—जब हरिवंश का पाठ समाप्त हो जायगा तब फिर किन ग्रन्थों को पढ़ूँगा?

ठाकुर—महाभारत को आदि से लेकर अन्त तक अच्छी तरह पढ़ो। उद्योग-पर्व, शान्तिपर्व और अश्वमेधपर्व को खूब मन लगाकर पढ़ना। भागवत के एकादश द्वादश और तृतीय स्कन्ध को पढ़ना। इन सबको पढ़ चुकने पर रामायण और योगवाशिष्ठ को पढ़ सकते हो। अभी और पुराण आदि कुछ मत पढ़ना। इन्हीं कुछ ग्रन्थों का पढ़ लेना काफ़ी है।

मैं—किसी समय मैंने जिसकी कल्पना तक नहीं की थी ऐसी बढ़िया अवस्था में आपने मुझे रख छोड़ा है। अपने भीतर मुझे नाम लेने को भी काम-क्रोध आदि का पता नहीं चलता;

किन्तु आपका साथ छूटने पर तरह-तरह की परीक्षाओं और प्रलोभनों में पड़ सकता हूँ ! उस समय मेरे ब्रह्मचर्य की रक्षा किस प्रकार होगी ?

ठाकुर—परीक्षा और प्रलोभन में पड़ने से क्या होता है । इसके लिये तुम क्यों घबराते हो ? कहीं भी रहो, ब्रह्मचर्य के नियमों का प्रतिपालन करने की चेष्टा करते रहो । इसी से सब ठीक-ठाक हो जायगा । काम, क्रोध आदि तो मनुष्य की प्रकृति नहीं है—ये तो मनुष्य की प्रकृति की बीमारियाँ हैं । बीमार हो जाने पर जिस प्रकार औषधि का सेवन करने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार इन उत्पातों से बचने के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है । शरीर के रस से ही इन अनेक प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है । इसीसे शरीर के रस को घटा लेना चाहिये । रस के परिमाण को घटाने के लिए भोजन के सम्बन्ध में बहुत सावधान होना आवश्यक है । इस मामले में अपनी सामर्थभर चेष्टा करो, क्रम से सब ठीक-ठाक हो जायगा ।

इसके बाद मैंने ठाकुर से धर्मकर्म, पापपुण्य और वैराग्य के सम्बन्ध में पूछा । ठाकुर ने संक्षेप में उत्तर दिया—जो कर्म धर्म की प्राप्ति में अनुकूल हों उन्हीं को करना चाहिए । धर्म के प्रतिकूल कर्म ही पाप है । मनुष्य चाहे तो दो दिन के साधन से ही शायद पाप को दूर कर सकता है ; उसमें पाप को छोड़ने की शक्ति तो है किन्तु कर्म को छोड़ने की सामर्थ्य उसमें नहीं है । कर्म को, करके ही क्षय करना पड़ता है । कर्म किये बिना किसी का निस्तार नहीं हो सकता । कर्म कुछ धर्म से बाहर का विषय नहीं है, असल में कर्म ही धर्म है । धर्म-कर्म से अतीत अवस्था बहुत दूर की बात है । वैराग्य का यह अर्थ नहीं है कि काम-काज छोड़-छाड़कर बैठ रहे । भीख माँगकर निर्वाह करने लगे । सब विषयों से इन्द्रियों का सोलहों आने अलग हो जाना ही वैराग्य है । विषय में अनासक्त होने से ही समझना कि वैराग्य हो गया । कर्म किये बिना वैराग्य नहीं होता । तुम लोग अच्छी तरह समझ लो कि कुछ भी क्यों न करो, जिसके हिस्से का जितना कर्म है वह, आज हो, चाहे कल हो, चाहे दो दिन बाद, करना ही पड़ेगा । उसे किये बिना किसी तरह गुज़र नहीं होने का । एकमात्र भगवान् की कृपा से पलभर में

ही सब निःशेष हो सकता है, नहीं तो ज़बर्दस्ती कर्म से पीछा भला कौन छुड़ा सकता है ?

मातृ-सेवा और भ्रातृ-सेवा की आज्ञा

ठाकुर की बातें सुनने से मुझे भय हो गया। मैं तो जानता ही नहीं कि मेरे नसीब में कितने कर्म का बोझ है। झटपट उस सबको पूरा किये बिना मैं किसी तरह शान्त न हो सकूँगा; बेखटके होकर साधन-भजन, भगवान् के नाम का स्मरण कुछ भी न कर सकूँगा। गुरुदेव तो मेरा सब कुछ जानते हैं। उन्हीं से साफ़-साफ़ पूछ लूँ कि मुझे कौन-कौन सा कर्म करना है; बस मालूम होते ही उनको कर डालूँ। मन में यह सोचकर मैंने ठाकुर से कहा—"मैं तो जानता नहीं कि मुझे कौन-कौन काम करना है। आप मुझे साफ़-साफ़ बतला दीजिए; मैं बड़े उत्साह के साथ उसी को करूँगा। आप तो रोज ही सतीश से माता की सेवा करने के लिए कहते हैं; स्वामीजी से भी कर्म करने के लिए बहुत कहते हैं, किन्तु इनकी वैसी मति नहीं होती। आगे चलकर ऐसी दुर्मति मेरी भी हो सकती है। इसी से आप साफ़-साफ़ बतला दीजिए, मुझको क्या करना चाहिए!"

ठाकुर—तुमको माता की सेवा ही करनी है। यह काम कर लिया कि बेड़ापार है। नियम से ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए अब जाकर माता की सेवा करो। यह करने से ही सब ठीक हो जायगा। कुछ समय तक माता की सेवा करने से ही समझ में आ जायगा कि उस काम से क्या लाभ होता है। न तो तुम्हें नौकरी-चाकरी करके रुपया पैसा कमाने की चेष्टा करनी पड़ेगी और न घर-गृहस्थी के जंजाल में पड़ना होगा। माता की सेवा कर लेने से उसी में तुम्हारा सब पूरा हो जायगा।

मैं—मेरे सेवा करने से सन्तुष्ट होकर माता यदि मुझे धर्म प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद देकर छुट्टी दे दें तब तो मैं आपके साथ रह सकूँगा?

ठाकुर—सेवा से सन्तुष्ट होकर माँ तुम्हें छुट्टी दे दें तो उनकी अनुमति लेकर हमारे साथ खुशी से रहना। यह सब हो जायगा। अब जाकर बड़ी भक्ति के साथ माता की सेवा करो।

इसी समय दस रुपये के 'मनीआर्डर' पर मेरे दस्तखत कराने के लिए चिट्ठीरसा मुझे पुकारने लगा। मैंने दस्तखत करके दस रुपये ले लिये। देखा कि फैजाबाद से बड़े दादा ने यह 'मनीआर्डर' भेजा है। समझ में न आया कि इस समय उन्होंने अकस्मात् ये रुपये किस लिए भेज दिये हैं। ठाकुर के पास जाकर यह बात कहते ही उन्होंने कहा—अब तुम यहाँ से अपने बड़े दादा के पास चले जाओ। कुछ दिनों तक वहाँ पर उनकी सेवा करना। सन्तुष्ट होकर जब वे अनुमति दे दें तब घर जाकर माता की सेवा करना। सेवा द्वारा सभी बड़े-बूढ़ों को सन्तुष्ट करके, उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर फिर धर्ममार्ग पर चलना चाहिए। ऐसा करने से ही इस मार्ग पर चलने में सुभीता होता है। बड़े-बूढ़ों और नातेदारों में यदि एक आदमी वादी हो तो धर्म के मार्ग में अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं।

ये बातें हो चुकने पर ठाकुर ने मुझसे कङ्गाल फिकिर का 'ब्रह्माण्ड वेद' पढ़ने के के लिए कहा। 'ठाकुर की दीक्षा और हम लोगों के साधन में शक्ति सञ्चार की बात इस पत्रिका के स्थान-स्थान में कङ्गाल ने कुछ कुछ लिखा है। ठाकुर के कहने से मैं उसे पढ़कर सुनाने लगा।

कङ्गाल के ब्रह्माण्ड वेद में ठाकुर की दीक्षा आदि व शक्तिसञ्चार की बात

"सं० १६४१ पौष शु० ७ के सवेरे, पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी जी ने जिस समय कलकत्ते के साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी का कार्य किया उसी समय ऐसा एक दृश्य प्रकाशित हुआ था। उस समय बहुत लोग "मा मा कहकर जोर-जोर से रो पड़े थे। इस दृश्य में मुहम्मद नानक का हाथ पकड़कर और नानक अन्य भक्तों से गले-गले मिलकर "एकमेवाद्वितीय" का कीर्तन करते हुए भाव के आवेश में नाचे थे। महात्मा राजा राममोहन राय भी वहाँ पर उपस्थित थे। इसके अगले साल, स० १६४२ के पौष शु० ७ के सवेरे पहर जब विजयकृष्ण गोस्वामीजी ढाका साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी पर उपासना कर रहे थे तब उसी प्रकार का एक आध्यात्मिक दृश्य भी प्रकाशित हुआ। सं० १६४३

(कङ्गाल का ब्रह्माण्डवेद, प्रथम भाग ३९२ पृष्ठ)

के वैशाख में रङ्गपुर काकिनिया के जमींदार कुमार महिमारजन राय ने जिस समय वहाँ ब्राह्ममन्दिर की प्रतिष्ठा की और जिस दिन विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने प्रातःकाल वेदी का कार्य सम्पन्न किया उस दिन भी वैसा ही एक दृश्य प्रकाशित हुआ था; किन्तु वह पहले की तरह साफ़ साफ़ नहीं देख पड़ा।"

असाम्प्रदायिक धार्मिक प्रवर श्रीयुक्त विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने कहा है—"वे एक बार पर्वतवासी कुछ योगियों से भेंट करने गये थे। एक मद्रासी उनका पथ प्रदर्शक साथी था। पर्वत के समीप पहुँचने पर एक भैरव मिला जो अपने ललाट आदि में सिन्दूर लगाये हुए था, उसकी सूरत बड़ी भयावनी थी। वह इन लोगों को आगे न जाने देने के लिए पत्थर फेक फेककर मारने लगा। भैरव के इस काम से मद्रासी महाशय जातीय तेज से गरम हो उठे। तब गोस्वामी जी ने उन्हें रोककर कहा, 'गरम होने से काम न चलेगा। मैं इसके लिए तदबीर करता हूँ।' इसके बाद भैरव मूर्ति के तनिक अन्यमनस्क होने पर गोस्वामीजी ने वेग से जाकर उसके पैर पकड़ लिये। भैरव ने हँसते-हँसते कहा, 'तुम लोग समझते हो कि मैं बड़ा भारी पाखण्डी और निर्दय हूँ, किन्तु असल में यह बात नहीं है। इस पर्वत पर जो इने गिने योगी लोग रहते हैं वे सिद्ध पुरुष हैं। मैं उनकी सेवा के लिए नियुक्त हूँ। दुनियादार आदमी अपने कामों का शुभाशुभ वृत्त जानने के लिए योगियों को अक्सर हैरान किया करते हैं। इससे साधन में विघ्न होता है। इसी से वे लोग आजकल सुरङ्ग की राह होकर पर्वत के भीतर चले गये हैं। धर्मजिज्ञासुओं को वहाँ जाने के लिए रोक-टोक नहीं है। मैं पत्थर फेक-फेककर जाँच कर लिया करता हूँ कि कौन आदमी धर्मजिज्ञासु है और कौन दुनियादार। दुनियादार होता है तो पत्थरों की मार के डर से भाग खड़ा होता है। और सचमुच धर्मजिज्ञासु होता है तो, तुम लोगों की तरह, अपने उद्देश्य को नहीं छोड़ता। जो चाहे तो मेरे साथ चलकर योगियों के दर्शन कर लेना। किन्तु वहाँ पर पानी नहीं है, यहीं पर थोड़ा सा खाकर झरने का पानी पी लो। अब उस भैरव ने मनुष्य की खोपड़ी में मनुष्य का ही मांस लाकर उन लोगों को खाने के लिए दिया। 'मैं तो किसी तरह का मांस नहीं खाता' यह कहकर गोस्वामीजी ने उसे छोड़ दिया, इससे नाराज़ होकर भैरव ने उन लोगों को धमकाया, किन्तु वह रास्ता दिखलाता हुआ उन्हें योगियों के पास ले चला। गोस्वामीजी सुरङ्ग की राह

कङ्काल का ब्रह्माण्ड वेद, द्वितीय भाग, २४३ पृष्ठ

घुटनों के बल चलकर बड़ी मुश्किल से योगियों के समीप पहुँचे। उन्हें प्रणाम करके गोस्वामीजी ने देखा कि वह स्थान बिना छत के एक दरवाजे के कोठे की तरह है। अर्थात् चारों ओर दीवार की जगह पहाड़ खड़ा है और बीच का स्थान खासा, साफ, और वृक्ष-लताओं से शोभित है। एक योगी ने गोस्वामीजी से बिना कुछ पूछे-ताछे भैरव की निन्दा करके कहा—"तुम अघोर पन्थी हो, अतएव तुम मनुष्य का मांस खाते हो, किन्तु जिसका वह पन्थ नहीं है वह मनुष्य का मांस नहीं खा सकता, तुमने उसे वह क्यों दिया? इससे तुम्हारी बेढब ढिठाई प्रकट हुई है। क्या तुम यह समझते हो कि अघोरपन्थी हुए बिना कोई सिद्ध नहीं हो सकता? यह तुम्हारी बड़ी भारी भूल है। पन्थ कुछ नहीं है, यह तो निरा उपाय है। सिद्धि पा लेना तो दूसरी ही बात है। यहाँ पर हम जो चार आदमी रहते हैं उनमें से क्या सबने एक ही पन्थ का अवलम्बन करके साधन किया था? कोई वैष्णव है, कोई दूसरी ही प्रणाली के सहारे साधन करने में प्रवृत्त हुआ है। इस समय सभी का एक पन्थ और एक उद्देश्य है। अतएव इस समय कोई भी प्रणाली नहीं है!" गोस्वामीजी ने योगियों से जो कुछ पूछने का विचार किया था उसी का उत्तर, भैरव को समझाते हुए, दिया। यह घटना इस बात की गवाही देती है कि योगियों को बाहरी दो आँखों की तरह ललाट के भीतर स्थित तीसरी आँख से सब कुछ मालूम हो जाता है। इसके बाद योगियों ने गोस्वामीजी से जिस प्रकार की बातचीत की उसमें उन्होंने पृथिवी भर के देशों की घटनाएँ बतलाईं। अखबार पढ़ने और परम्परा से सुनने से गोस्वामीजी को जो हाल मालूम हुए थे उनका योगियों की बातों से मेल देखकर गोस्वामीजी को बड़ा विस्मय हुआ। जङ्गल के भीतर घोर पहाड़ी प्रदेश में अखबार पहुँचना तो दूर रहा, बस्ती के आदमियों की भी आमद-रफ्त नहीं है। खासकर पृथिवी के सभी देशों के इतिहास और वर्तमान घटनाओं के समाचार, जिनकी खबर पाठकों को नहीं है, योगियों को मालूम हैं—इसे दिव्यदृष्टि का फल कौन न मानेगा?

मैंने ठाकुर से पूछा—भैरव जब पत्थर मारने लगे तब आप लोगों ने क्या किया? क्या आप लोगों को पत्थर नहीं लगे?

ठाकुर—भैरव बुरी तरह चिल्लाकर गाली-गलौज करते हुए पत्थर फेंकने लगे तब साथी ब्राह्ममित्र भाग खड़े हुए। मुझे पत्थर लगने लगे। पैर में एक ही जगह पर दो पत्थरों की चोट लगने से घाव हो गया और रक्त बहने लगा। मैं पैर को

मटकार कर वहीं पर हाथ जोड़े खड़ा-खड़ा टकटकी बाँध कर भैरव की ओर देखने लगा। तब भैरव विस्मित होकर मेरी ओर देखने लगे; इसी अवसर पर मैं दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ा। तब वे बड़ा आदर करके मुझे पकड़ कर पहाड़ के एक एकान्त स्थान में ले गये। वहाँ पर भैरव ने मुझे एक जले हुए हाथ की हथेली लाकर खाने को दी और कहा कि "महाप्रसाद को पाओ।" हथेली उन लोगों का बड़े सम्मान का भोजन है। मैंने यह कह कर उसे छोड़ दिया कि मैं मांस नहीं खाता, इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। फिर वे मुझे महापुरुषों के पास ले गये। वहाँ जाकर देखा कि एक घर के चारों कोनों में चार महात्मा समाधि लगाये हुए बैठे हैं। उनमें से पहले एक तो आचारी, एक अघोरी, एक कापालिक और एक नानक पन्थी—इस तरह परस्पर विरुद्ध पथावलम्बी—थे। उनमें से एक थे गया के गम्भीरनाथजी। वे लोग बड़ी शान्ति से परमानन्दपूर्वक एक ही स्थान में हैं। उन लोगों से कई विषयों पर बहुत बातचीत हुई।

ठाकुर के कहने के अनुसार मैं तृतीय भाग ब्रह्माण्डवेद के १७८ पृष्ठ में ठाकुर की दीक्षा के सम्बन्ध में कङ्काल का लिखा हुआ पढ़ने लगा।

ब्रह्माण्ड वेद, तृतीय भाग, १७८ पृष्ठ

बहुतों को स्मरण हो सकता है कि एक बार खबर फैली थी कि असाम्प्रदायिक धार्मिक प्रवर श्रीयुक्त पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी घर-गृहस्थी छोड़-छाड़कर संन्यासी हो गये हैं। यह खबर बिलकुल निराधार नहीं है। गोस्वामीजी ने दार्जिलिंग के जङ्गल में षट्चक्र-भेदी किसी योगी का साधन देखकर और उसके पास बैठकर नर्मदा तीरस्थ उक्त षट्चक्र-भेदी योगी गुरुदेव के दर्शन करने के लिए अपने घर वालों और रिश्तेदारों से विदा माँग ली थी। घटनावश वहाँ पर न पहुँचकर वे गया जी में स्थित ब्रह्मयोनि पहाड़ पर पहुँचे और वहाँ के वैष्णव महन्त से साधन सीखना चाहा। इस समय उन्होंने विलास-वेश छोड़कर सन्यासी वेश धारण कर लिया और वहाँ के आश्रम के महन्त परमहंस से लगभग नौ महीने तक ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म्म की पद्धति को अनुष्ठान समेत सीखा था। इतना सब करके भी अपने साधन के धन को हृदय में न देखकर वे इतने व्याकुल हो गये थे कि एक निर्जन वन में, अचेत अवस्था में, कई दिन तक पड़े रहे थे। फिर स्पर्श के अनुभव से जागने पर उन्होंने अपने को एक

परमहंस की गोद में लेटा हुआ पाया। प्रकृतिस्थ होने पर वे उक्त परमहंस की गोद से उतरकर उन्हीं के चरणों में झुककर लोट गये और उन्होंने प्रार्थना की, "आप मुझे अपने आश्रम में ले चलिए और मुझे वह उपदेश दीजिए जिससे मैं अपने हृदय में साधन के धन को देख लूँ; मैं अब लौटकर घर-गृहस्थी में न जाऊँगा।" परमहंस जी ने कहा, "वत्स! शान्त होकर मेरी बातें सुनो। तुम्हारी स्त्री, बेटा-बेटी और अनाथ दास सब तुम्हारे ही आश्रय में हैं; तुम्हारा उन सबको छोड़ देना अनुचित होगा और तुम कुछ भी साधन न कर पाओगे।" सब तरह से अपरिचित बहुत दूर पर निर्जन पहाड़ में रहनेवाले परमहंस को क्योंकर मालूम हुआ कि गोस्वामी जी के बाल-बच्चे आदि हैं। इससे विस्मित होकर गोस्वामीजी उनके मुँह की ओर देखने लगे। इसके बाद एक और बात सुनने से गोस्वामी जी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। परमहंस जी ने मुसकुराकर कहा कि "चाम! तुम कई लोगों ने मिलकर एक मकान को उजाड़ डाला है; हमको तुम लोगों में ऐसा एक भी आदमी नहीं देख पड़ता जो उस घर के ऊपर फिर से छप्पर डाल दे। जिस तरह उसे उधेड़ डाला है उसी तरह उसको छाने की तदबीर करो, नहीं तो भगवान् के समीप अपराधी होगे।' परमहंसजी के गुप्त उपदेश का मर्मलब समझ कर उनके चरण पकड़ कर गोस्वामी जी कातर स्वर में बोले, "भगवान्, मुझ में वह साध्य तनिक भी नहीं है। साध्य को पाने के लिए ही मैं इतने दिनों से आश्रम में टहरा हुआ था और अब आपका अनुगामी होना चाहता हूँ।" परमहंसदेव ने कहा, "मैं तो मानस सरोवर में रहने वाला योगी हूँ, तुम्हारा निर्वेद मालूम होने पर सुदूर तिब्बत से यहाँ गया धाम में आया हूँ। अब कुछ डर नहीं है। मैं जो उपदेश देता हूँ उसके कार्य में परिणत होने पर नया छप्पर पड़ने से घर फिर ज्यों का त्यों हो जायगा।" अब उन्होंने ज्ञान, योग और भक्ति साधन का उपयुक्त सहज प्राणायाम सिखला दिया और कहा, "मैं आज से तुम्हारे साधन में सहायक होता हूँ। किसी देश में कोई किसी पद्धति का अवलम्बन करके साधन करें, मैं उनकी सहायता करता हूँ।" यों बहुत सी बातें हो चुकने पर गोस्वामी जी की समझ में आया कि ये साधारण परमहंस नहीं हैं। इनका जो शरीर देख पड़ता है वह भी चर्ममय देह नहीं है। परमहंस जी ने सूक्ष्म शरीर में आकर उन पर कृपा की है। अतएव, उनके शिक्षासाधन को स्वीकार करके वे कलकत्ते में अपने उन बाल-बच्चों के बीच लौट आये जो कि उनके लौट आने की प्रार्थना कर रहे थे। यहाँ आकर वे फिर काम-काज करने लगे।

हम लोगों ने देखा है कि विजयकृष्ण गोस्वामी जी जिस ढंग का प्राणायाम सिखाकर लोगों को साधन प्रदान करते हैं उसमें ज्ञानसाधन के साथ योग और भक्तिसाधन मिला हुआ है। अतएव उक्त साधन प्रणाली चैतन्यदेव की चलाई हुई साधन प्रणाली के बिलकुल अनुरूप और बहुत ही सहज तथा दुनियादार आदमियों के लिए उपयुक्त है। ब्रह्माण्डवेद में बतलाई हुई साधन प्रणाली को जो लोग दुर्बोध समझें वे गोस्वामीजी की प्रणाली का अवलम्बन करके साधन करें तो सहज में ही कृतकार्य हो सकेंगे। हम लोगों ने उक्त प्रणाली के अभ्यासी १४ आदमियों को कृतकार्य होते देखा है और गोस्वामी जी के उपदेशक परमहंसजी जो साधनार्थियों को सहायता दिया करते हैं इसको हमने न केवल निःसन्देह रूप से समझ ही लिया है बल्कि कभी-कभी देखा भी है।

अनेक स्थानों में ठाकुर को मन्त्र मिलना। अनेक प्रकार के साधन। परमहंसजी से दीक्षा मिलना। तैलंग स्वामी की बात।

ब्रह्माण्डवेद पढ़ चुकने पर मैंने ठाकुर से पूछा—आपकी दीक्षा आदि के सम्बन्ध में कङ्काल जो कुछ लिख गये हैं वह क्या ठीक है?

ठाकुर—बहुत कुछ वैसा ही तो है, हाँ, बीच-बीच में कुछ गड़बड़ भी है।

इसके बाद सतीश, श्रीधर और मैंने ठाकुर से बातों ही बातों में उनके मन्त्र पाने और साधन आदि के विषय में बहुत-सी बातें पूछीं। उनका ठाकुर ने जो उत्तर दिया उसे यथासाध्य लिखे रखता हूँ।

ठाकुर कहने लगे—बचपन में माताजी के साथ मुझे शिष्यों के घर जाना पड़ता था। हमारी कुलप्रथा के अनुसार उस समय माताजी ने ही मुझे मन्त्र दिया था। जनेऊ हो जाने पर मैं बड़ी निष्ठा के साथ सन्ध्या आह्निक करता था। कुछ समय के बाद 'टोल' में संस्कृत पढ़कर वेदान्त की आलोचना करने से मेरा अद्वैत मत हो गया। मैंने चटपट जनेऊ उतार डाला। इसका चारों ओर कोलाहल होने लगा। माजी आत्महत्या करने को तैयार हो गईं। क्या करूँ? माता की बात मानकर मैंने दुबारा जनेऊ पहन लिया। तब तक मैं ब्राह्मसमाज में नहीं गया था। उसके बाद ब्राह्मसमाज में प्रवेश करने पर मालूम पड़ा कि

जनेऊ जातिभेद का चिन्ह है, उसको पहने रहना बड़ा भारी अपराध है। मैंने फिर जनेऊ उतार डाला। माताजी को सूचित किया—यदि वे फिर मुझे जनेऊ पहनाने की जिद करेंगी तो मैं आत्महत्या कर डालूँगा। इससे फिर माताजी ने कुछ नहीं कहा। ब्राह्मसमाज में प्रवेश करके रीति के अनुसार उपासना आदि करने लगा। अनेक स्थानों में जा-जाकर मैंने ब्राह्मधर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। उस समय मुझे यह विश्वास था कि जो व्यक्ति मेरी वक्तृता सुन लेगा वह अवश्य ब्राह्मसमाजी हो जायगा।

मैं जब १३ नम्बर मिर्जापुर स्ट्रीट में रहता था तब एक दिन, गहरी रात के समय, बैठा उपासना कर रहा था; तनिक झपकी-सी लग गई। एकाएक दरवाजे मे किसी ने धक्का दिया। मैंने तुरन्त दरवाजा खोला तो देखा कि बिल्कुल महाप्रभु का दल मौजूद है; कमरे में तिल रखने की जगह न रही। बिजली की तरह उजेला हो गया। अद्वैत प्रभु ने मुझसे कहा—"मैं तुम्हारा पूर्वपुरुष अद्वैत आचार्य हूँ। ये नित्यानन्द प्रभु हैं, और ये हैं महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य। प्रणाम करो। ये तुम्हें मन्त्र देंगे, नहा आओ। मैंने तीनों प्रभुओं को नमस्कार किया और बैठने के लिए आसन दिया। फिर कुएँ में जाकर स्नान कर आया। महाप्रभु ने मुझको नाम (मन्त्र) दिया। मैं अचेत होकर गिर पड़ा। सवेरे जब सोकर उठा तब सारी घटना साफ याद आ गई। सोचा—शायद सपना देखा था। किन्तु कमरे में बिछे हुए आसन और कुएँ की जगत पर पड़ी हुई गीली धोती को देखने से सन्देह दूर हो गया। तब मैंने सोचा—मैं कैसा ब्राह्म हूँ, इसकी जाँच करने के लिए शुद्ध 'स्पिरिट' आई थीं। तब तो मैं जानता न था कि महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। इससे वह नाम भी गुप्त ही रहा। उससे मैंने काम नहीं लिया।

ब्राह्मधर्म की पद्धति से उपासना करते-करते मेरे भीतर अनेक प्रकार की अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं। अप्राकृत दर्शन और श्रवण आदि भी सब होने लगे, किन्तु कुछ भी स्थायी न होता था। होता था और चला जाता था, यह हालत थी। मुझे यह संशय हुआ कि सत्य वस्तु प्रकट होकर फिर चली क्यों जाती है। तब

में सत्य वस्तु की खोज में रवाना हुआ। बहुत भटका; कहाँ पर क्या है, इसका अनुभव करने के लिए कबीरपन्थी, दादूपन्थी, गोरखपन्थी, सुन्दरपन्थी, बाउल और दरवेश आदि सभी सम्प्रदायों के भीतर मैंने प्रवेश किया। एक-एक करके उनकी रीति के अनुसार साधन करके देख लिया कि किस सम्प्रदाय में कहाँ तक क्या है, किन्तु किसी तरह मेरी लालसा की तृप्ति नहीं हुई। मैं जिस वस्तु को चाहता था वह कहीं न मिली।

मैंने पूछा—आपने क्या बाउल-पन्थ में भी प्रवेश किया था? उनका साधन कैसा है?

ठाकुर—वह बेढब मामला है। मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। बाउल सम्प्रदाय में, अनेक स्थानों में बड़े निन्दित काम होते हैं। उनको मुँह से कहना ठीक नहीं। उन लोगों में अच्छे अच्छे लोग भी हैं। वे लोग चन्द्रमा के उपासक हैं। चन्द्रमा के वे चार रूप मानते हैं—(१) शुक्र (२) शनि (३) गरल, और (४) उन्माद इन चारों चन्द्रों की सिद्धि होते समझ लेते हैं कि सब कुछ हो गया। शरीर का मवाद, रक्त, विष्ठा, मूत्र किसी चीज़ को वे फेंकते नहीं, खा लेते हैं। एक दिन एक बाउल को खूनी आँव (मैला) खाते देखकर मैं बहुत बिगड़ा। यह सुनकर अखाड़े के महन्त ने धमकाकर मुझसे कहा, 'उन्माद चाँद, गरल चाँद की सिद्धि प्राप्त करने के लिए तुम्हें मल-मूत्र खाना-पीना पड़ेगा।' मैंने कहा, 'यह मुझसे न होगा। मल-मूत्र के खाने-पीने से प्राप्त होनेवाला धर्म मुझे न चाहिए।' महन्त बहुत ही क्रुद्ध होकर बोला, 'इतने दिन तक हमारे सम्प्रदाय के भीतर रहकर तुमने हमारा सारा भेद मालूम कर लिया और अब साधन करने से इन्कार करते हो। तुमको बतलाया हुआ साधन करना ही पड़ेगा!' मैंने कहा, 'मैं कभी करने का नहीं!' इस पर महन्त गालियाँ देता हुआ मुझे मारने को चला; चेले भी 'मारो मारो' कहते हुए झपटे। तब मैंने ज़ोर से धमकाकर कहा, 'अच्छा, तुम्हारी यह मजाल है कि मारोगे? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी हूँ, मुझसे मल-मूत्र खाने-पीने को कहते हो?' धमकी खाकर सब लोग चौंक पड़े। महन्त ने बहुत ही दुखी होकर मुझे नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभो! मुझे मालूम न था कि आप गोस्वामी सन्तान, अद्वैत प्रभु के वंशज हैं बड़ा अपराध

हो गया है, दया करके क्षमा कर दीजिये।' मैं उसी दम वहाँ से चलता हुआ। उन लोगों के साधन का लक्ष्य ऊर्द्धरेता होना ही है। थाउनों में वैसे लोग मौजूद भी हैं।

प्रश्न—ब्रह्मोपासना करने से ही जब धीरे धीरे आपकी सारी अवस्थाएँ प्रकट हो रही थीं तब फिर आपने गुरु की आवश्यकता किस लिए समझी ?

ठाकुर—प्रकट होने से क्या होगा ? स्थायी तो न होती थीं। एक दि मछुआ बाजार स्ट्रीट में मुझे एक महापुरुष के दर्शन हुए। उनको मैंने अपना खुलासा हाल सुनाया तो उन्होंने कहा, 'बहुतेरी अवस्थाएँ प्रकट हो सकती हैं किन्तु इससे होगा क्या ? ठहरती तो नहीं हैं। यथाशास्त्र गुरु से दीक्षा लिये बिन कोई भी अवस्था टिकने की नहीं—वे एक दिन अकस्मात् ब्राह्म समाज में आकर उपासना में सम्मिलित हो गये ; फिर जाते समय कह गये, 'घर तो खासा बन चुका है, किन्तु है अधर खूँटी के ऊपर, बिना दीवारों का—भला ठहरेगा किस तरह ! गुरु तो हैं ही नहीं, यह कभी ठहरने का नहीं।' मैंने उन महापुरुष से दीक्षा देने की प्रार्थना की थी। उन्होंने मेरी पीठ ठोककर आशीर्वाद दिया, 'बच्चा घबराओ मत। गुरु तुम्हारे मौजूद हैं, वक्त पर मिल जायँगे।' मैं चुपचाप बैठा न रह सका ; विन्ध्याचल, तिब्बत, हिमालय आदि बहुतेरे स्थानों और पहाड़ों में गुरु को ढूँढ़ता रहा। लेकिन गुरु कहीं न मिले। सभी महापुरुषों ने एक ही बात कही, 'गुरु तो तुम्हारे निश्चित हैं ; समय पर मिलेंगे।' अन्त में गया में आकाशगङ्गा पहाड़ पर रघुवर बाबाजी के आश्रम में जाकर मैं कुछ दिनों तक रहा। एक दिन उस पहाड़ के ऊपर एकान्त में एक जगह अकेला बैठा हुआ था ; यह सोचकर कि गुरु नहीं मिले, मैं निराशा के कष्ट से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। होश आने पर देखा कि मैं एक महापुरुष की गोद में सिर रक्खे हुए पड़ा हूँ। वे बड़े स्नेह से मेरे शरीर पर हाथ फेर रहे हैं। मैंने तुरन्त ही उठकर उनके चरणों में गिरकर प्रणाम किया और पूछा, 'आप कौन हैं ? यहाँ पर कब आये हैं ?' उन्होंने कहा—'मैं परमहंस हूँ, मानस सरोवर में रहता हूँ। तुम्हारी यह क्लेश की दशा देखकर तुमको दीक्षा देने के लिए अभी अभी आया हूँ।' मैंने पूछा, 'इतनी जल्दी आप मानससरोवर से यहाँ किस तरह आ गये ?' परमहंस ने कहा, 'योगी ऐसा कर

आकाशगङ्गा पहाड़ पर गोस्वामी प्रभु का दीक्षास्थान, गया-धाम १२०

सकते हैं। योगी लोग देह के पञ्चभूत को पञ्चभूत में मिलाकर सिर्फ चैतन्य के सहारे चाहे जहाँ जा सकते हैं, फिर इच्छा शक्ति द्वारा उन्हीं पञ्चभूतों को आकर्षित करके स्थूल देह धारण कर लेते हैं। योगियों में ऐसी सब सामर्थ्य है। हमारी यह जो स्थूल देह देख रहे हो यह भी इसी ढँग की है।' इस तरह बहुत सी बातें हो चुकने पर उन्होंने मुझे दीक्षा दे दी।

मैंने पूछा—दीक्षा ले चुकने पर आपने क्या किया?

ठाकुर—दीक्षा लेते ही मुझे बाह्यज्ञान नहीं रहा। चेत होने पर चारों ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखा कि परमहंस नहीं हैं। मुझे बेहद नशा चढ़ गया था। अच्छी तरह आँखें नहीं खोल सकता था। गिरता-पड़ता किसी प्रकार बाबाजी के आश्रम में पहाड़ पर से उतर आया। गुफा के पास बेल के पेड़ के नीचे बड़ी सी चट्टान पर बैठ गया। ग्यारह दिन और इतनी ही रातें एक ही अवस्था में बीत गईं। उस समय बाबाजी ने बड़ी लगन से मेरी देह की रक्षा की थी। वे मुझे बहुत चाहते थे।

प्रश्न—तैलङ्ग स्वामी ने भी तो आपको दीक्षा दी थी न?

ठाकुर—हाँ, उन्होंने भी मुझे मन्त्र दिया था। यह बहुत पहले की बात है। मैं एक बार काशी जाकर वहाँ महीने भर तक रहा था। केदारघाट के पास होमियोपैथ डाक्टर लोकनाथ बाबू के यहाँ मैं उतरा था। उन्होंने बड़ा आग्रह करके मुझसे अपने यहाँ ठहरने के लिए कहा। मैंने कहा, 'आप लोगों को बड़ी असुविधा होगी। मैं दिन-रात घूमता फिरता रहूँगा; जरूरत भर के लिए डेरे पर आऊँगा। क्या दिन को और क्या रात को, मैं एक निर्दिष्ट समय पर भोजन न कर सकूँगा। और मुझे एक अलग कमरे की जरूरत होगी; उसमें दूसरा आदमी न रहने पावेगा!' लोकनाथ बाबू ने मेरी कुल शर्तें मान लीं, वे अपने यहाँ ठहरने की ज़िद करते ही रहे। मुझे एक अलग कमरा दे दिया। मैं दिन-रात अपनी मर्ज़ी के माफ़िक़ घूमता रहता था; जरूरत के समय डेरे पर जाता था। मेरा अधिकांश समय तैलङ्ग स्वामी के यहाँ बीतता था। पहले-पहल कई दिन तक

उन्होंने मेरी बहुत परीक्षा की थी। बदन में कुत्ते का मैला, गन्दगी और कीचड़ वगैरह लपेटे रहते थे, पास जाने पर वही फेंकते थे। फिर जब देख लिया कि यह किसी तरह टलता ही नहीं है तब खूब आदर करने लगे, जाते ही पास बैठने को कहते। बहुत दिन चढ़ जाने पर इशारे से पूछते थे कि भूख तो नहीं लगी है; जो लोग वहाँ पर होते उनसे कुछ खाने को मँगा देते। एक आदमी से खाने को लाने का इशारा करते तो पाँच छः आदमी दौड़ पड़ते। अधिक परिमाण में खाद्य सामग्री आ जाती, अपने खाने भर को बचाकर बाकी स्वामीजी से खाने को कहता। वे भी मुझको इशारा करते कि मुँह में कौर देते जाओ। मैं उनके मुँह में कौर दे देता। वे सब खा सकते थे। शरीर खासा सबल, नीरोग पहलवान की तरह था। कभी-कभी वे केदारघाट पर जाकर गङ्गा में गोता लगाते और सीधे मणिकर्णिका में जाकर जल के ऊपर आते थे। मैं उस समय गङ्गा के किनारे किनारे दौड़ता जाता था।

एक दिन देखा कि वे एक काली मन्दिर में जाकर काली के सामने खड़े-खड़े पेशाब कर रहे हैं और उसी पेशाब को चुल्लू में भर-भरकर, 'गङ्गोदक, गङ्गोदक' कहकर काली के ऊपर छिड़क रहे हैं। मैंने पूछा, 'आप यह क्या कर रहे हैं?' उत्तर दिया, 'पूजा'। मैंने फिर पूछा, 'इस पूजा की दक्षिणा क्या है?' उत्तर दिया, 'यम का घर'। रात को अधिकतर मैं तैलङ्ग स्वामी के ही यहाँ रह जाता था। वे मुझे अनेक प्रकार का अद्भुत योगैश्वर्य दिखलाते थे। मैंने एक दिन कहा, 'आप मुझे इतना सब तो दिखलाते हैं, किन्तु मेरा विश्वास किसी तरह नहीं होता। दया करके आशीर्वाद दीजिये जिससे मैं विश्वास करने लगूँ।' उन्होंने मुझसे स्नान कर आने के लिए कहा। रात को एक बजा होगा, बेहद ठण्ड पड़ रही थी मैं टालमटोल करने लगा। उन्होंने तुरन्त गर्दन पकड़कर मुझे अधर में उठा लिया और गङ्गा में गप से डुबाकर निकाल लिया। फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देकर कहा, 'विश्वास बन जाय'। उस दिन से सत्य विषय में फिर मुझे संशय नहीं हुआ। बड़ा आश्चर्य है! मुझे उन्होंने मन्त्र देना चाहा। मैंने कहा, 'मैं आप से मन्त्र लूँ किस तरह? आप साकार के उपासक हैं, आपको १०० बिल्वपत्र और गङ्गाजल शिवजी के माथे पर चढ़ाते देखता हूँ, आप शिव की पूजा करते हैं, और मैं हूँ

निराकार ब्रह्म का उपासक। मैं आपको गुरु न बनाऊँगा।' उन्होंने सावलम्ब और निरवलम्ब उपासना के सम्बन्ध में बहुत उपदेश दिया। फिर कहा, 'जिस प्रकार नल राजा को साँपने डस लिया था उसी प्रकार मैं भी तुमको तनिक छुए देता हूँ। इसका गुप्त तात्पर्य है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ; तुम्हारे गुरु तो निर्दिष्ट हैं। समय आने पर वही तुमको दीक्षा देंगे।' बस, उन्होंने मेरे कान में तीन मन्त्र सुना दिये। एक राधा-कृष्ण की युगल उपासना की मन्त्र है। पहले माताजी ने भी मुझे यही मन्त्र दिया था। दूसरा सदा जपते रहने के लिए भगवान् का नाम था। और एक का जप तब करने के लिए कहा जब कोई संकट पड़े। परमहंसजी से दीक्षा मिल चुकने पर जब तैलङ्ग स्वामी से मेरी भेंट हुई तब, कोई बीस वर्ष पहले की घटना के सम्बन्ध में उन्होंने हथेली पर लिखकर पूछा, 'याद है'?

मैंने पूछा—तो क्या तैलङ्ग स्वामी मौनी थे?

ठाकुर—हाँ, बातचीत नहीं करते थे, इशारे से सब बतला देते थे, कभी-कभी लिख भी देते थे। रात को वे प्रायः मुझसे बातें करते थे। उस समय उन्होंने अजगर व्रत नहीं लिया था। अन्त में अजगर-व्रत लेकर सब कुछ छोड़ दिया था। किसी प्रकार का इङ्गित तक न करते थे। एक ही जगह बैठे रहते थे। शरीर बहुत स्थूल हो गया; वात ने घेर लिया। इसके ऊपर आफत यह हुई कि उनको सजीव महादेव समझकर लोग उनके सिर पर दूध और गङ्गाजल डालने लगे। रात के चार बजे से लेकर दोपहर के बारह बजे तक पूस-माघ की ठण्ड में भी यह जल डालना बन्द नहीं होता था। देह का धर्म तो चुप बैठने वाला नहीं—अन्त में घाव हो जाने से देह सड़-गल गई। एक ही तरह निर्विकार अवस्था में रहकर उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उन्हें गङ्गा मे जल-समाधि दी गई।

महादेव के सिर का कपड़ा। यह साधन वैदिक है।

अब की बार श्रीवृन्दावन में आकर ठाकुर के सिर के बाल कोई ६-७ इञ्च लम्बे देख रहा हूँ। मैंने ठाकुर के सिर पर कभी इतने लम्बे बाल नहीं देखे। यमुनास्नान करके वे प्रतिदिन सिर के बालों को एक ही ढंग से एक गेरुवे कपड़े की पट्टी से बाँध लेते हैं। सामने

के बालों को दोनों कनपटियों से लेकर तालू तक लपेटकर सिर के दोनों ओर वह पट्टी ले बढ़ते हैं ; फिर कानों के ऊपर की दोनों लटों को उसी पट्टी से अच्छी तरह कसकर पीछे की ओर के नीचेवाले बालों को एकत्र करके बाँध लेते हैं। तालू पर के जो बाल अलग रह जाते हैं वे अपने आप पीछे के बालों में जा लिपटते हैं। इससे ठाकुर के मस्तक पर कुल पाँच जटाएँ बन गई हैं।

गेरुवे कपड़े की पट्टी को बहुत ही फटा-पुराना देखकर मैंने कहा—इस गेरुवे कपड़े के टुकड़े को फेंककर एक नया गेरुवा कपड़ा लेने से नहीं बनेगा ?

ठाकुर—राम, राम ! यह न होगा। यह मामूली कपड़े का टुकड़ा नहीं है, यह महादेव के माथे का वस्त्र है। उन्होंने मेरे सिर में बाँध दिया है।

मैंने पूछा—कब, किस स्थान पर बाँध दिया था ?

ठाकुर—श्रीवृन्दावन में आते समय काशी में विश्वेश्वर के दर्शन करने गया था। वहाँ पर मन्दिर में मेरे सिर में यह कपड़ा लपेट दिया।

मैंने पूछा—तो क्या महादेव ही इस साधनमार्ग के प्रवर्त्तक हैं ?

ठाकुर—महादेव इस साधन के प्रवर्त्तक नहीं हैं; इस साधन को करके वे भी सिद्ध हुए हैं। वेद में इस साधन के विषय का उल्लेख है। इसका अवलम्बन करके बहुत से योगी और ऋषि सिद्ध हो गये थे। कुछ समय तक नियमानुसार यह साधन किया जा सके तो इसका लाभ मालूम होता है। वीर्य धारण के साथ साथ यह प्राणायाम और कुम्भक छः महीने तक करने पर अन्यान्य प्रकार के प्राणायामों का फल प्राप्त किया जा सकता है। श्वास प्रश्वास में नाम का जप कर सकने पर फिर और किसी चीज की आवश्यकता नहीं होती। उसमें प्राणायाम और कुम्भक आदि सब कुछ हो जाता है। अलग प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। इस मार्ग की तरह सीधा मार्ग दूसरा नहीं है। सिर्फ श्वास और प्रश्वास में नाम का जप करते रहने से ही सारी अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं, और कुछ भी नहीं करना पड़ता।

मैं—सुनता हूँ कि प्राणायाम की अनेक रीतियाँ हैं, हम लोगों के इस प्राणायाम का वर्णन क्या किसी शास्त्र में भी है ?

ठाकुर—शास्त्र में आठ प्रकार के प्राणायाम की रीति प्रकट रूप से है; क्योंकि पहले पहल सीखनेवालों को उसी की आवश्यकता रहती है। किसी-किसी तापनी में, उपनिषद् में हमारे इस प्राणायाम का बहुत ही संक्षेप में उल्लेखमात्र है। शास्त्र में यह सङ्केत है कि इसको सिद्ध-गुरुसे सीख ले। चिरकाल से ही यह सिद्ध महर्षियों के भीतर बहुत ही गुप्त रूप से चला आ रहा है। शास्त्र देखकर इसका अभ्यास करने से अकस्मात् मृत्यु तक हो सकती है। देखादेखी इस प्राणायाम के करने की चेष्टा करके बहुत लोग कठिनाई से आराम होनेवाले रोग के झमेले में पड़ गये हैं। इसलिए, और अन्य कारणों से भी यह सदा से ही बहुत गुप्त बना हुआ है। बहुत ही विश्वस्त पात्र देखकर ही सिद्ध महापुरुष लोग यह प्राणायाम सिखाया करते हैं। अन्यान्य कुम्भक, प्राणायाम आदि करने से जो-जो फल मिलते हैं वे सब फल इस प्राणायाम का ठीक विधि के अनुसार थोड़े समय तक अभ्यास करने से ही मिल जाते हैं।

मैं—हम लोगों की यह साधना तान्त्रिक है या वैदिक? किस-किस ऋषि ने पहले इस साधन को किया था?

ठाकुर—यह साधन आधुनिक नहीं है, यह तो बहुत पुराना वैदिक साधन है। पहले महादेव और दत्तात्रेय प्रभृति योगीश्वर इस साधन को करके सिद्ध हुए थे।

मैं—साधन करते समय जिन अनेक प्रकार की ज्योतियों, आकृतियों अथवा छायाओं के दर्शन होते हैं वह सब क्या है? उस समय क्या करना चाहिए?

ठाकुर—जिसका भी दर्शन हो उसी का खूब आदर करना चाहिए, अनादर भूलकर भी न करे। दर्शन होने पर उन सबकी खूब भक्ति करके सम्मान और पूजा करनी चाहिए।

मैं—साधन करते-करते जो अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं वे यदि किसी प्रकार के अपराध के कारण जाती रहें तो क्या फिर साधन करने से उन सब की प्राप्ति हो सकती है?

ठाकुर—हाँ, अवश्य। ठीक ठीक रीति के अनुसार साधन करने से वे फिर प्राप्त हो जाती हैं।

मैं—मेरा कौन सा विशिष्ट कल्याण करने के लिए मुझे श्रीवृन्दावन में बुलाया है?

ठाकुर—यह क्या सहज ही समझ में आ जाता है कि कौन सा विशिष्ट कल्याण हो गया? आगे सब समझ लोगे।

माताठाकुराणी की पतिपूजा। वराह का दाँत

सुना कि पिछले साल ठाकुर चार-पाँच महीने तक कलकत्ता में रहकर एक दिन अकस्मात् शान्तिपुर को चले गये। फिर किसी दिन माताठाकुराणी से झगड़ा करके चुपचाप श्रीवृन्दावन को रवाना हो गये। रास्ते में श्रीकाशीधाम में पहुँचकर कोई महीने भर से ऊपर तक ठहरे रहे। इसी समय मेरी अनुपस्थिति में कलकत्ता, शान्तिपुर और काशी में जो जो घटनाएँ हुई थीं उनमें से कुछ को श्रीयुक्त कुञ्जविहारी गुह ठाकुरता की डायरी से और श्रीधर, माताठाकुराणी तथा सतीश प्रभृति से निस्सन्दिग्ध रूप में जानकर लिखे लेता हूँ—

स० १८४६ के श्रावण में, कलकत्ता सुकिया स्ट्रीट का मकान नंबर ५०।१, ठाकुर के रहने के लिए किराये पर चार महीने के लिए लिया गया। वहाँ पर वे शिष्यों के साथ अपने परिवार सहित आकर रहने लगे। इस मकान में माताठाकुराणी प्रतिदिन एकान्त में ठाकुर के चरणों की पूजा करती थीं। दूब, चन्दन फूल, तुलसी आदि पूजा का सामान लेकर वे ठाकुर के आसनवाले कमरे में पहुँचतीं। भक्ति के साथ ठाकुर को प्रणाम करके उनके पास बैठ जातीं और बड़ी लगन से उनके चरणों पर तुलसी चन्दन आदि चढ़ा देतीं। फिर ठाकुर के मस्तक पर फूल, तुलसी चढ़ाकर उनके ललाट में चन्दन का तिलक लगा देतीं। इसके बाद ठाकुर के मुँह में थोड़ी सी मिठाई देकर साष्टाङ्ग प्रणाम करतीं। उस समय ठाकुर भी माताठाकुराणी के माथे में चन्दन की बिन्दी लगा देते और उनके सिर पर हाथ रखकर थोड़ी देर तक बिना हिले-डुले ध्यान लगाये रहते थे। यह पूजा करने से पहले माताठाकुराणी कभी पानी तक न पीती थीं। पूजा आरम्भ करने के पहले दिन नानी ने दरवाज़े की झरी से देखा कि माताठाकुराणी ठाकुर के आगे साष्टाङ्ग प्रणाम किये पड़ी हुई हैं। और ठाकुर अपने आसन पर बैठे हुए माताठाकुराणी के माथे पर दोनों पैर फैलाकर चुपचाप बैठे हुए हैं। दोनों में से किसी को बाहरी चेत नहीं है।

इसी मकान में उन्होंने अपनी जन्मतिथि श्रावण की पूर्णिमा को पहनने के कपड़े उतारकर करडोरा पहना, लँगोटी लगाई और अचला लपेट लिया। अर्थात् धोती पहनना छोड़ दिया। इसी समय से उनका अपने हाथ से चिट्ठी-पत्री लिखना बन्द हुआ। इसी मकान में अनेक स्थानों के बहुत से प्रतिष्ठित परिवारों और उच्च शिक्षित देशमान्य व्यक्तियों ने अलौकिक रीति से ठाकुर से दीक्षा ली।

इसी मकान में रहते समय एक दिन भावोन्मत्त श्रीधर सूर्योदय से प्रथम नहा धोकर वराहरूपी भगवान् के दर्शन पाकर गङ्गा के किनारे किनारे दौड़ने लगे। सबेरे से शाम तक भूखे रहकर काशीपुर और बराहनगर प्रभृति स्थानों में दौड़ते-दौड़ते सन्ध्या होने से पहले उन्होंने देखा कि नदी किनारे किसी पशु की हड्डी पड़ी हुई है। श्रीधर उसे तुरन्त उठाकर दम साधे हुए दौड़ते-दौड़ते ठाकुर के पास आये। पसीने से तरबतर हो रहे श्रीधर ने ठाकुर के पास आकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और वह हड्डी उनके सामने रखकर कहा कि यह अपना दाँत लीजिए। उसे हाथ में लेकर ठाकुर भाव के आवेश में मग्न हो गये।

देह में अनाहत ध्वनि

इस मकान में माताठाकुराणी ठाकुर के पास बैठी हुई प्रायः रात भर उनको हवा किया करती थीं। कभी-कभी वे उनके पैर दाबते-दाबते भाव में मग्न होकर ठाकुर के पैरों तले पड़ी रहती थीं। एक दिन माताठाकुराणी ने बातों ही बातों में वृन्दावन बाबू से कहा कि रात को समय-समय पर गोस्वामीजी के शरीर से एक प्रकार की मधुर ध्वनि निकलती है। वह इतनी मीठी रहती है कि सुनते-सुनते वे लट्टू हो जाती हैं। यह सुनकर उस ध्वनि को सुनने के लिए वृन्दावन बाबू की बड़ी इच्छा हुई। अवसर देखकर वे ठाकुर के आसनवाले कमरे में अधिक रात होने पर आये। उस समय ठाकुर ध्यान लगाये हुए थे। ठाकुर के पैर छूकर प्रणाम करके वृन्दावन बाबू कान लगाकर आहट लेने लगे। थोड़ी ही देर में ठाकुर ने सिर उठाकर कहा—क्या है वृन्दावन? वृन्दावन बाबू ने कहा—महाराज! सुना था कि आपकी देह से एक प्रकार का शब्द निकलता है, उसी के सुनने को आया हूँ। ठाकुर ने पूछा—अच्छा, तो सुन लिया न? वृन्दावन बाबू ने कहा—वह ध्वनि सुनने से मुझे

बड़ा अचम्भा हुआ। जान पड़ता है कि ऐसी मधुर मनोहर ध्वनि संसार में नहीं है। यह काहे की ध्वनि है?

ठाकुर—इसे अनाहत ध्वनि कहते हैं। यह शब्द साधकों के शरीर से निकलता है। यह इतना मधुर है कि साँप सुन ले तो एकदम साधक की देह पर चढ़ जाय।

इसी समय पूर्वी बङ्गाल के एक विशिष्ट भले आदमी ठाकुर से दीक्षा लेने की प्रार्थना की सूचना देकर कलकत्ता में आने के लिए उतावले हो उठे। इस पर ठाकुर ने कहा—"वे कलकत्ता में आ सकते हैं, किन्तु हमारे यहाँ उनकी कुछ आवश्यकता नहीं है।" कोई-कोई गुरुभाई उक्त भलेमानस के अनेक सद्गुणों की चर्चा करके उनकी दीक्षा लेने की आकांक्षा ठाकुर पर प्रकट करने लगे। ठाकुर ने तनिक मुसकुराकर उन लोगों से कहा—जिन लोगों को साधन मिलना है उन्हें अवश्य मिलेगा। इस श्रेणी का यदि कोई मेरे पास न भी आवे तो मैं उसके पास जाकर दीक्षा दे आऊँगा। वह यदि थॉंम लेकर मुझे खदेड़े तो मार खाकर भी मैं उसे दीक्षा दूँगा।

सूक्ष्म शरीर और परलोक के सम्बन्ध में श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर की बात

ठाकुर ने बातों ही-बातों में पूछा—मर जाने पर मनुष्य कहाँ जाता है ? महर्षि ने कहा—'जो ग्रह नक्षत्र आदि देख पड़ते हैं उन्हीं में जाता है।' परलोक के सम्बन्ध में इसी ढँग की बहुत सी बातचीत करके ठाकुर महर्षि को प्रणाम करके शाम होने पर डेरे पर लौट आये।

जातिभेद के सम्बन्ध में ठाकुर का उपदेश

हमारे गुरुभ्राता श्रीयुक्त राखालचन्द्र राय बरीसाल में जाकर वहाँ के गुरुभाइयों मे प्रचार करने लगे कि जब तक जाति भेद बुद्धि हम लोगों की बनी रहेगी तब तक हममें से किसी की इस साधना से तनिक भी उन्नति न होगी, ठाकुर ने यही कहा है ; इस बात पर बरीसाल के गुरुभाइयों के बीच अनेक प्रकार की चर्चा होने लगी। इस मामले को साफ करने के लिए श्रीयुक्त शिवचन्द्र गुह ने कुञ्जबाबू को पत्र लिखा ; ठाकुर को जब उन्होंने यह पत्र सुनाया तब उसी दम ठाकुर ने कुञ्ज बाबू के द्वारा नीचे लिखी चिट्ठी शिव बाबू के पास भिजवा दी :—

चिट्ठी की नक़ल—

२६ सितम्बर, १८८६ ;
५०।१ सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ता।

परम पूजनीय
श्रीयुक्त शिवचन्द्र गुह
श्रीचरण कमलेषु,

आजकल बरीसाल में जाति-भेद के सम्बन्ध में जो गड़बड़ हुआ है उसके सम्बन्ध में परम पूजनीय श्रीयुक्तेश्वर गोस्वामीजी से पूछने पर वे उसी दम अपने सामने मुझसे जो कुछ कह रहे हैं वही लिखता हूँ :— "सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण हैं, ये तीनों ही वास्तव में जाति हैं। इन तीनों का परित्याग किये बिना जाति से पीछा नहीं छूट सकता। सौ बात की बात यह है कि अभिमान ही जाति है। इस अभिमान को छोड़े बिना जाति नहीं छूट सकती। चाहे जिसके हाथ का बना भोजन कर लेने से ही जातिभेद दूर नहीं होता। चाहे जिसके हाथ का खा लेना कुछ जातिभेद मेटने का उपाय नहीं है। अभिमान को

छोड़ो, समदर्शी बनो, जातिभेद अपने आप मिट जायगा। जिनका जो सम्प्रदाय है वे उसी सम्प्रदाय की आचार-पद्धति का बर्ताव करें। अवस्था प्राप्त हुए बिना, सिर्फ देखा देखी कुछ भी काम न करें। साधन के उद्देश से जीवन गठित होने पर जैसा जीवन होगा वही बाहर प्रकट होगा। भीतर और बाहर एक सा होना ही वास्तविक जीवन है। अतएव विपक्ष में न चलकर साधन के पक्ष में आगे बढ़ो। इति—

सेवकाधम

श्रीकुञ्जबिहारी गुह

श्रीयुक्त कुञ्जबिहारी गुह ने लिखा है—'ठाकुर सुकिया स्ट्रीट' पर जिस घर में रहते थे उसमें एक दिन दोपहर को वहाँ के सब गुरुभाइयों और विलायत से लौटे हुए श्रीयुक्त द्विजदास दत्त आदि को भोजन करने के लिए न्यौता दिया गया। हम सब लोग नीचे वाले कमरे के बरामदे में एक साथ भोजन करने को बैठे। इसी बीच जाति भेद की चर्चा छिड़ी, ठाकुर ने कहा—गुरु के यहाँ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने में कुछ दोष नहीं है। हम यदि तुम लोगों के देश में जावें तो तुम लोग ऐसा न करना। सभी को सामाजिक नियम मानकर चलना चाहिये।'

ठाकुर का स्टार-थियेटर देखना

एक दिन 'स्टार थियेटर' के श्रीयुक्त गिरिशचन्द्र घोष ने 'चैतन्यलीला' देखने का ठाकुर को, शिष्यों समेत निमन्त्रण दिया। दिन डूब जाने पर ठाकुर ठीक समय पर सभी को साथ लेकर नाट्यशाला में पहुँचे। थियेटर के मालिक श्रीयुक्त अमृतलाल बसु ने बड़ी आव-भगत करके उन लोगों को रङ्गमञ्च के सामने बैठाया। अभिनय देखते देखते ठाकुर भाव की उमङ्ग में मग्न हो गये।

केशव कुरु करुणा दीने कुञ्ज काननचारी।
माधव-मन मोहन, मोहन-मुरलीधारी।
हरि बोलो, हरि बोलो, हरि बोलो, मन आमार।

व्रजकिशोर कालियहर कातर भयभञ्जन ;
नयन बाँका बाँका शिखिपाखा,
राधिका-हृदि-रञ्जन,
गोवर्द्धन-धारण, वन-कुसुम-भूषण,
दामोदर कंसदर्पहारी,
श्याम रास-रस-विहारी
हरिबोलो, हरिबोलो, हरिबोलो, मन आमार ।

यह गीत आरम्भ होते ही ठाकुर भाव को न रोक सकने पर एकदम कूद पड़े। 'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन' कहते-कहते वे उद्दण्ड नृत्य करने लगे। तब भाव में मस्त गुरु भाइयों को भी सुध बुध न रही। वे लोग बारबार हरिध्वनि करके ठाकुर के चारों ओर नृत्य करने लगे। 'गोलमाल हो रहा है, गड़बड़ मचा हुआ है ; रुक जाओ, रुक जाओ' इत्यादि शब्द भी स्थान स्थान पर होने लगे। इसी समय अमृतलाल वसु रङ्गमञ्च पर आकर, आज हमारा नाटक करना सार्थक हुआ, आज हम कृतकृत्य हुए—इसी प्रकार की बातें बारंबार कहने लगे। फिर ताली बजाते हुए 'हरि बोलो हरि बोलो' कहकर अभिनेत्रियों को उत्साह देने लगे। तुरन्त ही फिर गीत गाया जाने लगा।

चन्द्रकिरण अङ्गे, नम वामनरूपधारी।
गोपीगण-मनोमोहन, मञ्जु कुञ्जचारी॥
जय राधे, श्रीराधे।

व्रजबालकसङ्ग, मदन-मानभङ्ग,
उन्मादिनी व्रजकामिनी, उन्माद तरङ्ग।
दैत्यछलन, नारायण, सुरगण-भयहारी,
व्रजविहारी गोपनारी मान-भिखारी।
जय राधे, श्रीराधे॥

इस पर भाव की उमङ्ग से परिपूर्ण नृत्य और गीत देखने-सुनने से दर्शकों का चित्त भी अभिभूत हो गया। बात की बात में नाट्यमन्दिर में बड़ा शोर-गुल मच गया। स्वामीजी हरिमोहन भाव के आवेश में ऊपर को हाथ उठाकर नृत्य करने लगे। भक्तप्रवर श्रीधर पल भर तक ठाकुर की ओर टकटकी लगाये हुए देखते-रहकर काँपते हुए बेहोश हो गये। फिर होश आने पर ज़ोर ज़ोर से हरि बोलो कहते कहते और अनेक प्रकार का नृत्य करते-करते उन्होंने सब लोगों को मतवाला कर दिया। ठाकुर हाथ उठाकर जो मधुर हरि ध्वनि कर रहे थे उसकी झङ्कार ने सभी के हृदय को कँपा दिया। नाटक का अभिनय रोका जाकर इस प्रकार देर तक कीर्त्तन का उत्सव हुआ। इसके बाद सब लोग हँसी खुशी से अपने-अपने घर गये।

वेश्या द्वारा समाज का परिणाम

कलकत्ते की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री वेश्या थी। उसकी एकलौती बेटी बेथून-स्कूल में पढ़ती थी। ब्राह्मसमाज के एक व्यक्ति के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव हुआ। यह सुनकर ठाकुर ने कहा—

वेश्या की बेटी को समाज में ले लेना कदापि ठीक नहीं है। इससे समाज कलुषित होता है। यद्यपि पहले खूब भली और सच्चरित्रा देख पड़ती है, किन्तु समय पाकर भीतर का बीज अंकुरित हो जाने पर सब कुछ प्रकट हो जाता है।

कुञ्जविहारी गुह उसी दम, रात के दो बजे, ठाकुर के समीप दौड़े गये। श्रीश की बात और उनकी हालत का समाचार सुनकर ठाकुर ने कहा—उनके पास जाकर कहो कि डरने को कोई बात नहीं है। बीमारी हट जायगी। घबरावें नहीं।

कई दिन के बाद श्रीश की बीमारी हट गई। तब एक दिन ठाकुर गङ्गास्नान करके लौटते समय श्रीश को देखने उनके डेरे पर गये। वहाँ पर कुञ्ज बाबू को ज्वर में पड़े देखकर पूछा—इस समय तुम्हारा इलाज कौन करता है? कुञ्ज बाबू ने एक नामी चिकित्सक का नाम बतला दिया।

ठाकुर ने कहा—तुम्हारे रोग को डाक्टर नहीं हटा सकते। वह तो अपने आप ही हटेगा। देखा नहीं कि श्रीश की बीमारी को कोई नहीं हटा सका?

कुञ्ज बाबू—आप तो कहते हैं कि औषधि का सेवन करने से भी बहुत सा कर्म-भोग कट जाता है।

ठाकुर—हाँ, यह ठीक है।

श्रीचरण चक्रवर्तीजी ने कहा—मेरा अविश्वास तो किसी तरह दूर नहीं होता—क्या करूँ?

ठाकुर—जिन लोगों को साधन प्राप्त हो गया है उनके हृदय को कुछ-न-कुछ विश्वास की वस्तु मिल गई है। अविश्वास के समय पर उसका स्मरण करने और उसको पकड़े रहने से विशेष लाभ होता है।

और भी कहा—अविश्वास अथवा प्रलोभन के समय पर यदि ५।६ बार भी नाम-स्मरण कर लिया जाय तो भी बचाव हो सकता है। किन्तु कैसा दुर्भाग्य है कि कोई यह भी नहीं कर पाता।

पीड़ित कुञ्ज बाबू ने कहा—मैं तो नाम-स्मरण नहीं कर पाता।

ठाकुर ने कहा—नाम-स्मरण करने की इच्छा हो तो यही बहुत है।

बातों ही बातों मे ठाकुर ने और भी कहा—हमारा जो योग है वह नाम का योग है। गम्भीरनाथ बाबा से हमने श्वास-प्रश्वास में नाम का जप करने की बात सुनी थी। बीस वर्ष के बाद उनकी बात का मतलब समझा। माँझी, मल्लाह और साधारण आदमियो के मुँह से कितनी ही बार सुना है—

मन पगला रे हरदम गुरुजी का नाम लो।
दम दम पर लेना रे नाम बन्द न होने दो॥

एक व्यक्ति ने पूछा—हरिदास ठाकुर दिन भर में नाम का तीन लाख जप किस प्रकार कर लेते थे?

ठाकुर—एक लाख का जोर-जोर से करते थे, एक लाख का मन ही मन करते थे और एक लाख का जप उनकी आत्मा में अपने आप होता था।

कुञ्ज बाबू ने लिखा है, इस मकान में रहते समय रुपये-पैसे की बड़ी तङ्गी थी। बिस्तर न होने से माताठाकुराणी एक फटी सी चटाई (मादुर) पर हाथ का ही तकिया लगाकर सो रहती थीं। ठाकुर के पास उपयोग के लिए सस्ते दामों का सिर्फ एक देशी कम्बल था। सोते समय वे पुस्तक के ऊपर एक अचला बिछाकर उसी पर सिर रख लेते थे। कुञ्ज बाबू एक दिन ठाकुर के उपयोग करने के लिए एक तकिया बनवा लाये। इस पर वृन्दावन बाबू ने ठाकुर के सामने ही कुञ्ज बाबू का उपहास करके कहा—"उन्होंने तो संन्यास ले लिया है, तुम उनके लिए तकिया ले आये हो? अच्छा, एक तोशक और एक छतरी क्यों नहीं ले आये?" कुञ्ज बाबू दुखी मन से चुपचाप सोचने लगे—यह बात हो जाने पर शायद ठाकुर इस तकिये का उपयोग न करें। किन्तु कुञ्ज बाबू का हार्दिक आग्रह समझकर दयालु ठाकुर सोते समय प्रतिदिन ही उससे काम लेते थे।

मकान चार महीने के लिए किराये पर लिया गया था। जब देखा कि निर्दिष्ट समय बीतने पर है तब ठाकुर ने सभी से कम किराये का मकान ढूँढ़ने के लिए कहा। पता लगाकर गुरुभाइयों ने आकर कहा कि कम किराये का मकान तो मिलता ही नहीं। तब ठाकुर ने कहा—एक खपरैल कमरा मिल जाय तो वही बहुत है। मणि बाबू किराये का मकान ढूँढ़ने को तैयार हुए।

श्रीयुक्त पशुपतिनाथ मुखोपाध्यायजी से सहायता पाकर बाजार का देना ८०) रुपया चुकाया गया। माताठाकुराणी तुरन्त ही नानी और चुनू को लेकर योगजीवन और कुञ्जबाबू के साथ शान्तिपुर को रवाना हो गईं। वहाँ पहुँचकर देखा कि ठाकुर की माता को उत्कट उन्माद ने बेहद पागल कर रक्खा है। ठाकुर को देखने पर वे समय-समय पर बहुत-कुछ ठण्डी रहती हैं।

ठाकुर की माता का बेहद पागलपन कुछ कम हो जाने पर भी वे समय-समय पर सोने के कमरे में पाखाना-पेशाब कर दिया करतीं और उसे दीवारों पर तथा तमाम फर्श पर छिड़क देती थीं। सबेरे पहर माताठाकुराणी उसे धो पोंछकर साफ करती थीं। नानी इसे बिलकुल न देख सकती थीं। इसके लिए वे अक्सर ठाकुर की माता से झगड़ा कर बैठती थीं। एक दिन बड़े तड़के इस अनाचार और ज्यादती के लिए दोनों समधिनों में बेढब झगड़ा हो गया। तब ठाकुर ने दो मंज़िले पर अपने रहने के कमरे में माताठाकुराणी को ले जाना चाहा। वे कहने लगे कि माताठाकुराणी की सेवा शुश्रूषा, पाखाना-पेशाब को साफ करना आदि सब काम अपने हाथ से करेंगे। इस पर माताठाकुराणी ने यह आपत्ति करना आरम्भ किया कि नाहक इस आपदा को क्यों अपने सिर लाद लिया है। नानी भी इसमें शामिल होकर बुरी तरह गोलमाल करने लगीं। इसी समय एकाएक ठाकुर ने आसन से उठकर माताठाकुराणी से कहा—हम इसी वक्त काशी को जाते हैं, किराये के लिए आठ रुपये दो।

काशी जाने के लिए एकाएक ठाकुर को उद्यत देखकर माताठाकुराणी चौंक पड़ीं और ठाकुर का इरादा बदलने के लिए रुपये देने में टालमटोल करके बोलीं—'तो फिर हमें भी साथ लेते चलो।' अब ठाकुर ने भयकर उग्र मूर्ति धारण की। माताठाकुराणी को धमकाकर वे 'पोर्टमेंट' पर बार बार अपना दण्ड पटकने लगे। माताठाकुराणी ने चटपट बाक्स की चाबी ठाकुर के आगे फेककर कहा—'बाक्स को मत तोड़ो—यह चाबी लो।' ठाकुर ने बाक्स खोला और गिनकर आठ रुपये ले लिये। फिर माताठाकुराणी के पास चाबी फेककर तुरन्त ही अकेले राणाघाट की ओर रवाना हो गये। वहाँ जाने के लिए नदी-पार होते समय ठाकुर ने मल्लाह को एक रुपया देकर कहा—थोड़ी ही देर में यहाँ पर एक बाबाजी हमको ढूँढ़ने आवेंगे, उन्हें यह रुपया देकर कहना, हम काशी जा रहे हैं—वे काशी पहुँचकर हमसे भेंट करें।

ठाकुर जब घर से रवाना हुए तब श्रीधर किसी काम से बाहर गये हुए थे। घर आकर श्रीधर ने ज्यों ही ठाकुर के काशी चले जाने की बात सुनी त्यों ही वे उसी हालत में पागल की तरह राणाघाट की ओर दौड़ पड़े। नदी-किनारे जाकर पार पहुँचने के लिए घाट पर जाते ही मल्लाह ने श्रीधर को देखते ही कहा—थोड़ी देर हुई कि एक साधु यहाँ से स्टेशन को गये हैं। वे काशी जायँगे। मुझे एक रुपया देकर कह गये हैं कि अभी अभी एक बाबाजी यहाँ पर हमको ढूँढ़ने आवेंगे, उन्हें यह रुपया देकर कहना कि हम काशी जा रहे हैं; वे भी काशी पहुँचकर हमसे भेंट करें।

श्रीधर ने मल्लाह से कहा—'हाँ, वे मेरे गुरु हैं, मैं उन्हीं को ढूँढ़ने आया हूँ।' मल्लाह ने श्रीधर को उसी दम रुपया दे दिया। अब श्रीधर नदी-पार जाकर फुर्ती से राणाघाट स्टेशन पर पहुँचे। देखा कि स्टेशन पर एक ट्रेन खड़ी हुई है जिसमें यात्री भरे हुए हैं। इधर-उधर ढूँढ़ते ढूँढ़ते उन्होंने ठाकुर को गाड़ी के भीतर देख पाया। ठाकुर ने भी श्रीधर पर नज़र पड़ते ही पुकार कर कहा—श्रीधर, हम काशी जा रहे हैं। तुम कलकत्ते जाकर कुञ्ज के डेरे में ठहरो। वहाँ पर रेल किराये के लिए रुपयों का प्रबन्ध करके काशी आ जाना, हम से भेंट हो जायगी घबराना मत।

देखते-देखते गाड़ी खुल गई। श्रीधर भी कलकत्ते जाकर कुञ्ज बाबू के डेरे पर उतरे। वहाँ पर रेल-किराये के लिए रुपयों का प्रबन्ध करके दूसरे ही दिन काशी को रवाना हो गये। कई दिन के बाद माताठाकुराणी, नानी और योगजीवन प्रभृति को लेकर, कलकत्ते में श्रीयुक्त उमेशचन्द्र दत्त के डेरे में आई। वहाँ पर कुछ समय तक रहकर और कुञ्ज बाबू तथा श्रीयुक्त विधुभूषण मजूमदार प्रभृति के साथ भेंट करके काशी जाने की व्यवस्था की। इसी समय एक दिन विष्णु बाबू ने बेङ्गल फोटोग्राफर को बुला लाकर माताठाकुराणी का फ़ोटो उतरवा लिया। इस फ़ोटो को बहुतेरे गुरु भाई बड़े आग्रह के साथ लेने लगे। योगजीवन और देवेन्द्र चक्रवर्ती प्रभृति गुरुभाइयों के साथ माताठाकुराणी बिना विलम्ब किये काशी को चली गईं।

काशीधाम में ठाकुर का ठहरना

ठाकुर श्री काशीधाम में पहुँचकर पहले काकिनिया महाराज के छत्र में ठहरे। वहाँ पर

कई दिन तक रहकर अगस्त्य कुण्ड मुहल्ले के समीप मानिकतला की माताजी के किराये के मकान में चले आये। इसी समय माताठाकुराणी भी योगजीवन तथा अन्य कई गुरुभाइयों के साथ इसी डेरे में आकर ठहरीं। घर में १०।१२ आदमी हो गये। आहारत्यागी माताजी एक चुल्लू भर पानी तक नहीं पीती थीं, फिर भी अच्छी हालत में प्रफुल्ल मन से प्रति दिन परोसना आदि सेवा का सब काम करने लगीं। ठाकुर काशी में महीने भर से अधिक ठहरे। उनकी उस समय की अद्भुत घटनावली को लिखने में बहुत सी झञ्झटें देखकर मैंने वह विचार छोड़ दिया। कई एक साधारण घटनाओं का थोड़ा सा उल्लेख किये जाता हूँ।

ठाकुर को सन्यासी-वेश में देखकर शहर के अँगरेजी शिक्षित वकील और अध्यापक आदि बङ्गाली बाबू लोग अनेक प्रकार से उपहास करने लगे। एक दिन श्री कृष्णानन्द स्वामी और नामी-गिरामी श्रीनाथ राय प्रभृति व्यक्तियों ने धर्म सभा के अधिवेशन में ठाकुर को बुलवाया। ठीक समय पर जब ठाकुर सभा में पहुँचे तब सब ने आव-भगत करके उन्हें सन्यासियों के आगे बैठाया। सभास्थान बहुत से गण्य मान्य लोगों से भर गया। अधिवेशन का कार्य समाप्त होने पर संकीर्तन की तैयारी होने लगी। तबीयत अच्छी न रहने के कारण ठाकुर ने डेरे पर लौट जाना चाहा; किन्तु सभा के अधिकारियों के विशेष रूप से अनुरोध करने पर उन्होंने सकीर्तन स्थान में उपस्थित रहना स्वीकार कर लिया। थोड़ी देर में ही कीर्तन आरम्भ हो गया। कुछ देर तक ठाकुर चुपचाप बैठे रहे। फिर जोर से हरि बोलो, हरि बोलो कहकर नृत्य करने लगे। देखते-देखते सकीर्तन में महाभाव की बाढ़ आ गई। उसमें सभी दर्शक गोते खाने लगे। शीघ्र ही ठाकुर की समाधि लग गई। कृष्णानन्द स्वामी और सभा में स्थित अन्यान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आकर ठाकुर के चरणों की रज अपने माथे से लगाने लगे। तब विरोधी भाव के बङ्गाली बाबू लोग भी ठाकुर को प्रणाम करके उनकी अलौकिक शक्ति की प्रशंसा करते हुए चले गये। समाधि खुलने पर ठाकुर डेरे पर लौट गये।

विश्वेश्वर की आरती के दर्शन

ठाकुर एक दिन शाम होने पर कुछ देर में विश्वेश्वर की आरती के दर्शन करने मन्दिर में गये। बड़ी भीड़-भाड़ होने से मन्दिर के भीतर न जाने पाकर मण्डप में एक ओर बैठ गये। रात को लगभग आठ बजे आरती होना आरम्भ हुआ। ठाकुर दूर से ही हाथ जोड़े हुए खड़े-खड़े

आरती के दर्शन करने लगे। उनका शरीर जल्दी जल्दी काँपने लगा। फिर ज़ोर से बम भोला, बम भोला, कहकर वे नृत्य करने लगे। अब चारों ओर से सभी लोग आनन्द सूचक ध्वनि करने लगे। आरती के दर्शन न करके सब लोग उल्लसित भाव से ठाकुर की ओर देखने लगे। ठाकुर नृत्य करते-करते विश्वेश्वर की ओर आगे बढ़ते-बढ़ते दरवाज़े तक पहुँच गये और फिर पीछे की ओर हटने लगे। तब पण्डों ने आग्रह के साथ ऐसा प्रबन्ध कर दिया जिसमें ठाकुर बेलगके नृत्य कर सकें। बम भोला, बम भोला के शब्दसे सब को मुग्ध करके ठाकुर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। श्रीधर और स्वामीजी प्रभृति ने भी मतवाले होकर जयध्वनि करके ठाकुर के दोनों ओर नृत्य आरम्भ कर दिया। सेवक लोग बड़े उत्साह के साथ ऊँचे स्वर से स्तोत्र पढ़ते हुए आरती करने लगे। दर्शन करते-करते ठाकुर भाव के आवेश में आकर अचेत हो गये। ठाकुर के दर्शन करने और उन्हें छूने को बड़ी भीड़ जमा हो गई। बहुत रात होने पर ठाकुर डेरे पर आये।

और एक दिन की बात है कि विश्वेश्वर की आरती देखने को ठाकुर मन्दिर के भीतर गये। वहाँ एक कोने में खड़े होकर आरती के दर्शन करने लगे। विश्वेश्वर के दर्शन करते-करते ठाकुर भाव के आवेश में अधीर हो पड़े; वे फफक-फफक कर बच्चे की तरह रोने लगे। तब अद्भुत ढँग से ठाकुर की आँखों से आँसुओं की धारा निकल कर वेग से विश्वनाथ के सामने गिरने लगी। यह अद्भुत लीला देखकर पण्डा, पुजारी और दर्शकवृन्द आश्चर्य के साथ ठाकुर की ओर देखते रह गये। निर्दिष्ट समय बीत जाने पर भी उन्होंने आनन्द और उत्साह के आवेग में आध घण्टे से भी अधिक समय तक आरती की।

इसके बाद प्रति दिन ठाकुर के दर्शन करने को लोगों की टोलियाँ आने लगीं। बङ्गाली टोले के रहने वाले नित्य आकर ख़बर ले जाते थे कि ठाकुर किस दिन किस समय पर विश्वेश्वर के दर्शन करने जायँगे।

उससे कुछ न कहकर ठाकुर एक पेड़ के नीचे आँखें मूँदकर बैठ गये। दो ही एक मिनिट में स्वामीजी हँसते हुए आनन्द है, आनन्द है कहते कहते ठाकुर के सामने आ गये। स्वामी जी को साष्टाङ्ग प्रणाम करने का उद्योग करते ही उन्होंने ठाकुर को छाती से लगा लिया। दोनों को ही परस्पर आलिङ्गन करने से बाहरी ज्ञान न रहा। चुपचाप एक ही तरह पर बहुत समय बीत गया। इसके बाद दो एक बातें करके ठाकुर डेरे पर लौट आये।

ठाकुर के मुँह से श्रीयुक्त द्वारकानाथजी पाल की चर्चा कई बार सुनी है। ठाकुर ने कहा है, "ये एक प्रवीण दार्शनिक पण्डित थे, सर्वस्व छोड़-छाड़कर दीन-हीन कंगाल की तरह काशी में एक ओर, दुर्गाकुण्ड तरफ एक बगीचे में रहते हैं। भीड़ भाड़ से कहीं भजन में विघ्न न हो, इस लिए वे अपने कुटीर के दरवाज़े में बाहर की ओर से ताला लगा लेते हैं, फिर छोटे से जङ्गले की राह वे भीतर चले जाते हैं। वहाँ पहुँचकर उसे भी बन्द कर लेते हैं और एकान्त में दिन भर एक ही आसन से ध्यान लगाये बैठे रहते हैं। उनके दर्शन करने के लिए ठाकुर उनके आश्रम पर गये। कुटीर का दरवाजा बन्द देखकर वे दीवार पर अपना नाम और ठिकाना लिख आये। अगले दिन दुबले-पतले बूढ़े पाल महाशय, ठाकुर से भेंट करने के लिए अगस्त्यकुण्ड मुहल्ले में आये। जब तक ठाकुर काशी में रहे तब तक पाल महाशय अक्सर आया करते थे। उनके आने से ठाकुर के डेरे में शिक्षित लोग बहुत ज्यादह आने लगे। समस्त दर्शन शास्त्र में उनका अगाध पाण्डित्य देखकर तथा उनकी की हुई सनातन धर्म के सूक्ष्म तत्त्व की आलोचना सुनकर उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को आश्चर्य हुआ। उनको पक्का विश्वास है कि शास्त्रों में रत्ती भर भी भूल नहीं है। विशुद्धानन्द स्वामी, पूर्णानन्द स्वामी प्रभृति सन्यासियों और परमहंसों से भेंट करके, काशी का कार्य हो जाने पर, ठाकुर फैज़ाबाद को रवाना हुए।

परमहंसजी का आह्वान

अवसर पाकर मैंने ठाकुर से पूछा—माताठाकुराणी के साथ झगड़ा हो जाने से ही क्या आप शान्तिपुर से चल खड़े हुए थे?

ठाकुर—हम अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करते। परमहंसजी के बुलाने से ही आये हैं। झगड़े के समय उन्होंने कहा, 'तुम इसी समय काशी चले जाओ।

यदि काशी में हम से भेट न हो तो अयोध्या जाना। वहाँ पर भी भेट न हो तो श्रीवृन्दावन को जाना। वहाँ पर हम से भेट हो जायगी।' झगड़े के समय पर ज्यों ही परमहंसजी की आज्ञा हुई त्यों ही हम रवाना हो गये।

एक दिन ठाकुर टट्टी फिरने गये हुए थे; एक धूमधाम का सङ्कीर्तन कुञ्ज के पासवाले रास्ते से निकला। उसकी ध्वनि सुनते ही ठाकुर हरिबोलो, हरिबोलो कहते हुए फुर्ती से टट्टी से बाहर निकल आये। देर तक सङ्कीर्तन के साथ-साथ आनन्द करके कुञ्ज में आये। तब अकस्मात् ठाकुर को याद आई कि आबदस्त तो लिया ही नहीं।

इसी प्रकार एक दिन भोजन कर रहे थे कि मृदङ्ग और मँजीरों की ध्वनि सुनकर चटपट बिना ही हाथ धोये दौड़कर बाहर निकल पड़े। सकीर्तन के उत्सव में आनन्द करके तीसरे पहर डेरे पर आये। तब हाथ धोकर कुल्ला आदि किया।

मैं नहीं जानता कि गुरु के इशारे (बुलाने) के सिवा ऐसा विचारशून्य अद्भुत आवेग ठाकुर को और क्योंकर हो सकता है।

सोई हुई गुरुशक्ति में गुरुभाई के संस्पर्श से स्फूर्ति आना

यदि कोई किसी सिद्ध महात्मा या महापुरुष से दीक्षा लेकर इष्टमन्त्र को भूल जाय, गुरु को भी बिलकुल भूल जाय, तो गुरुभाई से किसी प्रकार का थोड़ा सा सङ्ग हो जाने से भी उसके भीतर सोई हुई गुरुशक्ति की एक क्रिया होने लगती है, यह बात मैंने ठाकुर के मुँह से एक क़िस्सा सुनकर समझी है। ठाकुर ने क़िस्सा इस प्रकार सुनाया—

गया में एक खुशहाल आदमी ने बचपन में किसी सिद्ध महात्मा से दीक्षा ली थी। फिर रुपये-पैसे और धन-दौलत के फेर में पड़कर वे साधन-भजन, इष्टनाम और गुरु तक को भूल गये, धीरे-धीरे वे ख़ासे दुनियादार हो गये। एक दिन एक उदासी साधु ने उनके दरवाज़े पर आकर कहा, 'हम भूखे हैं, हमको कुछ भोजन दीजिए।' मकान के नौकर ने मुट्ठी भर चावल लाकर साधु से कहा, 'यह ले लो और चले जाओ।' साधु ने कहा, 'मैं दाना नहीं माँगता, मुझको थोड़ा सा भोजन दो।' साधु की बात सुनकर मालिक ने नौकर को धमकाकर कहा, 'यह क्या गोलमाल हो रहा है? ख़ासा झमेला है! उसे धक्का देकर निकाल न दे।

अब क्या था, नौकर उस साधु को धक्के पर धक्के मारने लगा। धक्के खाकर साधु वहीं बैठ गया और कहने लगा, 'हम बहुत भूखे हैं, जरा भोजन तो दीजिए।' साधु का हठ देखकर मकान-मालिक आग-बबूला हो गया; 'ठहरो बदमाश, भोजन देते हैं' कहकर उसने साधु को जा पकड़ा और घूँसे, चाँटे तथा लातें मारते-मारते उसे पटक दिया। 'अहा गुरुजी' कहकर साधु चिल्ला उठा। इसी समय मालूम नहीं कि मकान-मालिक को क्या हो गया कि वह लातें मारते मारते एकाएक रुक गया और थर थर काँपते हुए गिरकर उसने साधु को पकड़ लिया। अब वह बार बार साधु के चरणों में गिरकर रोता हुआ कहने लगा, 'अरे तुम कौन हो, अरे तुम कौन हो?' उसकी देह पर हाथ फेरते फेरते साधु ने कहा, 'अरे हम तेरे गुरुभाई हैं, तेरे गुरुभाई हैं।' यह कहकर साधु उठा और दौड़ता हुआ एक ओर चला गया। उस खुशहाल आदमी ने बहुत पता लगवाया किन्तु फिर साधु के दर्शन न हुए। यह घटना होने के बाद से उस आदमी के स्वभाव में अद्भुत परिवर्तन हो गया। वह साधन-भजन करने लगा और थोड़े ही दिनों में खासा सदाचारी, निष्ठावान् भजनानन्दी हो गया।

नन्दोत्सव। दर्शन के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

आज जन्माष्टमी है। सारा वृन्दावन आज बड़े आनन्द उत्सव में मतवाला हो रहा है, ठाकुर के साथ हम लोग शृङ्गारवट को चले। श्रीयुक्त राखाल बाबू, प्रबोध बाबू, दत्तबाबू और अभय बाबू भी हम लोगों के साथ हो लिये। शृङ्गारवट की अँगनाई में भीड़ ही भीड़ देखी। हाँडियों में दही ला लाकर और उसमें बहुत सी हलदी मिलाकर उसे ब्रजवासी और वैष्णव बाबा लोग ऊपर की ओर तथा चारों तरफ़ फेंकने लगे। सभी लोग आपस में एक दूसरे की देह में बड़े आनन्द से दही लगाकर परम उत्साह से नृत्य करने लगे। नन्दोत्सव के महासङ्कीर्तन का आरम्भ हो गया। क्रम से कीर्तन खासा जम गया। वैरागी से बाबा लोग नृत्य करते-करते अँगनाई में फिसल फिसलकर धमाधम गिरने लगे। सारे बदन में हल्दी मिला हुआ दही लपेटकर श्रीधर, ब्रजवासियों के साथ, मस्त हो गये। वे समय-समय पर ऊपर की ओर हाथ उठाकर और

भाद्रपद कृ० ८
शुक्रवार

आकाश की ओर दृष्टि करके 'जय निताई, जय निताई' कहते हुए गिर पड़ने लगे। भाव के आवेश में आकर ठाकुर बच्चे की तरह सङ्कीर्तन के स्थान में दौड़ने लगे। फिर नीचे गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करने के पश्चात् बेहोश हो गये। कोई तीन घण्टे तक ठाकुर की समाधि लगी रही। हम लोग तीसरे पहर यमुना-स्नान करके कुञ्ज में वापस आये। कीर्तन-स्थान में नित्यानन्द और अद्वैत प्रभु के अनेक प्रकार के नृत्य करने का ब्योरा ठाकुर को सुनाकर आनन्द करने लगे।

श्रीधर चले गये। अब मैंने ठाकुर से पूछा—जन्माष्टमी का उपवास करने की व्यवस्था भिन्न भिन्न प्रकार की है। कभी-कभी शाक्तों के साथ वैष्णवों की राय (मत) नहीं मिलती, मैं किस मत की रीति से उपवास करूँगा?

ठाकुर—जिसके यहाँ वंशपरम्परा से व्रत-नियम आदि का जो नियम चलता आया है वह उनको उसी नियम के अनुसार करे।

मैंने कहा—हम लोगों का लक्ष्य क्या है? हम लोगों के सामने भगवान् किस रूप में प्रकट होंगे?

ठाकुर—हमारे इस साधन का लक्ष्य कोई विशेष देवता नहीं है। एकमात्र भगवान् ही लक्ष्य हैं। यह होने पर भी जिसका जैसा भाव होता है, जो कुल देवता होता है, उसे उसी भाव में, उसी रूप में भगवान् पहले पहल दर्शन दिया करते हैं।

मैंने पूछा—हम लोगों में से जो लोग ब्राह्मसमाजी थे वे किसी देवी देवता का न तो चिन्तन ही करते हैं और न उनको मानते ही हैं, उनके आगे भगवान् किस भाव में प्रकट होंगे?

ठाकुर—हमने कुछ घटनाएँ ऐसी देखी हैं, किसी-किसी अच्छे ब्राह्मसमाजी ने बहुत दिना तक उपासना आदि करके हमसे आकर कहा है, 'महाशय', अमुक देवता का भाव और रूप क्यों मन में आ जाता है? कभी तो उनका चिन्तन नहीं करते, कल्पना तक नहीं करते, फिर भी ऐसा क्यों होता है? हमने उनकी बातों का पता लगाकर देखा है कि जिनका जो कुलदेवता है उसी देवता का रूप और भाव उन लोगों के मन में आ जाता है। पितृपितामह आदि वंश के पूर्व

पुरुषों से जो भाव रक्त-मांस के साथ हम लोगों के भीतर भिदे हुए हैं वे क्या सहज में हटते हैं ? ब्रह्मोपासक होने से क्या होगा ? ब्रह्म जब प्रकट होंगे तब वे किसी रूप और किसी भाव में ही तो प्रकट होंगे। अनेक स्थानों पर देखा गया है कि जिनके वंश का जो देवता हैं उसी के रूप में ब्रह्म पहले उसके आगे प्रकट हुए हैं, फिर उससे अन्यान्य देव देवी और चाहे जो कुछ धीरे धीरे प्रकट होता रहता है।

मैं—मुझे जान पड़ता है कि ब्राह्मसमाज के पल्ले पड़ जाने से मेरी बेहद हानि हुई है; मुझमें सरल विश्वास नहीं है। सभी बातों में सन्देह बना रहता है, सब टूट-टाटकर एकाकार हो गया है। वहाँ पर मैं गया ही किस लिए ?

ठाकुर—जिन्होंने सरल विश्वास को तोड़ दिया है वही तो अब फिर उसको गढ़ रहे हैं। उसकी चिन्ता तुम किस लिए करते हो ? अब जो कुछ होगा वह ठीक ही होगा, वह टूटने फूटने का नहीं। ब्राह्मसमाज में जाने से रत्ती भर भी हानि नहीं हुई है, बहुत कुछ लाभ ही हुआ है। उक्त समाज में जाने से ही नीति और चरित्र आदि की रक्षा हुई है। और पहली अवस्था में ब्रह्मज्ञान हो होने की आवश्यकता है। ब्रह्मज्ञान हुए बिना किसी प्रकार ठीक तत्त्व जानने का अधिकार नहीं होता। इसीसे ऋषि लोग प्रथम अवस्था में ब्रह्मज्ञान ही सिखाते थे। ब्रह्म के सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप, पवित्र स्वरूप, मङ्गलमय, निर्विकार, निराकार इत्यादि भावों का ध्यान करते-करते जब क्रम से उसके भीतर होकर अलौकिक रूप को अद्भुत छटा प्रकट होने लगती है तभी वह धीरे धीरे समझ में आता है, पकड़ में आता है।

मैंने फिर पूछा—हम लोगों के यहाँ सभी लोग तो ब्राह्मसमाज के भीतर होकर आये नहीं है, जिन लोगोंने हिन्दू समाज मे रहकर इस साधन को प्राप्त किया है क्या उन्हें यह सब तत्त्वबोध नहीं होता ?

ठाकुर—होगा क्यों नहीं ? हाँ, कुछ कठिनाई पड़ती है। पहली अवस्था में जो लोग ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं उन्हें फिर तत्त्वों को ग्रहण करने में अधिक कठिनाई नहीं होती। वे लोग बड़ी सरलता से ग्रहण कर सकते हैं। और ब्रह्मज्ञान हुए बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। अतएव पहली अवस्था में ही ब्रह्मज्ञान

का हो जाना अच्छा है, ऐसा हो जाने से सभी मार्ग सरल हो जाता है। यही करना चाहिए जिससे ब्रह्मज्ञान हो जाय, यही करो।

थोड़ी देर तक चुप रहकर ठाकुर फिर अपने आप कहने लगे—अवश्य ही ब्राह्मसमाज में जाने से बहुतों की बहुत हानि भी हुई है। ब्राह्मसमाज में जितना भला है उसे तो सभी लोग सहज में ग्रहण नहीं कर सकते; साधारण मनुष्य ऐसे ही विषयों में लग जाते हैं जिनमें हानि होती है; अविश्वास, सन्देह आदि वृथा संस्कारों की बदौलत किसी-किसी को बड़ी यन्त्रणा हो रही है; ये संस्कार सहज में पीछा नहीं छोड़ते; उनका सुधार होना बहुत ही कठिन काम है।

ये बातें बहुत देर तक होती रहीं; ठाकुर की आज्ञा के अनुसार महोत्सव की पूरी-कचौरी, और मिठाई आदि का, प्रसाद मैंने भरपेट खाया। ठाकुर के पास बैठकर नाम का जप करते-करते देखा—बार-बार एक बहुत ही चमकीली स्निग्ध काली ज्योति झिलमिलाकर प्रकट होने और अन्तर्धान होने लगी। कुछ देर तक मैं उस ज्योति के सौन्दर्य पर मुग्ध बना रहा। भोजन करने के थोड़ी देर बाद ही मैं प्राणायाम करने लगा, किन्तु माताठाकुराणी ने रोक दिया।

ठाकुर—पेट जब बिलकुल खाली हो या खूब भरा हुआ हो तब प्राणायाम नहीं करना चाहिए। भोजन करने पर कम से कम तीन घण्टे के बाद करना चाहिए।

अभय बाबू पर कृपा

गोस्वामीजी और कठिया बाबा की पहले पहल भेंट

आज श्रीयुक्त अभयनारायण राय से बातचीत करने पर उनकी जीवन की एक सुन्दर घटना का हाल सुनने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ। अभय बाबू से मेरा नया परिचय नहीं है, पहले भी फैजाबाद में दादा के डेरे पर इनसे मेरी भेंट हुई थी। उस समय उन्हें धर्म का कोई भी वेश धारण करते नहीं देखा। इस दफे श्रीवृन्दावन में अभय बाबू को सन्यासी के वेश में देख रहा हूँ। उन्हीं के मुँह से सुना—कुछ समय पहले एक दिन उन्होंने मन की जलन के मारे पागल से होकर आत्महत्या करने का

श्रीश्रीरामदास काठिया बाबाजी महाराज

(काष्ठ कौपीन पहने हुए)

विचार किया ; यमुना में डूब मरने का निश्चय करके वे यमुना किनारे पहुँचे। उसी समय, श्रीवृन्दावन के चौरासी कोस के महन्त सिद्ध महापुरुष श्रीरामदास कठिया बाबा, अभय बाबू के इरादे को जानकर, अकस्मात् उनके पास आ खड़े हुए। अज्ञात महापुरुष ने अपने आप स्नेह के साथ समझा-बुझाकर भरोसा देते हुए कहा, 'हम तुम्हें दीक्षा देते हैं, सारी अशान्ति चली जायगी। तुम अपना इरादा बदल दो।' यह कहकर सिद्ध महात्मा ने अभय बाबू को दीक्षा दे दी। तब मन्त्रशक्ति के प्रभाव से अभय बाबू एक तरह से बाहरी ज्ञान से शून्य होकर उन्मत्त की तरह कूद पड़े, और सामने एक पेड़ की डाल पकड़कर, ज्ञानशून्य दशा में ही, उसमें झूलने लगे। इसके बाद कठिया बाबा धीरे-धीरे उन्हें शान्त करके चले गये। अभय बाबू ने कहा, 'इस बार श्रीवृन्दावन को आने के पहले मैं कुछ दिनों तक गया में आकाशगंगा पहाड़ पर ठहरा था। एक दिन स्वप्न में देखा कि कठिया बाबा मुझसे कह रहे हैं, 'चलो, तुमको एक असली महात्मा के दर्शन करावेंगे।' अब वे मुझे साथ लेकर दाऊजी के मन्दिर में गोस्वामी प्रभु के पास आ खड़े हुए। वे दाऊजी के जगमोहन में बैठे हुए थे ; बहुत से ब्रजवासी, साधु और ब्राह्मण आदि को गोस्वामी जी के पास खड़ा देखा। गोस्वामी प्रभु ने दया करके मुझे उँगली का इशारा करके दाऊजी महाराज के दर्शन कराये और आज्ञा दी कि 'भक्तमाल का पाठ और एकादशी का निराहार मत किया करो।' न तो मैंने यह मन्दिर देखा था और न मैं गोस्वामी प्रभु को ही जानता-पहचानता था। स्वप्न देखने के कुछ दिनों बाद घटनाक्रम से मैं श्रीवृन्दावन को रवाना हुआ और दाऊजी के मन्दिर में आया। यहाँ पर गोस्वामीजी को देखते ही मैंने पहचान लिया कि ये तो वही महापुरुष हैं जिनके दर्शन स्वप्न में हुए थे। मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। मैं गोस्वामीजी के आश्रम में ही रहने लगा। एक दिन सुना कि श्रीवृन्दावन में कठिया बाबा पधारे हैं। मैं तुरन्त ही उनके दर्शन करने पहुँचा। मुझ पर नज़र पड़ते ही उन्होंने कहा, 'देखो स्वप्न तो सच्चा हो गया न ? उन्हीं का नाम साधु है। वही सच्चे साधु हैं। चलो, हम भी दर्शन करने के लिए तुम्हारे साथ जायँगे।' अब कठिया बाबाजी मेरे साथ गोस्वामीजी के यहाँ आये। वे परस्पर दण्डवत् प्रणाम आदि करके अपने अपने आसन पर बैठ गये और बिलकुल अपरिचित व्यक्ति की तरह बातचीत आदि करने लगे। यह देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। उस दिन गोस्वामीजी ने बड़े आदर से कठिया बाबा को भोजन कराया। अगले दिन गोस्वामीजी

मेरे साथ कठिया बाबा के पास, उनके दर्शन करने, गये। दोनों महात्मा एक ही स्थान में बहुत देर तक ध्यानमग्न दशा में बैठे रहे; एक बात तक न की। इस प्रकार क्रम से तीन-चार दिन उन दोनों महात्माओं का परस्पर सत्सङ्ग हुआ; किन्तु बिलकुल चुपचाप रहे, एक बात तक नहीं हुई। तब एक दिन मैंने गोस्वामीजी से पूछा, 'आप लोग तो कुछ बातचीत ही नहीं करते।' गोस्वामीजी ने कहा, 'मुँह से कुछ कहे बिना भी महापुरुष लोग सारी बातें अन्तर में भीतर पहुँचा देते हैं, भीतर ही भीतर बातचीत हो जाती है।' एक दिन गोस्वामीजी कठिया बाबा को प्रणाम करके उनके बगल में बैठ गये। दोनों ही अपने-अपने भाव में वाक्यहीन और निविष्ट अवस्था में थे, अकस्मात् कठिया बाबा ने गोस्वामीजी के घुटने छूकर नम्रतापूर्वक कहा, 'बाबा! मैं आपका बच्चा हूँ।' तुरन्त ही गोस्वामीजी ने कठिया बाबा को दोनों हाथों से पकड़कर छाती से चिपका लिया।

कठिया बाबा मुद्दत से प्रतिदिन दिन के अधिक समय में सेवाकुञ्ज के दरवाजे पर आसन लगाये हुए बैठे रहते हैं। इसका मतलब पूछने पर उन्होंने कहा था कि इसी स्थान पर उन्हें पहले पहल अप्राकृत लीला के दर्शन हुए थे। इसी से प्रतिदिन यहीं पर बैठकर वे अब तक नित्यलीला के दर्शन किया करते हैं।

गोस्वामीजी की कृपा

बातों ही बातों में अभय बाबू ने कहा, एक दिन मथुरा के सरकारी डाक्टर श्री मनोमोहन दास एक तश्तरी भर बड़े-बड़े लड्डू लेकर इस कुञ्ज में आये। गोस्वामी जी से भेंट न होने पर उनके खाने को वे दामोदर पुजारी को लड्डू देकर चले गये। दामोदर ने उनमें से थोड़े से लड्डू तो यहाँ रख दिये और बाकी अपने घर भेज दिये। अगले दिन सवेरे दामोदर ने आकर गोस्वामीजी से कहा—"बाबा, मनोमोहन बाबू ने छः लड्डू दिये थे; आपके लिए दो बचा लिये हैं, दाऊजी महाराज को दो चढ़ा दिये, अभय बाबू को एक और श्रीधर बाबू को एक दे दिया है।" यह बात मैंने थोड़े फासले से सुनी। फिर, दामोदर पर बहुत ही नाराज होकर मैंने गोस्वामीजी से कहा—'जो मनी आर्डर आता है उस पर तो आप सिर्फ दस्तखत कर देते हैं; रुपया-पैसा सब दामोदर ले जाता है, और आपके भोजन करने को चाहे जो देकर कह देता है। कल भी इसने कुल लड्डू अपने घर भेज दिये हैं, यह

भला कैसा बर्ताव है?' गोस्वामीजी ने खूब हँसकर प्रफुल्ल मुख से मेरी ओर देखकर कहा, 'अहा! अच्छा ही तो किया है। छोटे-छोटे लड़के-बच्चे हैं, खी है, वे लोग खायँगे। अच्छा ही हुआ है।' यह सुनकर मैं अपनी क्षुद्रता का अनुभव करके झेंप गया। थोड़ी देर में गोस्वामीजी ने कहा—"हमारे गुरुजी की आज्ञा है, एक साल तक हमें इसी आसन पर रहना होगा, इसमें कितना ही क्लेश और कष्ट क्यों न हो। हमको मालूम है कि आप लोगों को भोजन इत्यादि का कष्ट हो रहा है। सो अपने पास से कुछ खर्च करके बाजार से भोज्यवस्तु मोल लाकर खा लिया कीजिए। और रूखा-सूखा खाना भी अच्छा है, इससे इन्द्रिय-संयम होता है।

महात्मा गौर शिरोमणि

भाद्रपद कृ० ६

आज भोजन करने के बाद गौर शिरोमणिजी की चर्चा छिड़ी। सुना कि एक दिन श्रीधर शिरोमणिजी के दर्शन करने उनके कुञ्ज में गये तो देखा कि वे सोये हुए हैं, अतएव उसी दशा में उनके दर्शन करके चरणों की ओर, तनिक फ़ासले से ही, उनको नमस्कार किया। यद्यपि शिरोमणिजी निद्रित थे तो भी उनके दोनों चरण उसी दम घूम गये। श्रीधर ने दुबारा उनके चरणों की ओर जाकर नमस्कार किया; उठकर देखा कि शिरोमणिजी के दोनों चरण फिर दूसरी ओर को हो गये हैं। श्रीधर ने फिर चरणों की ओर, चार-पाँच हाथ के फ़ासले पर रहकर, साष्टाङ्ग होकर प्रणाम किया, इस बार भी उन्होंने उठकर देखा कि दोनों चरण उस स्थान पर नहीं हैं; निद्रित अवस्था में ही शिरोमणिजी के चरण हट गये हैं। तीनों बार यह घटना देखकर वे विस्मित होकर चले आये। शिरोमणिजी के पैरों पर गिरकर नमस्कार करने की शक्ति किसी को नहीं है, दूर से भी उनकी जानकारी में कोई उन्हें पहले नमस्कार नहीं कर सकता। बिना सोचे-विचारे वे सभी को साष्टाङ्ग होकर प्रणाम करते हैं। उनके साथ रास्ता चलना बड़ा कठिन काम है। वे रास्ते के दोनों ओर बिल्ली, बन्दर, गाय-बैल, स्त्री, पुरुष और ठाकुरजी की प्रतिमा आदि सभको एक ही रीति से साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए चलते हैं। श्रीवृन्दावन की क्या तो स्त्रियाँ और क्या पुरुष सभी शिरोमणिजी को सिद्ध महापुरुष समझकर श्रद्धा-भक्ति करते हैं।

ठाकुर ने कहा—"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना

मानेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥" इस श्लोक का ठीक-ठीक उदाहरण देखना हो तो जाकर शिरोमणिजी को देखो ; वर्तमान समय में इस ढंग का दूसरा उदाहरण नहीं देख पड़ता।

शिरोमणिजी की पूर्वकालीन घटना ठाकुर बतलाने लगे—शिरोमणिजी देश में एक नामी पण्डित थे ; छहों दर्शन, स्मृति और पुराण आदि में उनका खूब नाम था। एक दिन देश में वे एक ब्राह्मण के घर श्रीमद्भागवत सुनने गये। उस सभा में बहुतेरे नामी गिरामी ब्राह्मण पण्डित उपस्थित थे। भागवत की कथा आरम्भ करने के पहले भक्त पाठक ब्राह्मण ने गौर-वन्दना पढ़ना आरम्भ किया। सभी जगह यही नियम है, किन्तु शिरोमणिजी गौर-वन्दना को सुनते ही आग-बबूला हो गये। पाठक ब्राह्मण को आवाज़ देकर कहा, "यह क्या है महाशय, यह क्या भागवत का पाठ हो रहा है ? आप भागवत सुनाने को बैठे हुए हैं, सामने भागवत की पोथी खुली रक्खी है, उसकी ओर देखकर आप गौरचन्द्रिका क्यों पढ़ रहे हैं ? ब्राह्मण-पण्डितों के बीच में बैठकर, सामने शालग्राम को रखकर, भागवत सुनाने के लिए इन मिथ्या वचनों की आवृत्ति किस लिए ? भागवत में यह सब कहाँ लिखा हुआ है ?" भक्त ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर शिरोमणिजी से कहा, "प्रभो ! मैं भागवत का ही पाठ करता हूँ। यह सब कुछ भागवत में मौजूद है। मैं असत्य बात नहीं कह रहा हूँ।" तब शिरोमणिजी आसन से कूद पड़े, पाठकजी के पास जाकर बोले—'महाशय, तनिक दिखला तो दीजिए कि भागवत में 'अनर्पितचरीं' कहाँ है।' पाठक ने चटपट प्रत्येक दो पंक्तियों के बीच में खाली स्थान दिखलाकर कहा, 'इस सफ़ेद जगह में दृष्टि जमाकर देखिए।' शिरोमणिजी ने कहा, 'कहाँ है ? यह तो सफ़ेद जगह देख पड़ती है।' पाठक ने कहा 'आप में देखने की शक्ति तो है ही नहीं, देखिएगा किस-तरह ? आँखों को तनिक साफ़ कर लीजिए, फिर देख पड़ेगा।' शिरोमणिजी ने बहुत ही खफ़ा होकर कहा, 'सामने शालग्राम शिला रखकर, भागवत को छूकर, इतने ब्राह्मणों के सामने आप सहज ही झूठ बात कह रहे हैं।' तब ब्राह्मण ने बड़े तेज के साथ कहा, "आप वैसी बात न कहें, चुप हो जायँ। इस ब्राह्मण-सभा में शालग्राम को साक्षी करके,

भागवत को छूकर, मैं ठीक ही कहता हूँ कि भागवत की प्रत्येक दो पंक्तियों के बीच में 'गौर-वन्दना' लिखी हुई है, मैं उसे देख रहा हूँ। आप किसी सिद्ध वैष्णव महात्मा से दीक्षा ले आइए, फिर मैं जिन नियमों को बताऊँगा उनके अनुसार एक सप्ताह तक बर्त्ताव कीजिए, आठवें दिन यहाँ पर आइएगा, उस समय पर यदि मैं भागवत की खाली जगहों में गौरचन्द्रिका साफ-साफ न दिखा सकूँ तो अपनी जीभ काट डालूँगा, सब के आगे मैं यह सौगन्ध खाता हूँ।" शिरोमणिजी बड़े तेजस्वी पुरुष थे, उन्होंने उसी समय जाकर सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी से दीक्षा ले ली, फिर पाठक महाराज के पास आकर उनकी नियम-प्रणाली ग्रहण की। सात दिन तक उसी प्रणाली के अनुसार चलकर पाठक पण्डित के पास आकर कहा, 'महाशय, अब तो आप वह गौर-वन्दना आदि भागवत में दिखाइएगा न ?' पाठक ब्राह्मण ने चटपट भागवत की पोथी खोलकर कहा, 'अच्छा, अब आकर देख लीजिए।' तब गौर शिरोमणिजी ने भागवत के श्लोक की प्रत्येक दो पंक्तियों के बीच की जगह में ज्यों ही देखा त्यों ही उन्हें देख पड़ा कि चमकीले सुनहरे अक्षरों में गौर-वन्दना साफ-साफ लिखी हुई है। अब तो वे नीचे गिरकर लोटने लगे; रोते-रोते बेचैन हो गये। तुरन्त ही सब छोड़-छाड़कर श्रीवृन्दावन को रवाना हो गये। तभी से ये श्रीवृन्दावन-वास कर रहे हैं। इस अवस्था का मनुष्य श्रीवृन्दावन में दूसरा नहीं है। ये ही सचमुच वैष्णव हैं।

मछली खाने से अनिष्ट

अशुद्ध देह का हेतु और परिणाम तथा शुद्धि का उपाय

गौर शिरोमणिजी की बातें करते-करते ठाकुर वैष्णवों के आचार की प्रशंसा करने लगे। तब मौका पाकर मैंने पूछा—योग-साधन करने में मांस-मछली खाने से क्या कुछ हानि होती है ?

ठाकुर—कुछ क्या ? बहुत हानि होती है।

मैंने फिर कहा—यही सुना है कि मांस खाने से हानि होती है; तो क्या मछली खाने से भी हानि होती है ?

ठाकुर—मछली खाने से भी हानि होती है। हाँ, जो लोग पहले पहल योग का अभ्यास करते हैं उनकी उतनी हानि नहीं होती ; थोड़ी सी उन्नति होते ही वे लोग बखूबी समझ सकते हैं कि मछली खाने से कितनी हानि होती है। मछली खाने से सूक्ष्म-शरीर में आवाजाही करने में बड़ा क्लेश होता है। इसलिए बहुतों को उस समय मछली खाना छोड़ना पड़ता है। हमने मुसलमान फ़कीरों और बौद्ध योगियों में भी देखा है कि जो लोग मुद्दत से मांस-मछली खाते रहे हैं उन्हें भी, योग का आरम्भ करने पर, कुछ उन्नति करते ही वह सब छोड़ देना पड़ा है।

मैं—सूक्ष्म शरीर में आना-जाना तो बहुत ऊपर की बात जान पड़ती है। मांस-मछली खाने से क्या और भी कुछ अनिष्ट होता है ?

ठाकुर—आहार के साथ मन का बहुत ही समीप का सम्बन्ध है ; आहार सात्त्विक होता है तो मन भी सात्त्विक हो जाता है। राजसिक और तामसिक आहार करने से मन भी वैसा ही हो जाता है। माँस-मछली रजस्तमोगुणी आहार है, इन खान-पान की बातों में सदा बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

पिता-माता आदि बड़े-बूढ़ों पर भक्ति क्यों नहीं होती ? क्या करने से भक्ति होगी ?—किसी के यह पूछने पर ठाकुर ने कहा—पिछले जन्म में शरीर अशुद्ध रह जाता है तो पिता, माता और अन्यान्य गुरुजनों पर अभक्ति और घृणा होती है। उनके प्यार करने पर भी अश्रद्धा होती है। और तो क्या, भगवान पर भी भक्ति नहीं होती। पिछले जन्म के सूक्ष्म परमाणु अगले जन्म की सूक्ष्म देह के साथ स्थूल देह में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसी से अगले जन्म में भी पिता-माता प्रभृति के ऊपर अश्रद्धा रहती है। इस भक्ति का शरीर के साथ सम्बन्ध है। इसके साथ आत्मा का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। पिता-माता के साथ देह का सम्बन्ध है। पिता के शुक्र और माता के शोणित से देह बनती है। इस देह को शुद्ध करना होगा, शुद्ध रखना होगा, नहीं तो पिता-माता पर भक्ति होने की नहीं। गङ्गास्नान, तीर्थयात्रा, एकादशी का व्रत, पूर्णिमा और अमावस्या का निशिपालन आदि व्रत तथा उपवास आदि करने से देह शुद्ध होती है।

मेरी शारीरिक अस्वस्थता देखकर ठाकुर कुछ दिनों से मुझसे दादा के पास चले जाने के लिए कह रहे हैं। मैं कल ही फैजाबाद से चल दूँगा, यह तय करके मैंने ठाकुर से अनुमति माँगी। उन्होंने बहुत ही सन्तुष्ट होकर मुझे अनुमति देकर कहा—श्रीवृन्दावन के सब मन्दिरों में जाकर ठाकुरजी के दर्शन कर आओ। मैं शाम तक घूम घामकर वृन्दावन के प्रसिद्ध ठाकुरों के दर्शन करके कुञ्ज में लौट आया।

ठाकुर से विदा माँगना; माताठाकुराणी की अन्तिम आज्ञा

सवेरे झोला-कम्बल बाँधकर मैं फैजाबाद जाने के लिए तैयार हो गया। गुरु भाइयों

भाद्रपद कृ० ११ ; सोमवार

से विदा माँगकर मैं दामोदर पुजारी के पास पहुँचा। उनके पैरों के पास आठ आने पैसे रखकर नमस्कार किया तो उन्होंने तीन बार मेरी पीठ ठोककर कहा 'सुफल, सुफल, सुफल। अब तुम्हारा श्रीवृन्दावनवास सुफल हो गया।' इधर आकर मैं गुरुदेव से विदा माँगने की फिक्र में था कि माताठाकुराणी मुझे बुलाकर कमरे के भीतर ले गयीं। मैंने ज्यों ही उनके चरणों में गिरकर प्रणाम किया त्यों ही मेरे सिर पर दाहिना हाथ रखकर वे कहने लगीं—"कुलदा! आगे की बात कुछ कही नहीं जा सकती, मेरी इन थोड़ी सी बातों को तुम सदा याद रखना, जैसे योगजीवन मेरा बेटा है उसी तरह मैं तुमको भी अपना बेटा समझती हूँ, इसे तुम सिर्फ कहने की बात न समझना, मैं तुम से सच-सच कहती हूँ—अपने लड़के की तरह ही तुमको मैं देखती हूँ, तुम योगजीवन के सगे भाई हो, यह सोचकर तुम सदा उसके सहायक बने रहना। शान्तिसुधा के क्लेश में कोई सहानुभूति नहीं कर सकता। क्लेश के समय पर तुम उसे ढाढस बँधाना। और आगे इस बात पर नजर रखना कि माँ कहीं दस आदमियों के लिए बोझ न हो जायँ। ब्रह्मचर्य ले लिया है, यह अच्छा ही हुआ है, देह खासी नीरोग हो जाय तो विवाह कर लेने में हानि ही क्या है? गोस्वामीजी की अनुमति लेकर इसके बाद विवाह कर सकते हो, इससे धर्म-कर्म और साधन भजन में रत्ती भर भी अनिष्ट न होगा।" ये बातें कहकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने गुरुदेव के पास जाकर, उनके चरण छूकर प्रणाम किया। वे स्नेह पूर्ण दृष्टि से थोड़ी देर तक मेरी ओर देखते रहे, फिर मन्द मन्द मुसकुराकर बोले—अच्छा अब जाओ, जो कह दिया है उसे करने की चेष्टा करना, समय-समय पर चिट्ठी लिखना; आवश्यक उत्तर मिलेगा।

मेरी फैज़ाबाद यात्रा ; रास्ते में सङ्कट

श्रीवृन्दावन से रेल मे सवार होकर सीधा कानपुर आया। मन्मथ दादा के डेरे में उतरा। मुझसे भेंट करने की इच्छा उनको बहुत दिनों से थी। मेरे पहुँचने से उन्हें बडा आनन्द हुआ। मेरे कल अथवा परसों ही फैज़ाबाद को रवाना होने की बात सुनकर वे बहुत ही खिन्न हुए। वे बार-बार कहने लगे कि दस-पन्द्रह दिन से पहले तुम्हें यहाँ से हर्गिज़ न जाने देंगे। मैंने समझ लिया कि मन्मथ दादा के जानते-बूझते मेरा चटपट फैज़ाबाद जाना असम्भव है। तीसरे दिन दोपहर को वे ज्योंही कचहरी गये त्योंही मैं छिपकर एक एक्के पर सवार हो कानपुर स्टेशन पर पहुँचा। भाग्य की बात देखिए कि उसी समय गाडी खुल गयी। मुझसे एक भले मानस ने कहा—इसी दम इस एक्के से पोलघाट चले जाइए, वहाँ गाडी मिल जायगी। मैं चटपट उस एक्के पर सवार हो पोलघाट को चला। स्टेशन पर पहुँच कर देखा कि तनिक पहले ही गाडी खुल गयी है। अब मैं बड़ी मुशकिल में पडा। इधर किराये के लिए एक्कावाला जल्दियाने लगा। कागज़ की पुडिया में पाँच रुपये मैंने अण्टी में रख लिये थे, भाडा चुकाने के लिए अण्टी में हाथ लगाया तो देखा वहाँ कुछ नहीं है, मैं चौंक पडा। ये रुपये ही तो राहखर्च की पूँजी थे। बडी मुशकिल में पड़कर मैंने गुरुदेव का स्मरण करके प्रार्थना की—'ठाकुर! इस आफत से मुझे बचाइए।' सोचा कि मैं कानपुर स्टेशन पर जहाँ बैग था शायद वहीं पर रुपये गिर गये हैं। झोला-कम्बल एक्के में ही छोडकर मैंने हिताहित विवेक-शून्य दशा में, बडे रास्ते से दौड लगा दी। दो-तीन मिनट तक दौडने पर अकस्मात् रास्ते में रुपयों को पडा हुआ देखकर मैं ठहर गया। फटी हुई कागज़ की पुडिया से तनिक हटकर रुपये पडे हुए थे। मैंने उनको उठा लिया। लम्बी-चौडी सडक पर सैकड़ों कुली-मज़दूरों और दीन-दुखियों का ताँता लगा रहता है, कैसी विचित्रता है कि अब तक इन रुपयों पर किसी की निगाह नहीं पडी। यदि मैं रास्ते के बीचोंबीच से न जाकर कहीं अगल-बगल से दौडता जाता तो इन रुपयों पर कभी मेरी नज़र न पडती। यह सोचने से मुझे और भी अचम्भा हुआ। चटपट स्टेशन पर जाकर मैंने एक्केवाले का किराया चुका दिया। तब सुना कि अब दूसरी ट्रेन जब तक नहीं मिलेगी तब तक कानपुर स्टेशन पर जाकर ही बाट जोहूँगा।

इसी समय एक पछाँहीं भले मानुस ने आकर मुझसे कहा—'महाशय, आप फैज़ाबाद जाइएगा, मुझे भी आज ही लखनऊ जाना है। चलिए, तीन कोस पैदल चलकर नावघाट पर चलें, वहाँ पर अवश्य ही गाडी मिल जायगी। यह गाडी नावघाट पर दो घण्टे तक खडी रहती है। हम लोगों को वहाँ पहुँचने में देर ही कितनी लगेगी ?' इस युक्ति को ठीक समझकर मैंने झोला-कम्मल को सिर पर रख लिया और उनके साथ फुर्ती से पक्की सडक होकर नावघाट को चल पडा। पक्के रास्ते के एक ओर बडी नदी है और दूसरी ओर लम्बा-चौडा मैदान, इस समय बरसाती पानी बढ़ जाने से नदी, मैदान और रास्ता सब एक हो गया है। नदी का पानी तेज़ी के साथ रास्ते के ऊपर होता हुआ मैदान की ओर बह रहा है। सडक के ऊपर कोई ढाई फुट पानी होगा, रास्ते के दोनों ओर बड़े बड़े पेड थे इससे रास्ते को पहचानने में तनिक भी असुविधा नहीं हुई। हम लोग कमर-कमर तक पानी की धारा को चीरते हुए आगे बढ़ने लगे। कोई एक मील रास्ता तय करते ही मैं थककर सुस्त हो गया। इसके सिवा पग पग पर नुकीले कङ्कड-पत्थर पैरों में काँटे की तरह चुभने लगे। इसी समय अकस्मात् चारों ओर अँधेरा करके मुसलाधार पानी बरसने लगा, सिर का बोझा भीग जाने से चौगुना भारी हो गया। इस मुसीबत में पडकर मैं गुरुदेव का स्मरण करने लगा। अब मैं सिर के बोझ को पटक देने को तैयार हो गया। इसी समय साथी ने आकर मेरे बोझे को अपने सिर पर रख लिया। अब वे बहाव को काटते हुए हाथ पकडकर मुझे आगे घसीट ले चले। इस प्रकार दो कोस रास्ता तय करके हम लोग नावघाट पर पहुँचे। स्टेशन पर पहुँचते ही मैं अपना बोझा सिर पर लेकर फाटक की ओर बेदम दौड चला। वहाँ पहुँचकर देखा कि प्लेटफार्म पर पहुँचने का फाटक बन्द हो चुका है। अब मैं एक हाथ से सिर के बोझ को और दूसरे से फाटक को पकडकर खडा हो गया। इसी समय गाडी खुलने की सीटी क्या बजने लगी मानों मेरे सिर पर पहाड टूट पडा। मैं हक्का-बक्का होकर गाडी की ओर देखता रह गया। इसी समय दूर से गार्ड साहब ने मेरी दुर्दशा देख ली, वे दौडकर फाटक के पास आ गये। मेरा हाथ पकडकर "जल्दी चलिए, जल्दी चलिए" कहते-कहते उन्होंने घसीटकर मुझे चलती गाडी में चढा दिया। "टिकिट पीछे मिल जायगा" कहकर गार्ड साहब अपनी गाडी में दौडकर जा चढे। अगले स्टेशन पर ही मुझे टिकिट मिल गया।

अकस्मात् एक बेढब विपदा में पड़कर, बिना ही कुछ उद्योग किये, उसमें उससे उद्धार हो जाना आकस्मिक घटना जान पड़ती है ; किन्तु लगातार एक के बाद दूसरे विकट सङ्कट में पड़ने और साथ ही साथ उससे बच निकलने के उपाय हो जाने को आकस्मिक किस प्रकार समझूँ ? हर एक चाल में पौ बारह पड़ने से हाथ की सफाई बिना सोचे नहीं रहा जा सकता। इन अघटन-सघटनों में गुरुदेव का ही हाथ समझकर मैं उनके अभय चरणों का स्मरण करने लगा। तड़के फ़ैज़ाबाद पहुँच गया।

नौकरी का तकाज़ा ; मरते-मरते बचा ; माताठाकुराणी का पत्र

भाद्र, सं० १९४७

फ़ैज़ाबाद पहुँच गया। मेरे बहुत पुराने शूल रोग को बिलकुल हट गया देखकर दादा दङ्ग रह गये। जिस प्रकार रोग से पीछा छूटा था उसका ब्योरा सुनकर उन्होंने कहा—'यह सिर्फ तुम्हारे ठाकुर की ही कृपा है। गोस्वामीजी का ऐसा अच्छा साथ छोड़कर तुम क्यों चले आये ?' मैंने कहा—'अब उन्होंने मुझे आपकी सेवा करने की आज्ञा दी है। माता की और आपकी सेवा किये बिना मेरा कल्याण नहीं होने का।' दादा ने कहा—'सेवा के लिए मुझे आदमियों की कमी नहीं है। अच्छा, तुम यहाँ रहकर उनके आज्ञानुसार साधन भजन करो, इसी से मैं समझ लूँगा कि तुम मेरी काफी सेवा कर रहे हो।' दादा की बात मानकर मैं, समय निर्धारित करके, साधन भजन करने लगा। समयानुसार दादा के साथ ठाकुर के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। फ़ैज़ाबाद में दादा के यहाँ कई दिन ठहरकर ठाकुर ने जो-जो काम किये थे, वे जहाँ-जहाँ पर गये थे वह सब मैंने सुना। बड़े आनन्द में, साधन भजन में, सत् प्रसङ्ग में मेरे दिन बीतने लगे।

इसी समय मँझले दादा बहुत दिनों की सरकारी नौकरी छोड़कर, वकालत करने की इच्छा से, फ़ैज़ाबाद आये। मेरी देह को बलिष्ठ और नीरोग देखकर उन्होंने दादा से कहा कि इसको यहीं पर कोई नौकरी-चाकरी करा दो। उनकी सलाह मानकर दादा ने भी एक अच्छी सी नौकरी का इन्तज़ाम कर दिया। इधर नौकरी की खबर पाकर मेरा सिर चक्कर

खा गया। मैंने समझाकर दादा से कहा कि "ब्रह्मचर्य व्रत में नौकरी करने की मनाही है।" दादा ने कहा, "मैं यह नहीं चाहता कि तुम व्रत को भङ्ग करके नौकरी करो; मैंने तो सिर्फ़ तुम्हारे मँझले दादा के कहने से ही नौकरी ढूँढ़ दी है; तुम उनसे समझाकर कह दो।" मँझले दादा से ये बातें कहने पर उन्होंने कहा—'वह कुछ नहीं; असल में तुम नौकरी नहीं करना चाहते हो, इसी से ये बातें बना रहे हो। अच्छा, नौकरी न सही, कुछ रोज़गार ही करो, दादा की पेटेंट दवाओं को घर बैठे-बैठे बनाओ और बेचो; समाचारपत्र में दवाओं का विज्ञापन दिलाये देते हैं।' मैंने कहा—'इसमें भी व्रत टूट जायगा। रुपया कमाने की कोशिश करना भी मना है।' मँझले दादा ने चिढ़कर कहा "यह सब कुछ नहीं है, निरी चालाकी है।"

ठाकुर को श्रीवृन्दावन के पते पर लिखकर मैंने पूछा कि इस सङ्कट में "मैं क्या करूँ।" इधर सिर में बुरी तरह दर्द होने के कारण मैंने बिछौना पकड़ लिया। १०५ डिग्री का बुखार आने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि दहकते हुए कोयले सिर के भीतर ठूँस दिये गये हैं। दादा ने बहुत कोशिश की, किन्तु सिर के बेहद दर्द में रत्ती भर भी कमी न हुई; बल्कि और भी कई प्रकार के उपसर्ग खड़े हो गये। मैं बार-बार बेहोशी में अनाप-शनाप बकने लगा। दादा डर गये, 'देखते हैं कि इस बार नहीं बचा सके' यह कहकर वे बहुत ही चिन्तित हो गये।

दो हफ्ते के बाद मेरी चिट्ठी का उत्तर आया। माताठाकुराणी ने पत्र का उत्तर दिया—

कल्याणवरेषु,

कुलदा, तुम्हारे पत्र से सब हाल मालूम हुआ और चिट्ठी पढ़कर गोस्वामीजी को सुना दी। उन्होंने कहा, तुम्हारे शरीर की जो हालत देखी है उसके लिहाज़ से विशेष कार्य में लग जाने से पीड़ा और भी बढ़ जायगी। अपने बड़े भाइयों से कहना कि उनकी घर-गृहस्थी का जो काम तुम्हारे करने लायक़ हो उसे वे तुमसे करावें। उनका दासत्व करने के लिए कहा है। भगवान् अपने राज्य में मुट्ठीभर आहार किसी प्रकार देते रहते हैं। सबको एक ही ढँग से काम-काज नहीं करना पड़ता। जिसको जिस तरह रक्खें। मन को स्थिर

करके चलना, ससार में न जाने कितनी दशाएँ देखनी पड़ती हैं। धैर्य ही का सहारा है। भगवान् तुम्हारा भला करें। यहाँ पर एक तरह से कुशल-मङ्गल है।

आशीर्वादिका
योगमाया

पत्र पढ़कर दादा और मँझले दादा सब हाल समझ गये। उन्होंने मुझसे कहा—'अब तुम्हें नौकरी-चाकरी न करनी पड़ेगी, बस अब अच्छे हो जाओ।' बीमारी के अठारहवें दिन दोनों बड़े भाइयों के मुँह से यह बात सुनकर मानों मेरा कलेजा ठण्डा हो गया उन्नीसवें दिन एकाएक सिर का दर्द घट गया, किसी प्रकार की शारीरिक ग्लानि भी न रही। बीसवें दिन पथ्य पाकर मैं चलने फिरने लगा।

अब तक साधन भजन, व्रत नियम सब कुछ बन्द था। चङ्गे हो जाने पर फिर साधन करने की बलवती इच्छा होने लगी। मैं नियम बनाकर उसी के अनुसार चलने लगा। सवेरे थोड़ा सा जल पान करके छः बजे से लेकर ग्यारह बजे तक नाम, प्राणायाम, पाठ और ध्यान करने लगा। खा-पीकर साढ़े बारह बजे से लेकर पाँच बजे तक नाम का जप करने म समय को बिताता हूँ। रात को थोड़ा सा जल पान करके कभी बारह और कभी एक बजे तक सोता हूँ, इसके बाद सवेरे तक प्राणायाम, कुम्भक, नाम का जप और ध्यान करके समय बिताया करता हूँ। इस तरह बड़े आनन्द से मेरे दिन और रातें बीत रही है।

सद्गति प्रार्थी शक्तिशाली मृत आत्मा का उपद्रव

इस दफे फैजाबाद आकर मैंने बहुत-सी नई-नई घटनाएँ देखीं। उनमें से कुछ घटनाओं का उल्लेख यहाँ पर करता हूँ। यहाँ आकर एकान्त स्थान म साधन भजन करने के सुबीते के लिए ठाकुरजीवाले कमरे म मैंने अपना आसन लगाया है। दो मञ्जिले पर सिर्फ दो कमरे हैं। दादा जिस कमरे में रहते हैं उसकी बगल में दाहनी ओर ठाकुरजीवाला कमरा है। इस कमरे में दक्षिण तरफ एक बड़ा-सा जङ्गला है। नीचे बड़ा बागीचा है। जङ्गले से पाँच-छः हाथ के फासले पर एक अच्छा सा बेल का पेड़ है। इस पेड़ के नीचे, थोड़ी ही दूरी पर, बाहर का पाखाना है। ठाकुरजीवाले कमरे म एक परमहंस के दिये हुए दादा के

शालग्राम हैं। इस कमरे के एक कोने में आसन बिछाकर मैं साधन करने लगा। इसी समय साँस लेने-छोड़ने का शब्द साफ-साफ मुझे सुनाई देने लगा। ऐसा मालूम होने लगा मानों कोई व्यक्ति मेरे आगे बैठकर ज़ोर से गहरी-गहरी साँस लेकर और छोड़कर प्राणायाम कर रहा हो। मैं आँखें खोलकर चारों ओर ताकने लगा; सूने कमरे में बार-बार जल्दी-जल्दी साँस लेने और छोड़ने की ध्वनि सुनने से मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। खोज करने पर कुछ भी समझ मे न आया। आसन पर शान्त होकर बैठते ही इस प्रकार का शब्द होने लगता है; जब तक आसन पर बैठा रहता हूँ, यह शब्द होता रहता है; इससे मुझे बड़ी घबराहट होने लगी। तीन-चार दिन के बाद मैंने दादा को यह हाल बतलाया। उन्होंने कहा—'गोस्वामीजी के ज़ाने के बाद से यहाँ पर यह एक नया काम होने लगा है। ठाकुरजीवाले कमरे में जाते ही हम लोगों को साँस लेने-छोड़ने का भयंकर शब्द सुन पड़ता है। इस डेरे का कोई भी आदमी इस कमरे मे आसानी से नहीं जाता; सभी को वह शब्द सुन पड़ता है; किन्तु अब तक आँखों से किसी ने कुछ देखा नहीं है। मे उस कमरे मे कभी अकेला नहीं बैठता। यह बड़े अचम्भे की बात है कि तुम इतने दिनों से उस कमरे मे बने हुए हो।' मैंने दादा से पूछा—'जब यहाँ पर गोस्वामीजी आये थे तब क्या उन्होंने कहा था कि यहाँ पर कोई भूत-ऊत है?' दादा ने कहा—'यहाँ पर जिस दिन गोस्वामीजी आये उसके सबेरे बाहर के पाखाने में जाते ही उनके पास एक भूत आ गया, उसने तरह-तरह की गड़गड़ मचा दी। यहाँ चाय तैयार रक्खी थी, सब लोग गोस्वामीजी की बाट जोहने लगे; गोस्वामीजी के वापस आने मे बहुत देरी देखकर सभी लोग चिन्ता करने लगे। कोई-कोई दूर से देखने लगा कि गोस्वामीजी आ रहे हैं या नहीं। फिर उन लोगों के पूछने पर मैंने कहा 'गोस्वामीजी को भूत ने पकड़ लिया है।' मेरी बात सुनकर वे लोग दिल्लगी समझे। आध घण्टे से भी अधिक समय के बाद गोस्वामीजी आये। हाथ-मुँह धोकर, दरवाज़े के सामने खड़े होकर गोस्वामीजी ने गहरी साँस छोड़कर कहा—

"दुर्गा! दुर्गा!! बाबा! कैसा उत्पात है! कैसा उत्पात है! बच गये।"

श्रीधर ने पूछा—क्या हुआ?

गोस्वामीजी—बेल के पेड़ पर एक भूत है, उसी के साथ इतनी देर लग गई।

सामने आकर खड़ा हो गया, जाता भी न था। बड़ी मुश्किल हुई। इसी से विलम्ब हो गया।

यह पूछने पर कि भूत ने क्या कहा, गोस्वामीजी ने कहा—पाखाने में जाते ही भूत सामने आकर खड़ा हो गया। मुझसे बोला—"यह जानकर कि आप यहाँ आवेंगे मैं बारह वर्ष से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, अब मेरा उद्धार कर दीजिए।" मैंने कहा—"इस समय आप हट जाइए, मैं पाखाना फिर लूँ, फिर आपकी बात सुनूँगा।" लेकिन वह किसी तरह दरवाजे से न हटा, रो-गाकर गड़बड़ करने लगा, अपनी सद्गति के लिए उसने मुझसे प्रतिज्ञा करा ली, उसने स्वीकार किया है कि यहाँ पर वह किसी का किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं करेगा, जहाँ तक बनेगा उपकार ही करेगा। मैंने कह दिया है कि और थोड़े समय तक उसे बाट जोहनी पड़ेगी। फिर उसे हटाकर पाखाना फिर आया, इसी में इतनी देर हुई।

दादा से ये बातें सुनने पर मेरा सारा सन्देह दूर हो गया। मैं ठाकुरजीवाले कमरे में ही आसन बिछाकर बैठकर दिन-रात बिताने लगा। गुरुदेव ने कहा था, 'प्रथम अवस्था में ब्रह्म की उपासना अच्छी है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर सहज में तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है।' नाम का जप करते समय अब मैं गुरु का ध्यान नहीं करता, मैं तो उस समय सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, निराकार परब्रह्म के अस्तित्व भर का ध्यान करने लगा हूँ। पिछले अभ्यास के कारण ऐसी उपासना में मुझे बहुत आनन्द जान पड़ने लगा। अन्यान्य दिनों की भाँति रात को १ बजे जाग पड़ा, हाथ-मुँह धोकर धूनी में सूखी मोटी लकड़ी जलाकर आसन पर बैठ गया। रीति के अनुसार प्राणायाम और कुम्भक करके नाम का जप आरम्भ कर दिया। शरीर में तनिक सुस्ती जान पड़ी, इससे तकिये पर एक हाथ रखकर करवट के बल लेट गया। ऊपर का एक पैर समेट लिया और दूसरे को दीवार की तरफ फैला दिया। सामने धायँ धायँ करके धूनी जलने लगी। कभी आँखें खोलकर और कभी मूँद कर मैं नाम का जप करने लगा। थोड़ी ही देर में साफ-साफ ठाकुर का रूप मेरे मन में बार-बार उदित होने लगा। किन्तु मैं उसको अपने मन से हटाकर ब्रह्म के ध्यान में चित्त को लगाने लगा। इसी समय अकस्मात् आँखें खोलकर देखा कि मेरे पैरों की

ओर, आसन पर, एक व्यक्ति बैठा हुआ है। उसकी सूरत भारी पहलवान की सी थी—रङ्ग काला, सिर घुटा हुआ और आँखें चमकीली थीं। उससे आँखें मिलते ही उसने इशारे से मुझसे उठकर आसन पर बैठने के लिए कहा और अपने साथ प्राणायाम करने का सङ्केत किया। मैं ठाकुर के मुँह से सुन चुका था कि 'साधन करने के आसन पर यदि और कोई बैठ जाय तो साधन का एकनिष्ठ भाव नष्ट हो जाता है, दूसरे के भाव से वह आसन दूषित हो जाता है, इसलिए किसी दूसरे को अपने साधन भजन करने के आसन पर न बैठने देना चाहिए।' अतएव उसको अपने आसन पर बैठा हुआ देखते ही मुझे गुस्सा हो आया। मैंने नाराज होकर उससे कहा कि आसन छोड़कर अलग बैठ जाओ; किन्तु मेरी बात की कुछ परवा न करके वह शान्ति से बैठा हुआ मेरी ओर ताकता रहा। तब मारे गुस्से के मैंने सिकोड़े हुए बाँयें पैर को खींचकर बड़े जोर से उसकी छाती को ताककर लात मारी। मेरी लात उसके शरीर को चीरती हुई धम से दीवार में लगी; किन्तु मुझे उसके शरीर के स्पर्श का रत्ती भर भी अनुभव न हुआ। मेरे लात मारते ही उस व्यक्ति ने एक अद्भुत शक्ति का प्रयोग किया। वह अकस्मात् प्राणायाम के लिए बेतरह हवा खींचकर, ठहाका मारकर, हँस पड़ा। मैंने साफ साफ देखा कि उसकी भुजाओं, गले और मस्तक की शिराएँ फूल उठीं। अब वह भूत मेरे भीतर की वायु को प्राणायाम के प्रबल आकर्षण से खींचकर क्रम से साँस चढ़ाने लगा। मैं बहुत कोशिश करने पर भी हवा को न खींच सका। मैंने समझ लिया कि उसने कुम्भक द्वारा कमरे की कुल हवा का स्तम्भन कर रक्खा है। मेरे सब अङ्ग सुस्त पड़ गये, मुझमें हिलने डुलने तक की शक्ति न रही। मैं अपना अन्त समय आ गया जानकर, अभ्यासवश से, निराकार ब्रह्म का ध्यान करने लगा। इस समय मझ मैं नशे की तरह मानों मुझे कोई उठा-उठाकर अधर फेंकने लगा। खड़े होने के लिए जगह न पाकर बड़ी दहशत और तक्लीफ के मारे मुझे चारों ओर अँधेरा देख पड़ने लगा। चढ़ने और गिरने के चक्कर से परेशान होकर मैं गुरुदेव के श्रीचरणों का स्मरण करने लगा। मैं लगभग बेहोश हो गया। पता नहीं कि मेरी यह हालत कब तक रही, फिर धीरे धीरे, बिना जाने, पल-पल में मेरी साँस चलने लगी। थोड़ी ही देर में मेरा नशा सा उतरा, मैं चट से उठकर आसन पर बैठ गया। अब मैं तेजी के साथ बार-बार जोर-जोर से भूत को बुलाने लगा, किन्तु फिर वह नज़र न आया। उसी

दिन से साँस लेने और छोड़ने का शब्द भी बन्द हो गया। जाग्रत् दशा में इस प्रकार फिर कभी मैं भूत के पञ्जे में नहीं पड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि यह भूत बड़ा शक्तिशाली था।

इस घटना के कई दिन बाद एक दिन, रात के समय, कोई एक बजे स्वप्न देखा कि एक डकैत दादा के कमरे में घुस आया है और उनकी जान लेने के लिए उनके सिर में तड़ातड़ बड़ी सी लाठी से प्रहार कर रहा है और उनको बचाने के लिए मैं दौड़ा जा रहा हूँ। स्वप्न देखते ही नींद टूट गई। जागते ही मुझे दादा के कमरे में गों गों शब्द और बड़ी गड़बड़ सुन पड़ी। मैं चौंक पड़ा। मैं दौड़ा हुआ दादा के कमरे में पहुँचा; वहाँ पर देखा कि दादा बिछौने पर बैठे हुए हाथ-पैर पटक रहे हैं, उनकी साँस रुक गई है। 'जय गुरु, जय गुरु' कहते कहते मैंने ज़ोर से दादा को छाती से लगा लिया। थोड़ी देर में दादा साँस लेने और छोड़ने लायक़ हुए। सावधान होकर दादा ने कहा—'स्वप्न में देखा कि मुझे एक आदमी ने दबाकर पकड़ लिया है, इसी से मेरा दम रुक गया था।'

* *
*

सत्य स्वप्न, आँखों में तकलीफ़

और एक दिन की बात है कि नाम का जप करते-करते रात के पिछले पहर झपकी लग गई। स्वप्न देखा—एक गोरे रङ्ग के पवित्रमूर्त्ति ब्राह्मण ने आकर मुझसे कहा, 'अजी, तुम्हारी बाईं आँख उठेगी, ३।४ दिन तक थोड़ी सी तकलीफ़ रहेगी, फिर आराम हो जायगा; घबड़ाना मत।' सवेरे उठकर हाथ-मुँह धोया, फिर दादा को दोनों आँखें दिखलाकर पूछा—'क्या मेरी आँख उठेगी?' देखकर दादा ने कहा—'आँखें तो बहुत साफ़ हैं, आँख उठने का तो कुछ लक्षण मुझे नहीं देख पड़ता।' थोड़ी देर बाद मैं स्वप्न की बात भूल गया। आठ बजने पर आँख कुछ भारी मालूम होने लगी। थोड़ी देर में ही बाईं आँख लाल हो आई; दादा आये और आँख की हालत देखकर दङ्ग हो गये। चार दिन तक बहुत तकलीफ़ सही; फिर दर्द जाता रहा। मैंने किसी दवा का उपयोग नहीं किया। सोलहों आने स्वप्न को सत्य हुआ देखने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

भूखे शालग्राम

मैं एक दिन सबेरे आसन पर बैठा हुआ नाम का जप कर रहा था कि मुझे यज्ञ के धुएँ की बहुत ही पवित्र गन्ध आने लगी। खोज करने पर भी यह न मालूम हुआ कि यह सुगन्धि कहाँ से आ रही है। मकान में और कहीं पर यह सुगन्धि न थी; सिर्फ ठाकुरजी-वाला कमरा ही गमक रहा था। सवेरे से लेकर शाम तक, दिन भर, एक ही तरह यह अद्भुत सुगन्ध महकती रही। सुगन्ध के गुण से चित्त प्रफुल्ल होने लगा। दिन भर ठाकुरजीवाले कमरे में यह सुगन्ध पाकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सुगन्ध के आने का कोई भी कारण निश्चित न कर सकने पर दादा ने कहा—'यह तो मेरे शालग्राम महाराज की देह की सुगन्ध है; यदि यह बात नहीं है तो कमरे के बरामदे तक में यह सुगन्ध क्यों नहीं है?' दादा की बात सुनकर मैं हँसने लगा। तब दादा शालग्राम के सम्बन्ध में कहने लगे—'तुम मेरे नारायण पर विश्वास नहीं करते। मैं भी उन्हें पत्थर के सिवा और कुछ न समझता था; किन्तु अब उनका अद्भुत प्रभाव देखकर विश्वास किये बिना नहीं रह सकता। एक दिन अकस्मात् एक ऊँचे से, जटाजूटधारी, सौम्यमूर्त्ति संन्यासी आकर मुझे पुकारने लगे। ज्योंही मैं उनके पास पहुँचा, उन्होंने मेरे हाथ शालग्राम को देकर कहा—'इन शालग्राम को घर में रखकर आप सेवा-पूजा कीजिए, आप का बहुत कल्याण होगा।' मैंने यह कहकर शालग्राम को लेना अस्वीकार किया कि मैं इन बातों को नहीं मानता; मुझसे सेवा-पूजा भी न निभेगी। उन्होंने कहा—'अच्छा, आप सिर्फ इस चक्र को घर में रख दीजिए, ये अपनी सेवा-पूजा की व्यवस्था स्वय कर लेंगे।' सन्यासी की बात मानकर घर में, एक जगह, मैंने चक्र को रख दिया, मैंने उसकी कुछ खोज-खबर ही न ली। एक दिन, रात को, शालग्राम ने स्वप्न दिया—'देखो, हमें इस कूड़े-कचरे मे फेंक दिया है।' सवेरे उठकर कचड़े मे से शालग्राम को उठा लाया। मुझे पता ही नहीं कि कब *किसने किस तरह उनको फेंक दिया था। इससे थोड़ा सा अचम्भा हुआ। इस घटना के* कारण शालग्राम के ऊपर थोड़ी सी भक्ति भी हुई। उनको घर में लाकर मैंने छोटी सी चौकी पर रख दिया; प्रतिदिन नहाने के बाद मैं थोड़ी देर तक आसन पर बैठता हूँ, उसी समय शालग्राम को स्नान कराकर फूल-तुलसी चढ़ाने लगा। इसी समय से शालग्राम बार बार स्वप्न

में मुझ पर इस तरह कृपा करने लगे कि मैं उसे किसी प्रकार टाल नहा सका। जैसा-जैसा मैं शालग्राम का परिचय पाने लगा वैसी ही मेरी श्रद्धा भक्ति भी बढ़ने लगी। यहाँ पर गोस्वामीजी के आने के बाद से, उनके कहने के अनुसार, मैं विधि के अनुसार शालग्राम की सेवा पूजा करने लगा हूँ। मेरे ठाकुरजी पत्थर नहा हैं, जाग्रत देवता हैं, यह बात गोस्वामीजी भी कह गये हैं। एक दिन वे अयोध्याजी जाकर सब स्थानों के ठाकुरजी के दर्शन कर आये। डेरे में आते ही व मेरे ठाकुरजी के दर्शन करने को पूजा के कमरे में गये। तनिक शालग्राम की ओर देखकर ही वे बच्चे की तरह रोने लगे, आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी, उन्होंने घबराहट से इधर-उधर देखने के बाद अपनी कफनी के पाकेट में हाथ डाला और पेड़ा बरफी निकालकर ठाकुरजी के आगे रख दिया। थोडी देर में साष्टाङ्ग प्रणाम करके वे बाहर आये। हम लोगों ने पूछा कि मिठाई कहाँ मिल गई। उन्होंने कहा— "मैंने थोडी-सी मिठाई रख छोड़ी थी, ठाकुरजी के कमरे में ज्योंही मैं पहुँचा त्योंहि ठाकुरजी ने प्रकट होकर मेरे आगे दोनो हाथ फैलाकर कहा, 'झटपट हमें कुछ खाने को दो, हम बहुत दिनों से उपवास कर रहे हैं, ये लोग हमें खाने को नहीं देते।' मेरे पाकेट में जो कुछ था वही मैंने नारायण के आगे रख दिया। तमाम मन्दिरों और देवालयों को देख आया, किन्तु ऐसा तो और कहीं नहीं देखा। यहाँ पर वामनदेव सदा सजीव रूप में प्रकट रहते हैं। नियमानुसार

फैजाबाद में गोस्वामीजी की अवस्थिति

दादा कहने लगे—तुम्हारा पत्र पाते ही मैं तीन-चार दिन की छुट्टी लेकर गोस्वामीजी के दर्शन करने काशी गया। उनको मुद्दत के बाद देखा, देखते ही मालूम हुआ कि वे अब पुराने गोस्वामी नहीं हैं, अब तो वे सूरत-शकल और स्वभाव से साक्षात् महादेव हो गये हैं। मुझे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। छुट्टी थोड़े ही दिनों की थी, इससे मुझे जल्दी लौट आना पड़ा। काशी से आते समय मैंने गोस्वामीजी से अनुरोध किया कि जब आप श्रीवृन्दावन जाने लगें तब फैजाबाद होकर ही जाइए। दया करके उन्होंने मेरी बात मान ली। कई दिन के बाद ही गोस्वामीजी यहाँ आ गये; उनके साथ में उनकी पत्नी, योगजीवन, हरिमोहन, देवेन्द्र चक्रवर्ती, मानिकतला की माँ और उनके स्वामी ब्रज बाबू आये थे। उस समय मेरे यहाँ पर भी देवेन्द्र पाल प्रभृति चार-पाँच व्यक्ति थे; जगह कम होने के कारण बाहर की बैठक में लम्बा बिस्तरा बिछाकर हम सब लोग रहते थे। मैं गोस्वामीजी के पास ही सोता था, देवेन्द्र मेरी दूसरी बगल में रहता था। गोस्वामीजी सोते नहीं थे, सारी रात बैठे-बैठे बिता देते थे। एक बार रात को ढाई बजे, न मालूम क्यों, देवेन्द्र ने मेरी छाती में चपत मारी। शक्ति को चुरा लेना और वशीकरण करना आदि वह जानता था। चपत लगने पर मैं जाग पड़ा। मेरा हृदय मानों निस्तेज, खाली हो गया, मन भी बहुत खराब हो गया। तब गोस्वामीजी अकस्मात् बोल उठे—**अविश्वासी के संसर्ग से साधु सावधान! सावधान!! सावधान!!!** गोस्वामीजी की इस बात के साथ ही साथ मेरे हृदय में एक ऐसी शक्ति का सञ्चार हुआ कि जान पड़ने लगा मानों मैं चाहूँ तो सारा मकान, कमरा, दालान और कोठे को लात मारकर तोड़-फोड़ सकता हूँ। उस समय देवेन्द्र मेरी बगल में न रह सका, उठकर दूसरे कमरे में चला गया।

एक दिन गोस्वामीजी सब लोगों को साथ लेकर नागा बाबा के दर्शन करने गये। गोस्वामीजी को देखते ही नागा बाबा आनन्द में मग्न हो गये। फिर, शान्त होकर, उन्होंने गोस्वामीजी से वहाँ पर एक रात रहने का अनुरोध किया। वे राजी हो गये; बाबाजी ने मोटे चावल का भात और लहसुन से छौंकी हुई दाल बनाकर अतिथियों को भोजन कराया। जड़काले की रात में, सरयू के खुले हुए बालू के मैदान में सब लोग न रह सकते, इसलिए

श्रीधर, हरिमोहन और देवेन्द्र चक्रवर्ती ही गोस्वामीजी के साथ वहाँ पर रह गये, बाकी सब लोग चले आये। मेरे मित्र देवेन्द्र ने वहाँ पर रात बितानी चाही, किन्तु नागा बाबा ने उसे ठहरने न दिया। डेरे पर आकर देवेन्द्र मुझसे एकान्त में सबकी बुराई करने लगा, उसने गोस्वामीजी को भी एक बार हिला डुलाकर देख लेने की शेखी मुझे दिखलाई। उसकी बातें सुनने से मेरा दिल बहुत ही खराब हो गया। दूसरे दिन सबेरे गोस्वामीजी, सबके साथ, डेरे पर आये। कमरे में आते समय, दरवाज़े के पास पहुँचते ही, उन्होंने कहा—'अजी! यहाँ पर साधु निन्दा हुई है; अब रहना नहीं हो सकता, तुम लोग आसन उठाओ।' यह कहकर गोस्वामीजी भीतर आये। आसन पर बैठकर बड़े तेज के साथ अपने आप कहने लगे—इन लोगों को पहचानने के लिए तुम्हें बहुत देर है! जानता कितना है? और जानता ही क्या है? हुआ क्या है? कुछ भी तो नहीं है—बहुत चक्कर खाने पड़ेंगे, बहुत भुगतना पड़ेगा। तू भला परीक्षा करेगा ही क्या?

गोस्वामीजी जब ये बातें कहने लगे तब देवेन्द्र चौंक पड़ा। उसका चेहरा स्याह हो गया, वह घबराहट से चारों ओर देखकर चम्पत वहाँ से बाहर चला गया।

चाय पीने के बाद सब लोग बैठकर कल रात के दर्शन आदि के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। भूत प्रेतों के साथ महादेव के, डाकिनी-योगनियों के साथ काली के और महावीर के जिन्होंने जिस रूप में दर्शन किये थे, उसी की आलोचना आपस में होने लगी। सबकी सुनकर गोस्वामीजी ने कहा—नागा बाबा के प्रार्थना करने से ही सबने आकर दर्शन दिये थे। नागा बाबा ने तुम लोगों पर बहुत कृपा की। उनकी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से ही ऐसे बालू के मैदान में हम लोगों को मामूली ठण्ड भी नहीं लगी। यह मामूली बात नहीं है।

दादा ने पूछा—आप लोगों के बदन पर तो वही एक-एक कम्बल था। ऐसी कड़ी ठण्ड में सारी रात सरयू किनारे, खुले हुए, बालू के मैदान में क्या आप लोगों को जाड़े का क्लेश नहीं हुआ?

ठाकुर ने कहा—नहीं तो, हम लोगों को तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। छप्पर के नीचे बड़े आराम से रहे।

हरिमोहन ने हँसते हँसते कहा—हाँ, अजीब छप्पर है। दोनों ओर सिर्फ दो टूटी हुई टट्टियाँ लगी हैं, सामने और पीछे की ओर खुला पड़ा है, सिर के ऊपर साफ आकाश में अनगिनत तारों का छप्पर है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि थोड़ी देर में बदन पर से कम्बल हटा देना पड़ा। गरमी लगने लगी। तब योगजीवन ने कहा—हमें भी ऐसा मालूम होने लगा मानों गरम हवा की कुंडली में बैठे हैं। रात के पिछले पहर, चार बजे, वह कुंडली गायब हो गई। उस समय मामूली-सी ठण्ड लगी थी। उसी समय ठाकुर ने दादा से पूछा—तुम्हें मालूम है कि नागा बाबा ने कौन-सा साधन किया था? दादा ने कहा—सुना है, शव-साधन किया था।

ठाकुर ने कहा—हाँ, वही सम्भव है। नहीं तो इतनी आसानी से ऐसी शक्ति मिल जाते बहुत कम देखा जाता है। किन्तु यह शक्ति बहुत दिन नहीं ठहरती। इस साधनमार्ग के साधुओं की प्रकृति जैसी उग्र रहती है वैसी नागा बाबा की नहीं है। ये खासे शान्त हैं। यह कहकर ठाकुर नागा बाबा की तपस्या की जी खोलकर प्रशंसा करने लगे।

एक व्यक्ति ने पूछा—इन तपस्याओं से सिद्ध होते ही क्या मनुष्य दीर्घजीवी हो जाता है?

ठाकुर—नहीं, सिद्ध होने से ही कुछ मनुष्य दीर्घजीवी नहीं हो जाता। कायाकल्प में सिद्ध होने से शरीर दीर्घकाल तक स्थायी बना रहता है—यह कहकर उन्होंने एक फकीर का हाल सुनाया।

कायाकल्पी फकीर का हाल

(मैंने ठाकुर के मुँह से यह कहानी जिस रूप में सुनी थी वैसी ही दादा की डायरी में देखकर लिखे लेता हूँ।)

ठाकुर—गयाजी में रहते समय हम प्रायः एक फकीर के पास जाया-आया करते थे। वे सूनसान जङ्गल के भीतर एक टूटी हुई मसजिद में रहते थे। एक दिन जाकर देखा कि फकीर साहब मसजिद के बरामदे में, बेहोशी की हालत में, औंधे पड़े हुए हैं। उस दिन वहाँ पर थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहकर हम लौट आये।

इसी प्रकार पाँच-सात दिन बीत गये, हम प्रतिदिन एक बार फ़क़ीर को देख आया करते थे। एक दिन जाकर क्या देखा कि फ़क़ीर का शरीर बेतरह फूल गया है, और उस पर मैले के कीड़ों की तरह दुमदार बड़े-बड़े कीड़े सारे शरीर में बैठे रक्त पी रहे हैं। सरसों बराबर जगह भी खाली नहीं है, कीड़ों के काटने की तकलीफ़ के मारे फकीर साहब बीच-बीच में हाय-हाय कर रहे हैं। देखने से बड़ा दुःख हुआ; वहाँ पर ऐसा एक पक्षी तक न था जो आकर कीड़ों को खा जाय। ऐसी भगवान् की लीला है!

तब एक दिन एक मुसलमान ताल्लुक़दार ने आकर हमसे पूछा कि फकीर साहब कहाँ हैं। हम उनको फ़क़ीर साहब के पास ले गये। हमने उनसे विशेष रूप से कह दिया कि वे फ़क़ीर साहब का किसी प्रकार का इलाज करने जाकर उनको तङ्ग न करें। किन्तु ताल्लुक़दार साहब ने हमारी बात न मानी; धीरे-धीरे फ़क़ीर साहब के पास जा बैठे और आहिस्ते-आहिस्ते दुम पकड़कर दो-तीन कीड़ों को निकाल लिया। बस, उस स्थान से लगातार रक्त बहने लगा। फ़क़ीर साहब चिल्लाने लगे। तब ताल्लुकदार चौंक पड़े। चिल्ला-चिल्लाकर फ़क़ीर साहब बार-बार कहने लगे कि जहाँ से कीड़ों को उठाया है वहीं पर उन्हें फिर से बिठा दो। मुसलमान के वैसा करने पर फ़क़ीर साहब चुप हो गये। ताल्लुक़दार बहुत ही खेद प्रकट करके चले गये। हम भी डेरे पर लौट आये। इसके कई दिन बाद एक दिन जाकर देखा कि फ़क़ीर साहब मसजिद के बरामदे में टहल रहे हैं। चेहरा खुश है, शरीर में मानो एक ज्योति फैल रही है। तब समझ में आया कि फ़क़ीर साहब का सङ्कल्प सिद्ध हो गया है, कुछ दिन बाद फिर वे न जाने कहाँ चले गये।

सुना है कि देहकल्प में तीन सौ वर्ष, पाँच सौ वर्ष या हज़ार वर्ष की परमायु प्राप्त करने का सकल्प करके भिन्न भिन्न प्रकार के साधन, आचार, नियम और औषध ग्रहण करना पड़ता है। पक्ष के आरम्भ से लेकर पक्ष के अन्त तक कोई पन्द्रह दिन, कोई एक महीना और समर्थ तपस्वी व्यक्ति हुआ तो दीर्घ परमायु प्राप्त करने के लिए औषध सेवन करता हुआ डेढ़ महीने तक, नियम निष्ठा से रहकर, देहकल्प में सिद्ध हो जाता है।

मैं जब भागलपुर में था तब दो साधु गङ्गा किनारे, बरारी की सुनसान बहुत पुरानी अँधेरी गुफा में, तीन सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करने का सङ्कल्प करके, पन्द्रह दिन के लिए, यह साधन करने लगे। शायद औषध के प्रभाव से दिन दिन उन लोगों के शरीर का मांस धीरे-धीरे सड़-गलकर गिरने लगा, साथ ही साथ उन उन स्थानों पर नया मांस जमने लगा। दर्द के मारे एक साधु तो मर गया और दूसरा सिद्धि पाकर पन्द्रह दिन के बाद पता नहीं कि कहाँ चला गया। भगवान् की सृष्टि में कितना क्या है, इसे जानने के पहले उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती!

गाड़ी में बैठकर, अयोध्या जाते समय एक दिन गोस्वामीजी को रानूपाली के बड़े भारी मैदान में, अपूर्व राजवेश में राम-सीता के दर्शन हुए। उस दिन वे सरयू में नहाकर हनुमानगढ़ी, रङ्गमहल और राम-सीता का मन्दिर आदि अनेक मन्दिरों को देख आये थे। माधोदास बाबाजी के आश्रम में जाकर उनके शिष्य नारायणदास से भेंट की। मणिराम बाबा के आश्रम में गये। अयोध्या में सभी लोग मणिराम बाबा को सिद्ध महात्मा समझते हैं। गोस्वामीजी के दर्शन करके वे इतने प्रसन्न हुए कि अचेत हो गये। थोड़ी देर में उठकर उन्होंने हाथ जोड़कर गोस्वामीजी से कहा—"कृपा करके दर्शन तो दे दिया, अब हमारे रहने का क्या प्रयोजन है? आप हमारे स्थान पर रहिए, हम शरीर को छोड़ते हैं।" गोस्वामीजी भी मानो बहुत पुराने परिचित मनुष्य को पाकर, उनके साथ उसी तरह बातचीत करने लगे। पतितदास बाबाजी के दर्शन करने भी गोस्वामीजी गये थे। उनके परस्पर मिलने से जो आनन्द की उमङ्ग और भाव का आवेश हुआ था उसे भला हम लोग क्या समझें?

दादा ने कहा—भोजन इत्यादि हम लोग साथ ही साथ करते थे। मछली खानेवाले पहले ही खा-पी लेते थे। भोजन करने को मैं गोस्वामीजी के पास ही बैठता था। एक दिन भोजन करते-करते उन्हें मालूम हुआ कि मैं मछली खाता हूँ, उन्होंने उसी दम रसोइया महाराज को बुलाकर कहा कि इनको मछली परोस दो। मैं बार-बार मना करने लगा। अन्त में उनके प्रबल आग्रह को न टाल सकने पर मैंने मछली खाई। गोस्वामीजी ने कहा—"आप मजे में मछली खाइए, इसमें मुझे किसी तरह की असुविधा नहीं होती।' भोजन करते समय मेरे मुँह से खाने का शब्द होता था। उसे सुनकर एक दिन कहा—

भोजन करते समय मुँह से चपचप न होना ही अच्छा है।" मैं तभी से सावधान होकर भोजन करता हूँ। मानिकतला की माँ मुद्दत से कुछ खाती नहीं हैं, वे चुल्लू भर पानी तक नहीं पीती थी, यदि बहुत आग्रह करके कोई अच्छी चीज खिलाई जाती तो उसी दम कै हो जाती थी। ऐसी अद्भुत अवस्था मैंने कहीं नहीं देखी।

धर्म के सम्बन्ध से ठाकुर के परम आत्मीय, नानकपन्थी सिद्ध महात्मा माधोदास बाबाजी के एक शिष्य, भजनानन्दी कन्हाईलाल बाबा प्राय सदा गोस्वामीजी के पास बने रहते थे। वे एक दिन अप्राकृत जलराशि में मत्स्यावतार भगवान् का गोस्वामीजी के सामने मौज से तैरते देखकर आनन्द के मारे मूर्छित होकर गिर पड़े थे। माधोदास बाबा के बहुत से नामी गिरामी अँगरेजी शिक्षित शिष्य लोग, अधिकाश समय पर, गोस्वामीजी के पास बने रहते थे। वे लोग गोस्वामीजी के यहाँ पर अनेक प्रकार के अलौकिक दृश्य और अपने इष्टदेव का आविर्भाव देखकर मुग्ध हो जाते थे।

ठाकुर के फैजाबाद में रहते समय बहुत-सी अच्छी-अच्छी घटनाएँ हुई थीं, बातचीत के सिलसिले में उन्हें ठाकुर के मुँह से सुनकर लिखने की इच्छा है।

फैज़ाबाद में कोई दो महीने दादा के साथ बड़े आनन्द म बिताये, अकस्मात् एक दिन घर से खबर आई कि माताजी बहुत बीमार हैं। दादा ने मुझसे कहा, 'तुम इतने दिन जिस तरह हमारे पास रहे इससे हम बहुत ही सन्तुष्ट हुए। मैं हृदय से भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे तुम्हें कर्म के फन्दे स छुटकारा दे दें। गोस्वामीजी ने तुमसे माताजी की सेवा करने को कहा है, सो अब तुम घर जाकर उनकी सेवा करो, इसी से तुम्हारा वास्तविक कल्याण होगा।' दादा की आज्ञा पाकर मैं घर को रवाना हुआ, काशी, भागलपुर, कलकत्ता और ढाका में ठहरने से कोई एक महीने की देर हो गई। रास्ते में, जिन जिन स्थानों में जिन जिन अवस्थाओं में से मुझे गुज़रना पड़ा उनका विस्तृत रूप में वर्णन करना अनावश्यक है। श्रीवृन्दावन म गुरुदेव की कृपा से ब्रह्मचर्य ग्रहण करने जिस देवदुर्लभ अवस्था का आनन्द मैंने पाया था उससे, आकस्मिक एक दुर्घटना में पड़कर, भ्रष्ट हो गया हूँ। कैसी दुर्घटना में किस प्रकार पड़कर मैं कहाँ तक दुर्दशाग्रस्त हो चुका हूँ, इसी को याद रखने के लिए घटना के आभास मात्र को साधारण रीति स लिखे लेता हूँ।

ब्रह्मचर्य की अद्भुत अवस्था

गुरुदेव ने जिस दिन मुझे ऋषियों के आदर का परम पवित्र ब्रह्मचर्यव्रत दिया उस दिन उन्होंने मुझे क्या कर दिया, यह वही जानते हैं। मुझे मालूम होने लगा कि अब मैं वह आदमी नहीं हूँ जो पहले था। मेरी देह और मन सब कुछ का कुछ हो गया। जब मैं अपने-शरीर की ओर ध्यान देता था तब वह मुझे बिना चमड़ी और मांस का साफ काँच का शरीर जान पड़ता था। घाट-बाट में चलते फिरते समय जान पड़ता था कि रूई की तरह हलका शरीर मानों मिट्टी के ऊपर की हवा के सहारे चल रहा है। जनेऊ को छूते ही ब्रह्मचर्य का वैदिक मंत्र अपने आप याद आ जाता और ऐसे एक भाव का सञ्चार कर देता कि 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं ऋषि हूँ।' जप करते समय नाम एक सारवान्, सजीव, शक्तिशाली मन्त्र मालूम होता था। इससे नई नई उमङ्ग और भाव की तरङ्ग हृदय में प्रायः सदा उठती रहती थी। जिस कामिनी-कल्पना और प्रमोदवासना का अभ्यास बहुत पुराना था उसका बिना जाने मन में उदय होते ही बहुत चिढ़ मालूम होती थी, जी जलने लगता था। निरे शुद्ध देह के अद्भुत आनन्द का उपभोग करके ही, समय-समय पर, लट्टू हो जाता था। सोचता था 'यह क्या हुआ? गुरुदेव ने मुझे यह क्या कर दिया?' गुरुदेव के श्रीचरणों से विदा ले आने के बाद भी बहुत दिनों तक उन्हों ने मुझे इस अपूर्व अवस्था का आनन्द लेने दिया था। फिर, नहीं मालूम क्यों, दयालु ठाकुर ने एक ललना के बहाने मेरे अन्तर मन में प्रलय उपस्थित कर दिया; मैं भी, धीरे धीरे निस्तेज, हीनप्रभ हो गया।

प्रलोभन में अविकार अहङ्कार से पतन

माताजी की बीमारी की खबर पाकर उनकी सेवा करने के लिए शीघ्र ही घर पहुँचने का इरादा किया; किन्तु विधाता के चक्कर से दुर्मति में पड़कर इधर-उधर महीने भर से अधिक घूमता फिरता रहा। इसी समय कई दिन तक एक परिचित व्यक्ति के घर मुझे ठहरना पड़ा। उन्हें लगातार कई अनर्थों से उत्तेजित होकर, उनका उपशम करने के लिए, बाहर जाना पड़ा। घर में अकेली स्त्री रह गई। नौकर-नौकरानी के सिवा घर का कोई आदमी न रहने से, स्त्री की निगरानी का भार, बाबू साहब मुझ को ही सौंप गये।

अधिक हेलमेल हो जाने से, क्या सबके आगे और क्या एकान्त में, बिना किसी प्रकार की झिझक के मेरे साथ उनका बैठना-उठना और बोलना-चालना मुद्दत से चला आ रहा है। उनके आग्रह और ज़िद करने से भीतर ही मैंने अपना आसन लगाया और वहीं पर मैं सोने भी लगा। बारह बजे तक मैं एकान्त में साधन-भजन किया करता था, उस समय नानू की पत्नी गृहस्थी का काम-काज करती रहती थीं। दोपहर को, भोजन हो चुकने पर, नौकर-चाकर बाहर चले जाते थे। उस समय अकेली बहुआइन अलग कमरे में न रहकर उसी कमरे में आ जातीं जिसमें मेरा आसन था और मेरे आसन से तनिक हटकर लेटतीं और विश्राम किया करतीं। इस समय वे धर्मप्रस्ताव करके, सरलता की ओट में, अपने मन के कुभाव को मुझ पर धीरे धीरे प्रगट करने लगीं। बेढब सङ्कट समस्या में पड़कर मैं सोचने लगा कि क्या करूँ।

उनकी किसी चेष्टा को रोकने की मुझे हिम्मत न हुई। सोचा कि ऐसी हालत में उनके लिए कुछ भी काम असाध्य नहीं है। यदि मेरे किसी विरुद्ध व्यवहार से उसके मर्म में और शान में चोट लगे तो युवती अभी मुझे बदनामी लगाकर, चिल्लाकर लोगों को इकट्ठा कर लेगी और पलभर में मुझे अपदस्थ करके सदा के लिए देश विदेश में मुझे बदनाम कर देगी। एक दिन बेढब विपत्ति आई हुई समझकर मुझे चारों ओर अँधेरा दिखाई देने लगा। ठाकुर ने न जाने कितनी बार कहा है—'पुरुष अभिभावक के उपस्थित न रहने पर किसी गृहस्थ के घर पलभर भी अविवाहित युवक का रहना ठीक नहीं।' याद पड़ा कि ठाकुर की इस नसीहत को मामूली समझ कर न मानने से ही आज मुझ पर यह सङ्कट पड़ा है। तब गुरुदेव के अभय चरणों का स्मरण करके मैं बार बार उनको प्रणाम करने लगा। थोड़ी देर में कामिनी ने बेहद साहस से विषम चञ्चलता प्रकट की अन्त में 'ओ हरि! तुम ब्रह्मचारी हो' कहकर वह लज्जा के साथ मुसकराती हुई दूसरे कमरे में चली गई। अब मैं स्पर्धायुक्त मन से सोचने लगा—'ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने से मुझे अवश्य ही अपूर्व शक्ति प्राप्त हो गई है, इसी से मैं ऐसे मामले में निर्विकार रह सका हूँ, मैं सचमुच साधनराज्य के फिसलनेवाले मार्ग को तय करके ऐसी भूमि में आ पहुँचा हूँ जहाँ अब डिग जाने का डर नहीं है।' किन्तु हाय! ऐसे झूठे अहङ्कार के कई दिन बाद ही समझ में आया कि मेरा सत्यानाश हो गया। घटना के चक्र के सहारे धीरे धीरे

मेरे दिल में आग लग गई। आग के काले धुएँ ने दुर्लभ ब्रह्मचर्य की चमकीली दीप्ति को छिपा लिया। मैं पहले की अपूर्व पवित्र अवस्था से फिसल पड़ा। दूसरे ही दिन बाबू घर लौट आये। मैं भी चटपट उनके यहाँ से चला आया।

स्वप्न में गुरुजी का अनुशासन

इस घटना के हो चुकने पर कई दिन बाद ही लगातार कई एक स्वप्न देखे। एक जगह परिचित और अपरिचित बहुत से मनुष्य एकत्र हुए हैं। गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा—**'मेरे पीछे-पीछे चल।'** उनकी आज्ञा पाकर मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगा। रास्ते के दोनों ओर, लम्बे-चौड़े खेत मे, बकरों और भेड़ों की विचित्र क्रीडा देखकर मैं बीच-बीच में ठहर जाने लगा। तब गुरुदेव पीछे की ओर ताककर मुझ से आगे बढ़ने के लिए कहने लगे। मैं भी तुरन्त दौड़कर, गुरुदेव के साथ होकर, फिर चलने लगा। इस तरह मैं ठाकुर के साथ एक ऊँचे पहाड़ की चोटी के पास पहुँचा। मैंने देखा कि वहाँ पर, पर्वत पर चढ़ने के लिए, बहुत से गुरुभाई मौजूद हैं। वहाँ पर मेरी ओर देखकर गुरुदेव ने कहा—**'तुम यहीं रहो, हम अब जाते हैं।'** ठाकुर की बात सुनकर मैं रो पड़ा, मैंने बड़ी व्याकुलता से कहा—'मैं आपके साथ ही इस पर्वत पर चढ़ूँगा, मुझे अपने साथ ले चलिए।' ठाकुर ने मुझे खूब धमका कर कहा—**'तुम बड़े ज़िद्दी लड़के हो। जो जी मे आता है वही किया करते हो। तुमको साथ ले जाकर क्या अन्त मे उत्पात में पड़ूँगा? कुछ समय तक यहाँ रहो, जब सब लोग जावें तब तुम भी जाना, अभी मेरे साथ नहीं जा सकते।'** अब गुरुदेव पहाड़ पर चढ़ने का उद्योग करने लगे, मैं भी रोता रोता जाग पड़ा। इस स्वप्न के देखने से मुझे बड़ी बेचैनी हुई। मैंने बड़ी नियम निष्ठा के साथ साधन करना आरम्भ कर दिया। गुरुदेव के पास बहुत जल्द चले जाने की इच्छा हुई। तब एक दिन स्वप्न में देखा—एक जगह हरिसंकीर्तन की बड़ी धूमधाम मची हुई है। सकीर्तन में मस्त होकर बहुत से आदमी भाव के आवेश में बेहोश हो गये हैं। 'दयालु निताई, दयालु निताई' कहकर सभी रो रहे हैं। मैंने सोचा—निताई पतितपावन हैं, उन्हें बुलाऊँ। यह सोचकर 'दयालु निताई, दयालु निताई' कहते-कहते मैं रोने लगा। इस स्वप्न को देखने पर भी मुझे शांति न मिली, सदा मालूम होने लगा कि अपने दोष से ही मैं

दुर्लभ अवस्था को खो बैठा हूँ। मेरा समय पछतावे और क्लेश में बीतने लगा। एक दिन बड़ी व्याकुलता से मैं अपनी दुरवस्था श्रीगुरुदेव को सुनाकर सो गया। रात को स्वप्न में देखा— बहुत से लोगों को साथ लिये हुए श्रीगुरुदेव एक महासङ्कीर्तन में जा रहे हैं। मैं अपनी दुरवस्था से मुर्दार सा होकर एक ओर खड़ा रहा। गुरुदेव ने मुझसे कहा—'चलो, सङ्कीर्तन में चलें ; आज कीर्त्तन में तुमको विशेष कृपा प्राप्त होगी।' मैं अपने को पतित समझकर, हाथ जोड़कर काँपने लगा। ठाकुर की ओर देखकर मैं रो पड़ा। तब गुरुदेव ने मुझे पकड़कर गोद में चढ़ा लिया। ठाकुर को देखकर उनका शरीर पत्थर की तरह कड़ा जान पड़ता था, किन्तु गोद में पहुँचा तो उनका शरीर रुई की तरह नरम मालूम होने लगा। सङ्कीर्तन के स्थान में मुझे गोद से उतारकर कहा, 'थोड़ी देर तुम यहाँ पर बाट जोहो। हम अभी लौटकर आते हैं।' अब समीप के एक मकान में चले गये। इसी समय मेरी आँख खुल गई।

यह स्वप्न देखने के बाद ठाकुर की दया का खयाल करने से मुझे बहुत शान्ति मिली, किन्तु गुरुदेव की असाधारण कृपा से जो अद्भुत अवस्था प्राप्त हो गई थी वह फिर वापस न मिली। दाता तो वही अकेले हैं, उनकी दया से पल भर में फिर वह अवस्था मुझे मिल सकती है, यह सोचकर शान्त चित्त से साधन-भजन करने लगा।

गुरुवाक्य में विश्वास न होने से दुर्दैव

की तैयारी करते ही पण्डों ने मुझे घेर लिया। सङ्कल्पमन्त्र बिना पढ़े दशाश्वमेध पर स्नान न करने देंगे, यह कहकर शोर-गुल मचाने लगे। तब मैंने यह कहकर उन्हें भगा दिया कि 'मैं न तो मन्त्र-तन्त्र समझता हूँ और न देवी-देवता को ही मानता हूँ'। विश्वनाथजी के मन्दिर में जाने के रास्ते में फिर पण्डों का उपद्रव शुरू हुआ। वे लोग कहने लगे कि दो-चार आना पैसे मिलने से ही वे लोग प्रसन्न होकर मुझे सुभीते से दर्शन करा देंगे। कोई-कोई दो चार पैसे की फूल और बिल्वपत्र की डाली मेरे आगे रखकर पैसे के लिए मुझे दिक करने लगा। इस सबको पैसा वसूल करने की हिकमत समझकर मैंने सबको धमकाकर कहा—'अन्धे, लूले-लँगड़े और बुड्ढे-बुड्ढियों को दर्शन कराकर पैसे वसूल करो। उन्हीं को पण्डे की ज़रूरत है, मैं स्वयं अच्छी तरह दर्शन कर लूँगा'। फूल और बेलपत्ती मोल लेने में नाहक पैसे बर्बाद न करूँगा। जो विश्व के नाथ हैं वे क्या फूल और बेलपत्ते के भूखे हैं? फ़िज़ूल खर्च के लिए पैसा नहीं है।' मेरी बातें सुनकर सभी 'अरे राम राम' कहकर अलग हो गये। मैं मन्दिर के दरवाज़े पर पहुँचकर, बेहद भीड़भाड़ देखकर, विस्मित हो गया। बड़ी कोशिश करने पर भीतर पहुँचा; किन्तु बहुत लोगों के धक्के लगने से दीवार के पास जा खड़ा हुआ। इतनी स्त्रियों और पुरुषों को ठेल-ठालकर विश्वेश्वर के दर्शन करना मैंने अपने लिए असम्भव समझा। तब मैं बाहर निकल आने की चेष्टा करने लगा। इसी समय एक सुन्दरी युवती ने, मौक़ा पाकर, लोगों के शोर गुल के बीच कई हिकमतों से मुझे बेचैन कर डाला। आफ़त समझकर मैं बड़ी मुश्किलों से बाहर निकल आया। विश्वनाथ के दर्शन न होने का मन में किसी प्रकार की घबराहट नहीं हुई; बल्कि यह सोचकर मैं सन्तुष्ट ही हुआ कि बेढब झमेले से छुटकारा मिल गया। डेरे को लौटते समय रास्ते में अच्छे-अच्छे कमण्डलु देखकर मोल लेने की इच्छा हुई। दाम देने के लिए पाकेट को टटोला तो खाली पाया। भीतर के कुर्ते में, ऊपर की जेब में, ३५) रक्खे हुए थे; किन्तु उसमें एक भी न रह गया। इसका मुझे बड़ा क्लेश हुआ। तब सोचा कि यदि पण्डों को आठ दस आने पैसे देकर मैं मन्दिर में जाता तो वे मेरे लिए दर्शन करने का सुभीता आसानी से कर देते। किसी और तरह का उपद्रव भी मुझे न सहना पड़ता, और इस तरह से रुपयों की हानि भी न होती। शास्त्र के नियम की मर्यादा न करने के कारण, इसे अपने ऊपर गुरुदेव का दण्ड ही समझकर मैं पछतावा करने लगा। अब काशी में ठहरने का मुझे उत्साह न रहा; जी उचटने के

तरह-तरह के कारण उपस्थित हो गये। मैं बिना देर किये काशी से रवाना होकर भागलपुर पहुँचा। यहाँ पर योगजीवन के साथ थोड़ा समय बड़े आनन्द में बिताया। फिर कलकत्ते चले आया।

मानिकतला की माँ

कलकत्ते में आकर एक हफ्ते भर ठहरा। मानिकतला की माताजी से भेंट करने के लिए दादा ने मुझसे कह दिया था; मैं अपनी हमजोली के दो मित्रों को लेकर मानिकतला की माताजी के घर गया। माताजी के स्वामी, दादा के परिचय से मुझे पहचान कर, बड़े आदर के साथ सब को भीतर ले गये। उस समय, भाव की उमङ्ग में माताजी की समाधि लगी हुई थी। जोर जोर से हरिनाम का उच्चारण करते-करते, ५।७ मिनट के बाद, उनको चेत हुआ। उन्होंने बड़े दुलार के साथ मुझसे थोड़ा सा जल-पान करने के लिए कहा। यह कहने से कि 'मैं प्रसाद के बिना और कुछ नहीं खाता,' माताजी ने कहा 'मिट्टी को स्पर्श कराके खाना, ऐसा होने से ही माता का प्रसाद मिलना हो जायगा। माता के गर्भ से निकलने पर सब से पहले उसी माँ का सहारा लेना पड़ता है, मिट्टी ही वास्तविक माता है। इसी माँ को निवेदन करके, मिट्टी में स्पर्श करा लेने से, वस्तु का अपवित्रता दोष चला जाता है।'

माताजी ने अपने आप मुझे अनेक उपदेश दिये। उन सारी बातों का कुछ भी मतलब मेरी समझ में नहीं आया; तत्त्वज्ञान की बहुत ही दुर्बोध बातें, विशुद्ध भाषा में, धड़ाधड़ कहने लगी। कोई दो घण्टे तक बेधड़क वक्तृता दी। इस समय उनकी तेजपूर्ण भाषा की योजना, शब्दों की परिपाटी और सुश्रृंखला देखकर हम लोगों को बड़ा अचरज हुआ। उनकी वक्तृता समाप्त होने पर मैंने कहा कि मैंने तो कुछ भी नहीं समझा। माताजी बोलीं—तुमको देखने से हृदय में एक तरह का भाव हो आया; अपने आप जो मुँह में आता गया वह कह डाला है। मैं स्वयं भी नहीं जानती कि मैंने क्या-क्या कहा है। अभी मैंने जो बातें कही हैं इनका स्मरण तुम उस समय करोगे जब तुम्हें ये अवस्थाएँ प्राप्त होंगी। जान पड़ता है कि तुम गोस्वामी के शिष्य हो। वह मामूली लड़का नहीं है। जिन्होंने उनका आश्रय लिया है, वे सोलहों आने निडर हो गये हैं; यह भली भाँति समझ रक्खो, शिष्यों के हृदय में उन्होंने नित्यधाम बना लिया है; चाहे जिस तरह चलो, समय पर वे सब सँभाल लेंगे।

माताजी की बातें मुझे बहुत अच्छी लगीं। ठाकुर के मुँह से माताजी की बहुत प्रशंसा सुन चुका हूँ। बिना ही साधन किये, पिछले जन्मों के संस्कार के बल से, बहुत सी अद्भुत शक्तियाँ इनको यों ही प्राप्त हो गई हैं। कोई दस वर्ष से कुछ खाती-पीती नहीं है, फिर भी खासी तन्दुरुस्त हैं। रूप की उज्ज्वलता और चेहरे की प्रभा देखकर सभी समझते हैं कि इनकी देह में किसी देवी का आविर्भाव है। माताजी के असाधारण स्नेह और ममता होने से मैंने अपने को धन्य समझा।

हरिचरण बाबू और लाल का पछतावा

कलकत्ते से आकर, ढाका में, गेंडारिया-आश्रम में एक सप्ताह तक ठहरा। भजनानन्दी, संसारत्यागी गुरुभाई श्रीयुक्त नवकुमार बागची और पण्डित श्रीयुक्त श्यामाकान्त चट्टोपाध्यायजी के साथ में बड़ा आनन्द मिला। ढाका के सभी गुरुभाइयों के साथ ही मेरी भेंट हुई। एक दिन श्रीयुक्त हरिचरण चक्रवर्तीजी मुझे अपने डेरे पर ले गये। उन्होंने आग्रह के साथ पूछा कि श्रीवृन्दावन में ठाकुर ने उनके सम्बन्ध में क्या कुछ कहा था। मैंने कहा—सुना है कि आप ३।४ गुरुभाई, ठाकुर की आज्ञा न मानकर, ब्रह्मचारीजी के यहाँ आते-जाते रहे हैं, इससे आप लोगों की बड़ी हानि हुई है; ब्रह्मचारीजी के उपदेश के अनुसार अद्वैतवाद और प्रारब्ध संस्कार के फेर में पड़कर आप लोग साधन-भजन छोड़ बैठे हैं; गुरुदेव के दिये हुए साधन में आप लोगों की निष्ठा, भक्ति पहले की तरह नहीं रह गई है; बल्कि आप लोग इस साधन के विरोधी हो गये हैं। इसी से ठाकुर ने बातों ही बातों में एक दिन कहा—**ये लोग यदि अब से नियम के अनुसार साधन करने लगें तो शायद ५।६ वर्ष के बाद पिछली अवस्था को फिर प्राप्त कर लें। नहीं तो इस बार इसी तरह चले जाना पड़ेगा।**

हरिचरण बाबू ने कहा—गोस्वामीजी ने ठीक बात ही कही है। दीक्षा ले करके उनकी कृपा से जिस अपूर्व अवस्था का आनन्द ले चुके हैं वह अब दुर्लभ है; ब्रह्मचारीजी के यहाँ आते-जाते रहने से ही वह अवस्था जाती रही। अहा! गोस्वामीजी ने दया करके कैसे आनन्द में हमें रक्खा था। कितने दर्शन आदि होते थे; अब तो वह सब स्वप्न जान पड़ता है।

उन बातों की याद आने से अब दिन-रात जला भुना करते हैं। क्या अब फिर गोस्वामीजी मुझ पर कृपा करेंगे ? यह कहकर हरिचरण बाबू रोने लगे। मैं थोड़ी देर में चला आया।

असाधारण योगैश्वर्यशाली गुरुभाई श्रीयुक्त लालबिहारी के साथ गेंडारिया आश्रम में मेरा खूब हेल-मेल हुआ। सदा हम दोनों एक साथ ही रहकर ठाकुर की चर्चा में बड़े आनन्द से दिन बिताने लगे। एक दिन लाल ने मुझे गेंडारिया के सुनसान जङ्गल में ले जाकर पूछा—'भाई, गुरुजी के यहाँ पर क्या कुछ मेरी चर्चा हुई थी ? जो कुछ जानते होओ उसे छिपाओ मत, मुझे खुलासा बतला दो।' लाल के सम्बन्ध में जो बातचीत हुई थी वह सब मैंने साफ-साफ कह दी। सुनकर लाल थोड़ी देर तक चुप रह गये, चेहरा फीका पड़ गया, फिर गहरी साँस छोड़कर कहने लगे—'तुमने ठीक ही कहा है, उस समय जो ब्रह्मज्योति लगातार मेरे आगे प्रकाशित रहती थी वह तभी से बिलकुल गुप्त हो गयी है। शक्ति की बात, ऐश्वर्य की बात जाने दो, अब तो उसमें से कुछ भी नहीं है, अब तो अपना बचाव करना भी असम्भव हो गया है। रात दिन पछतावे के मारे, तकलीफ के मारे तड़पता रहता हूँ। ओहो! गोस्वामीजी ने मुझे कितना सावधान किया था, किन्तु उस समय मैंने उनकी बात नहीं मानी, जब मैं उनके यहाँ से आने लगा उस समय भी उन्होंने कहा था—"लाल ! बिलकुल गरमी छूट जाने पर, बहुत देर में मिट्टी की घास पर चन्द्रमा की किरण पड़ने से ओस की बूँद गिरती है, किन्तु अभिमान-सूर्य प्रकाश पड़ते ही पल भर में वह बिलकुल सूख जाती है, बहुत चौकन्ने रहना।" उस समय मेरी समझ में गोस्वामीजी की बात का मतलब नहीं आया, खैर, उससे मेरा नुकसान ही क्या हुआ है ? वे अवस्थाएँ मुझे कुछ साधन भजन करने, परिश्रम करने से तो प्राप्त हुई नहीं थीं अपनी वस्तु उन्होंने कृपा करके दी थी, मैंने उसका आनन्द लिया है। अब उन्होंने अपनी चीज़ वापस ले ली है, मैं पहले जैसा था वैसा ही अब भी हूँ। इस प्रकार लाल ने देर तक खेद प्रकट किया, फिर हम लोग गेंडारिया-आश्रम में चले आये।

छोटे दादा (श्रीयुक्त शारदाकान्त वन्द्योपाध्याय) के मुँह से माताजी की बीमारी का हाल सुनकर मैं बहुत घबरा गया। छोटे दादा को भी शरीर से बहुत कातर देखा। वे इस बार बी० ए० की परीक्षा देंगे। बीमारी की हालत में बहुत अधिक पढ़ते लिखते रहने से अब

बहुत ही अस्वस्थ हो गये हैं। परीक्षा दे सकेंगे कि नहीं, इसका खयाल करके समय समय पर बहुत ही हताश हो जाते हैं। छोटे दादा का कहना मानकर मैं घर को रवाना हो गया।

मेरा प्रतिदिन का काम। माता की सेवा से पूर्ण कल्याण की प्राप्ति

घर आकर मैंने माता को बहुत ही पीडित देखा। पित्तशूल के दर्द और आँव इत्यादि ने बुढापे में माँ को बहुत ही जर्जर कर दिया है। रात दिन बीमारी की तकलीफ के मारे सुस्त रहने पर भी बड़ी भारी गृहस्थी के सारे काम-काज की निगरानी और अपने भोजन के लिए कुछ रसोई का प्रबन्ध उन्हा को करना पडता है। अचल हुए बिना वे किसी दूसरे से सेवा नहीं करातीं। उनकी दुरवस्था देखने से मेरे दिल मे बडी चोट लगी। गृहस्थी का सारा भार और माता की सेवा-शुश्रूषा का जो कुछ काम था, वह सब मैंने सभाल लिया।

मार्गशीर्ष, सं० १९४७

मेरा मुद्दत का पित्तशूल का दर्द और वायुरोग बिलकुल दूर हो गया है। शरीर को भी खासा सबल नीरोग देखकर माँ ने पूछा—'तेरा यह रोग कैसे छूटा?' मैंने विस्तार के साथ माता को बतलाया कि मैं किस तरह बीमारी के दर्द से पागल-सा होकर, आत्महत्या करने के इरादेसे श्रीवृन्दावन को गया था और उस समय ठाकुर की कृपा से किस तरह रोग से छुटकारा पाकर मेरी जान बची है। 'ब्रह्मचर्य व्रत' को ग्रहण करने का हाल भी मैंने माता को साफ साफ बतला दिया। सब सुन लेने पर माता को बडा अचरज हुआ। गोस्वामीजी ने तेरी जान बचाई है, यह कहकर वे रोने लगीं। कहने लगीं—'जब तुझे ऐसे गुरु मिल गये हैं तब उन्हें छोडकर यहाँ क्यां चला आया? उनके साथ बना रहता तो तेरा और भी उपकार होता।' मैंने कहा, उन्हाने तो मुझे 'तुम्हारी ही सेवा करने के लिए घर भेजा है।' गुरु ने मुझे जो आज्ञा दी है उसको सुनकर कहने लगीं—'अच्छा तो गुरु की आज्ञा मानकर तू मेरी सेवा कर।' उनकी आज्ञा पाकर में सारे कामों का एक नियम बनाकर चलने लगा।

मैं प्रतिदिन रात के पिछले पहर आसन से उठकर टट्टी जाता और फिर ब्राह्ममुहूर्त्त में स्नान कर लेता हूँ; इसके बाद एकान्त में, कमरे में, अपने आसन पर बैठकर साधन

करता हूँ। फिर तिल, तुलसी, कुशोदक से, अथवा कभी पञ्चामृत से, विशेष-विशेष तिथियों में गाय के सींग में जल भरकर पितरों का तर्पण करता हूँ। इसके बाद माता के पास जाता हूँ। नीचे माथा टेककर मैं उनको प्रणाम करता हूँ। वे अपने दोनों पैर मेरे सिर पर रखकर पीठ पर हाथ फेरती हुई आशीर्वाद देती हैं 'तेरी मनोकामना पूरी हो, तू सुख से रहे।' मैं मन ही मन प्रार्थना करता हूँ 'मेरी सेवा से तुम चङ्गी हो जाओ ; तुम तृप्त होओ, और मेरे गुरुजी आनन्दित हों।' माता जब मेरे सिर पर और बदन पर हाथ फेरकर बड़े स्नेह से आशीर्वाद देती हैं तब मेरा सारा बदन शीतल हो जाता है। हृदय में एक अपूर्व आनन्द हुआ करता है, मालूम पड़ता है कि मैं धन्य-धन्य हो गया। माता के चरणों की रज और आशीर्वाद ले चुकने पर मैं आसन पर बैठा हुआ ६ बजे तक साधन-भजन करता हूँ। इस समय माताजी मेरे कमरे में आती हैं। गुरुगीता, भगवद्गीता और सूर्यस्तव आदि का पाठ उनको सुनाता हूँ। १० बजे उनके लिए रसोई करने जाता हूँ ; उस समय माताजी भी पूजा-पाठ करती हैं। जब तक वे पूजा पाठ करती हैं उतने समय में मैं रसोई म कर लेता हूँ। उस समय माता को दुबारा नमस्कार करके उनका चरणामृत लेता हूँ। शिव के मस्तक पर फूल-बिल्वपत्र चढ़ाकर नमस्कार करते-करते माताजी हाथ जोड़े हुए प्रार्थना करके कहती हैं—'ठाकुर! तुम उसकी मनोवाञ्छा पूरी करो।' पूजा समाप्त करके माँ भोजन करने बैठती हैं ; उनको रसोई परोसकर मैं भी उनके आगे प्रसाद पाने को बैठ जाता हूँ। भोजन करते समय माता को जो चीज़ अच्छी लगती है उसे वे स्वयं कम खाकर मेरी पत्तल में रख देती हैं। बड़े आनन्द के साथ माता के हाथ से उनका प्रसाद पा रहा हूँ ; मेरी बनाई हुई चीज़ों को खाकर माताजी प्रतिदिन बहुत सन्तुष्ट होती हैं ; उनको तृप्त देखने से मुझे जितनी प्रसन्नता होती है उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। इसी समय मुझे दयालु ठाकुर की बात याद आ जाती है ; उन्हीं की कृपा से मेरे लिए यह शुभ दिन उपस्थित हुआ है। भोजन कर चुकने पर गुरुदेव के शान्तिप्रद अभय चरणों को प्रणाम करके अपने आसन पर जा बैठता हूँ।

१ बजे से लेकर ३ बजे तक एकान्त में बैठकर नाम का जप करता हूँ। माता इस समय विश्राम करती हैं। ३ बजे वे मेरे आसनवाले कमरे में आकर बैठती हैं। तब मैं महाभारत, श्रीमद्भागवत और रामायण पढ़कर उनको सुनाता हूँ। इस समय मुहल्ले के और भी स्त्री-पुरुष आकर पोथी सुना करते हैं। ५ बजे तक यह काम करके आसन से उठता

हूँ। तब गृहस्थी के लिए हाट-बाज़ार करना, हिसाब किताब लिखना इत्यादि जो काम होता है उसे किया करता हूँ। शाम को माँ को नमस्कार करके दो-चार हमजोलीवालों के साथ भगवान् का नाम कीर्त्तन करता हूँ। फिर माता के पास जाता हूँ। रात को वे मेरे ही लिए, थोड़ा-सा जल पान करके मुझे प्रसाद देती है। जब वे लेटती हैं तब, कभी-कभी उनके पैरों में तेल की मालिश कर देता हूँ। थोडी देर तक वे मुझे छाती से लगाये पड़ी रहती हैं और मेरे सारे बदन पर हाथ फेरकर, माथे पर फूँक मारते-मारते, पेट पर बार-बार उँगली मारकर रक्षा-मन्त्र पढा करती हैं। माता के स्पर्श से मेरा शरीर और मन बिलकुल ठण्डा हो जाता है। उनका स्नेह देखकर इस समय मैं फफक-फफक कर रोता हूँ। जब नींद आने लगती है तब अपने आसनवाले कमरे में आकर लेट रहता हूँ। कभी बिछौने पर और कभी आसन ही पर लेट रहता हूँ। रात को लगभग १ बजे हाथ-मुँह धोकर, धूनी जलाकर, साधन करने को बैठ जाता हूँ। सवेरे पहर तक नाम का जप करते-करते भाव के आवेश में अथवा कभी झपकी लग जाने पर मेरा समय बीत जाता है। गुरुदेव ने मुझे इतने आनन्द में रक्खा है कि उसे प्रकट नहीं कर सकता।

घर पर रहकर प्रतिदिन एक ही नियम से, साधन-भजन करने और माताजी की सेवा में मेरा समय बीत रहा है; नित्य नये उत्साह आनन्द से, मेरी साधन भजन करने की इच्छा बढ़ने लगी। रात के पिछले पहर जान पड़ता है कि कब दिन निकलेगा, कब नित्यकर्म पूरा करके माता के चरणों की रज को माथे में लगाऊँगा; वे मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देंगी; कब उनका चरणामृत लूँगा और अच्छी अच्छी चीज़ें बनाकर माता को भोजन कराऊँगा। विशेष पूजा और उत्सव के दिन, सब को, जैसे एक उत्साह आनन्द हुआ करता है वैसे ही आनन्द की उमङ्ग प्रतिदिन, सवेरे पहर, मेरे मन में आ जाती है। गुरुदेव की असीम कृपा के कारण, माता की प्रसन्नता और आशीर्वाद मिल जाने से मैं सचमुच कृतार्थ हो गया हूँ, धन्य हो गया हूँ। अपने ऊपर ठाकुर की इस असाधारण कृपा का सदा स्मरण करके एकान्त में चिल्लाकर रोने को जी चाहता है; गुरुदेव जब दया करते हैं तब सब कुछ अनुकूल हो जाता है। माता की सेवा का हाल सुनकर बड़े भाई लोग सन्तोषपूर्वक आशीर्वाद देते हुए मुझे लिखते हैं—'साधन-भजन में तुम्हारी उन्नति हो, तुम सुख से रहो।' सगे-सम्बन्धी और अभिभावक

भी—जो कि पहले मुझ से नाराज थे—अब मेरे ऊपर बहुत सन्तुष्ट हैं, गाँव के बूढ़े ब्राह्मण भी मेरे दैनिक अनुष्ठान की जी भरकर प्रशंसा कर रहे हैं। ब्राह्म होने से अब तक मेरे ऊपर जिन्हें आन्तरिक विद्वेष और घृणा थी वे भी अब मेरे साथ धर्म-चर्चा में प्रसन्नता पाते हैं। सब बड़े-बूढ़ों का स्नेह, ममता और आशीर्वाद मिलने के कारण, नित नये उत्साह से, साधन भजन करके हृदय में एक अपूर्व शक्ति का अनुभव कर रहा हूँ। बड़े आनन्द से मेरे दिन-रात बीत रहे हैं।

गुरुकृपा का अद्भुत नमूना। छोटे दादा का रोग से छुटकारा

मैं साफ-साफ अनुभव कर रहा हूँ कि सद्गुरु की एक साधारण आज्ञा के प्रतिपालन की चेष्टा करने से भी, वही सूत्र के आकार में परिणत होकर, बहुत दूर पर स्थित शिष्य के चित्त को भी, अपने अनन्त महत् भाव के साथ संयुक्त कर रखती है। यह सूत्र है तो मकड़ी के जाले की तरह बहुत ही महीन फिर भी उसी के सहारे गुरु-कृपा की प्रबल धारा, बिजली के प्रवाह की भाँति वेग से आकर शिष्य के भीतर सञ्चारित होती है। गुरुजी की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ, इसका लगातार मन में खयाल बना रहने से मेरी यह धारणा जड़ पकड़ रही है कि गुरुजी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं। गुरुजी मेरी प्रार्थना सुन लेते हैं, कातर होकर कहने या ज़िद करके कुछ माँगने से वे उसे पूर्ण कर देते हैं, यह संस्कार मेरे जी में आ जाता है, और इसी के फलस्वरूप अपने ऊपर अत्यन्त विश्वास हो गया है। मुझे कई घटनाओं में, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिल चुका है, उनमें से दो-चार का ही उल्लेख करता हूँ।

कुछ दिन हुए, छोटे दादा का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है—'अकस्मात् छाती में दर्द होने से खटिया पकड़नी पड़ी है। लिखने-पढ़ने की शक्ति नहीं है, सदा बेहद दर्द बना रहता है। परीक्षा का समय समीप है, एक-एक दिन निकल जाने से बड़ी हानि हो रही है, जान पड़ता है कि इस बार पास न हो सकूँगा। तुम मेरे भले के लिए प्रार्थना करो।' छोटे दादा का पत्र पढ़ने ही मेरा दिल दहल गया, मैं व्याकुल होकर ठाकुर के चरणों में प्रणाम करके प्रार्थना करने लगा—'गुरुदेव! छोटे दादा की शारीरिक यन्त्रणा मुझ से नहीं सही जाती तुम दया करके झटपट उनके रोग का सञ्चार मेरी देह में कर दो। मैं इच्छा से, प्रसन्न

पूर्वक, तब तक क्लेश सहूँगा जब तक रोग आराम न हो जाय।' इस तरह प्रार्थना करके आसन पर बैठकर मैंने थोडी देर तक गुरुदेव का स्मरण किया; फिर प्राणायाम की प्रत्येक साँस में, रोग की कल्पना करके, हवा खींचकर रेचक के साथ अपना स्वास्थ्य छोटे दादा की रुग्ण देह में सञ्चारित करने लगा। इस तरह एकाग्रता से, प्राणपण के साथ, ध्यान और प्राणायाम करते-करते मुझे अपनी छाती में दर्द होने का अनुभव हुआ। क्रिया के साथ-साथ यह यन्त्रणा क्रमशः अत्यन्त बढ़ गई; तब अपने भीतर उत्साह पाकर, आग्रह से, बार-बार कुम्भक करके दृढ़ता के साथ उसे दबाकर हृदय में धारण करने लगा। थोडी ही देर में ठाकुर की इच्छा से, असह्य यन्त्रणा के मारे मेरा शरीर बहुत ही सुस्त हो गया। मैं तुरन्त ही 'जय गुरु, जय गुरु' कहते-कहते आसन से उठ बैठा। छोटे दादा को उसी समय पत्र लिख दिया। जिस दिन जिस समय मेरे भीतर इस रोग का सञ्चार हुआ उसकी साफ-साफ सूचना मैंने उनको दे दी। छोटे दादा का जो उत्तर आया उससे मालूम हुआ कि ठीक उसी दिन और उसी समय उनका दर्द घट गया है। ठिकाना है भला गुरुदेव की दया का! मुझे यह रोग बहुत दिन नहीं भोगना पडा।

इस घटना के कुछ दिन बाद छोटे दादा की बी०ए० की परीक्षा आरम्भ हुई; परीक्षा से ३ दिन पहले उन्हें ऐसे ज़ोरों का बुखार आया कि खटिया पकडनी पड़ी। उन्होंने मुझे इसकी सूचना दी। मैं सोमवार को सबेरे ६ बजे एक काम से, जैनसार गाँव को जा रहा था। रास्ते में मुझे छोटे दादा का पत्र मिला। समझ लिया कि उसी दिन उनकी परीक्षा आरम्भ होगी। यह खयाल करने से मेरे सिर में चक्कर आ गया कि रोग से छुटकारा पाकर छोटे दादा शायद परीक्षा में नहीं बैठ सके, जैनसार जाने के आधे रास्ते में, एक बड़े से बरगद के नीचे, मैं बैठ गया; छोटे दादा के चङ्गे हो जाने और परीक्षा में पास होने के लिए मैं व्याकुल होकर, ठाकुर से प्रार्थना करने लगा। कोई तीन घण्टे तक, एक ही दशा में, मैं जी भरकर रोया, विपत्ति आई हुई समझकर, लाचार होकर, मैंने ठाकुर पर सब विदित किया। इसी समय भीतर के क्लेश के मारे घबराहट से मैं करीब क़रीब बेहोश हो गया, थोडी देर में ठाकुर की कृपा से ही समझ लिया—'ठाकुर छोटे दादा पर दया करेंगे, छोटे दादा बिलकुल चङ्गे हो जायँगे। वे अवश्य ही परीक्षा में पास होंगे।' मैं तुरन्त ही उठकर जैनसार गाँव को चला गया। उसी समय डाकखाने में बैठकर छोटे दादा को पत्र

लिखा—'तनिक भी चिन्ता न कीजियेगा, गुरुदेव आपका भला करेंगे। परीक्षा में आप अवश्य पास होंगे। जान पड़ता है कि अब आपको बुखार बिलकुल नहीं आता। अपनी कुशल-सूचना भेजिए।' छोटे दादा ने मेरे पत्र का उत्तर दिया—"जिस दिन परीक्षा थी उसी दिन (सोमवार को) पथ्य पाकर बड़ी मुश्किल से मैं परीक्षा देने गया; रास्ते में अकस्मात् मेरे भीतर मानों एक तेज प्रविष्ट हुआ; मुझे अब किसी तरह की बीमारी की शिकायत नहीं है, भगवान् की कृपा से परीक्षा अच्छी ही है।" छोटे दादा का पत्र आ जाने से मेरा खटका दूर हो गया; गुरुदेव की अपार कृपा का स्मरण करके मैं रोने लगा।

प्रकृतिपूजा में दुर्दशा। श्रीश्रीगुरुदेव का अभयदान

घर आकर, गुरुदेव ने जैसा बताया था उस तरह ब्रह्मचर्य के नियमों का यथारीति पालन करके मैं साधन-भजन में दिन-रात बिताने लगा। गाँव के बूढ़े ब्राह्मण लोग, रिश्तेदार और बुजुर्ग लोग—जो कि अब तक मेरे ऊपर व्यवहारिक अनाचार के कारण बेतरह चिढ़े हुए थे—वे भी मेरी बहुत-बहुत प्रशंसा करने लगे। सभ्य, असभ्य, स्त्री, पुरुष प्रभृति सभी मुझे सदाचारी, चरित्रवान्, भजनानन्दी ब्राह्मण समझकर मेरी श्रद्धा भक्ति करने लगे। दूरवर्ती ग्रामवासी और पास पड़ोसवाले भी मुझे अपनी शारीरिक, मानसिक और गृहस्थी की अनेक प्रकार की दुरवस्था और दुर्घटनाओं का ब्योरा सुनाकर आशीर्वाद माँगने लगे; भगवान् की कृपा से किसी किसी का विकट बीमारी से पीछा छूट गया और आपत्तियों से छुटकारा मिल गया, इसलिए उन लोगों ने मेरे निकट ऐसी कृतज्ञता प्रकट करना आरम्भ कर दिया जिसका मैं अधिकारी नहीं। चारों ओर मेरी बहुत बहुत प्रशंसा होने लगी। मुझपर गुणों का आरोप सर्वथा निरर्थक है, इन कामों में मेरा तनिक भी हाथ नहीं है, इसे साफ-साफ जानते रहने पर भी सर्वसाधारण की की हुई प्रशंसा मुझे अच्छी ही लगने लगी। मैं समय-समय पर देखने लगा कि जिनके क्लेश से मेरे दिल को चोट लगती है, जिनकी विपत्ति का मुझपर असर होता है, उनकी भलाई की मैं इच्छा करता हूँ तो ठाकुर उन लोगों का भला करते हैं, उत्पात को शान्त कर देते हैं। यह सब देखकर मैंने सोचा कि—सैकड़ों आने नियमों की रक्षा करके चलता हूँ, दिन-रात साधन भजन किया करता हूँ। दस आदमी भी मेरे चरित्र की और अनुष्ठान की भरपूर प्रशंसा करते हैं; अतएव मैं तो सचमुच धन्य

धन्य हो गया हूँ। मन में इस तरह के भाव के आ जाने से अपने ऊपर मुझे बेहद विश्वास हो गया ; सोचा कि ठाकुर के अलौकिक ऐश्वर्य की कणिका का सञ्चार मेरे भीतर हो गया है ; उनकी असाधारण कृपा से अब मैं सचमुच आपदाओं के पार पहुँच गया हूँ। ऐसा संस्कार होने से धीरे धीरे मुझे गर्व हो गया ; स्फूर्ति और मौज में आकर सब लोगों के साथ मैं बेलटके हिलने मिलने लगा। मेरे चाल-चलन पर सबको बेहद विश्वास हो गया था इससे युवतियाँ भी, सङ्कोच न करके, जब चाहतीं तब सबके सामने और एकान्त में मेरे पास आने लगीं। सभी लोग अपने अपने मन की बात मुझे बतलाकर आराम पाने लगे।

एक दिन एक परमा सुन्दरी पूर्णयौवना ब्राह्मणकन्या ने आकर रोती आवाज़ में मुझसे कहा—"भीतर की असह्य जलन को मैं सहन नहीं कर सकती, तुम्हारी सूरत याद आते ही मेरी बुरी हालत हो जाती है। भोग की लालसा से मैं बेचैन हो जाती हूँ। मेरी इस कामना को तृप्त कर दो।" मैंने उससे कहा—'एक समय था जब तुमको मैं बेतरह चाहता था। अब मेरे उस लोभ को गुरुजी ने शान्त कर दिया है। मैं ब्रह्मचर्य ले चुका हूँ ; सदा के लिए उन कामों से मैं अलग हो गया हूँ।' युवती ने कहा—"तो फिर ऐसा उपाय बतला दो जिससे मेरा यह भाव चला जाय, मुझसे यह यातना सही नहीं जाती।" उसके क्लेश की बात सुनने से मेरे दिल में बड़ी चोट लगी। मैंने उसे दिलासा देकर कहा—'तुम बेफिक्र हो जाओ, मैं अवश्य ही तुम्हारी शान्ति के लिए प्रबन्ध करूँगा।'

इस घटना के बाद, सुबीता पाते ही उक्त युवती मेरे कमरे में आ बैठती थी ; मैं भी धर्म चर्चा के अनेक दृष्टान्तों से उसे संयम का उपदेश देता था। किंतु अवसर मिलते ही वह अपनी असह्य जलन के दूर करने का उपाय मुझसे गिड़गिड़ाकर पूछती थी। यद्यपि काम से उन्मत्त हुई कामिनी के कमनीय अङ्ग स्पर्श से मैं अपने देवदुर्लभ ब्रह्मचर्य के अतुल अमृतफल को पहले ही खो चुका था, तथापि इस समय गुरुजी की कृपा से अपनी कामशून्य अचञ्चल अवस्था पर बेहद गर्व होने से मैंने सोचा—सुना है कि विशुद्ध निर्मल हृदय से, निर्विकार कामशून्य दशा में, यदि कोई व्यक्ति प्रकृति के रतिमन्दिर में महाशक्ति की पूजा करे तो उससे कामिनी का काम भाव दब जाता है और उपासक की भी वास्तविक दशा की परीक्षा हो जाती है। तो मैं यही क्यों न करूँ ? युवती के अङ्ग को छूने की ही तो मेरे लिए

मनाही है,- दूर से पूजा करने में दोष ही क्या है इस तरह निश्चय करके मैंने रमणी को अपना इरादा बतला दिया , वह सन्तुष्ट होकर राजी हो गई।

माघ महीने की एक पवित्र तिथि को, एक विशेष कार्य के उपलक्ष्य में, मुहल्ले भर के लोग हमारे घर निमन्त्रण पाकर आये। उसी दिन को, इस काम के लिए अच्छा समय समझ कर, मैंने अपने सङ्कल्प के अनुसार शक्तिपूजा करने की तैयारी की। समिधा, घी, बिल्वपत्र, अतसी, जवा, अपराजिता, आदि के पुष्प, धूप और चन्दन आदि पूजा की सामग्री एकत्र करके मैं दिन को, दोपहरी में, युवती के पास पहुँचा , इशारा करते ही वह मेरा मतलब समझ गई और प्रसन्नता से मेरे पीछे-पीछे चली आई। हम दोनों तुरन्त ऐसी सूनसान जगह पहुँच गये जहाँ मनुष्य प्राणी नाम लेने को न था। फिर आसन पर बैठकर मैंने कामिनी से, तनिक अन्तर पर, बैठने के लिए कहा। इसके बाद सप्तशती के एक अंश का पाठ करके एकाग्र मन से थोडी देर तक गायत्री का जप किया। अब आग जलाकर एकाग्रता से अपने इष्ट के रूप का, जलती हुई आग में, ध्यान करने लगा। फिर जवा, अपराजिता और बिल्वपत्र को घी में मिलाकर, सावित्रीमन्त्र से कई बार अग्नि में आहुति दी और होम को समाप्त किया। इसके बाद हाथ जोडकर ठाकुर के चरणों में प्रणाम करके मैं कातर होकर प्रार्थना करने लगा—'आज मैं बड़े बेढब काम में प्रवृत्त हो रहा हूँ, मुझे इस समय हित या अहित का ज्ञान नहीं है, मैं मनोमुखी और मोहयुक्त हूँ, मेरी समझ में नहीं आता कि तुम क्या चाहते हो, तुम्हें बुलाया जाय तो तुमको पता लग जाता है, तुमसे कुछ कहा जाय तो उसे तुम सुना करते हो, इसी से ठाकुर, आज तुम्हें बुला रहा हूँ, तुम्हारे चरणों में गिरकर प्रार्थना कर रहा हूँ, इस दशा में वही प्रबन्ध कर दो जिससे भला हो। यदि तुम्हारी इच्छा न हो कि मैं प्रकृति की पूजा करूँ तो अकस्मात् किसी प्रकार का विघ्न करके मुझे इस चेष्टा से रोक दो , मैं पाँच मिनट तक और बाट जोहूँगा। इस समय के दर्मियान यदि कोई रुकावट न हुई तो मैं, अपने निश्चय के अनुसार, शक्तिपूजा करने लगूँगा। इस तरह की प्रार्थना करके, एकाग्र मन से मैं ठाकुर की पवित्र मूर्त्ति का ध्यान करने लगा। पाँच-सात मिनट निर्विघ्न बीत गये, इस समय मैंने अधीर रमणी से, तीन-चार हाथ की दूरी पर, शान्ति से ठहरने को कहा। मेरा इशारा पाकर कामिनी बडी प्रसन्नता से चप्पट धोती उतारकर खडी हो गई। तब देवी के लिए प्रिय अतसी, अपराजिता, जवा और बिल्वपत्र को अञ्जलि में लेकर मैंने सिर पर रक्खा।

फिर सप्तशती के 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, शक्तिरूपेण संस्थिता, शान्तिरूपेण संस्थिता' इत्यादि मन्त्रों को ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर बार-बार नमस्कार करके, साथ ही साथ रमणी के नख से लेकर शिखा तक के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग को मैं स्थिरता से ध्यान लगाकर देखने लगा। विचित्रता देखी—अकस्मात् उसकी नाभि के नीचे से लेकर आधी जाँघों तक का अंश गोल घनी काली छाया में बिलकुल छिप गया; दोपहर को साफ़ सूर्य का उजेला चारों ओर फैला हुआ है। अकस्मात् गोरे शरीरवाली रमणी के अङ्ग-विशेष में महाकाली का आविर्भाव हुआ। देर तक बार-बार देखते रहने पर भी घने काले रङ्ग के दर्मियान चमकीली काली बिजली की चमक के सिवा मुझे और कुछ भी न देख पड़ा। असम्भव दृश्य देखकर मेरी देह के रोंगटे खड़े हो आये। बार-बार शरीर चौंकने लगा। सिर पर रक्खी हुई अञ्जलि के फूलों को भगवती के चरणों के उद्देश से फेंककर मैंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् गुरुदेव की लीला अद्भुत है। भगवती योगमाया का अद्भुत खेल है। यह क्या दिखला दिया! यह मैंने क्या देखा! स्तम्भित होकर आसन पर बैठ गया। अकचकाकर ताकता रहा। अब देखा कि रमणी के गोरे मुख-मण्डल पर सुर्खी दौड़ गई है और ओष्ठाधर तनिक काँप रहे हैं; उसने बाँकी आँखों को नचाकर मनोहारिणी शोभा धारण की है। उसकी ओर देखकर मैं मुग्ध हो गया। उसके चञ्चल कटाक्ष ने विद्युद्वेग से मेरे भीतर कामोत्तेजना का सञ्चार कर दिया। विचलित अवस्था में सङ्कट की आशङ्का करके मैंने चटपट उससे हट जाने के लिए कहा। युवती ने मेरी बात को काटा नहीं, उसने होमाग्नि को प्रणाम किया। मैंने आशीर्वाद दिया—'मेरा जो होना हो सो हुआ करे, ठाकुर तुम्हारा भला करें।' वह चटपट सँभल गई और कपड़ा पहन कर अपने घर को चली गई। युवती के रवाना हो जाने पर मेरे भीतर अदम्य काम की उत्तेजना होने लगी। उमड़े हुए भाव को दबाने में प्राणायाम और कुम्भक आदि से सफलता न मिली। विपत्ति समझकर मैं चटपट आसन छोड़कर उठ बैठा।

इस दुःसाहसिक कार्य के साथ-साथ मेरी बेहद दुर्दशा का आरम्भ हो गया। नहीं मालूम, भगवान् गुरुदेव का क्या अभिप्राय है। युवती का काम-विकार तो बिलकुल ठण्डा पड़ गया, किन्तु मैं दिन-पर दिन कामाग्नि में भस्म होने लगा। जान पड़ता है, परम दयालु गुरुदेव ने उस अबला की अपूर्व सरलता देखकर उसकी जलन मिटा दी

और मेरे बेढङ्ग अनुष्ठान में बेहद लाग-डाँट और हठ देखकर उन्होंने कामपीडित कामिनी का कामभाव मुझ में सञ्चारित कर दिया। रात दिन कामाग्नि में जल-भुनकर मैं हाथ पैर पटकने लगा। सदा यही सोचने लगा कि यह जलन क्योंकर शान्त होगी, क्या करने से इस विपत्ति से निस्तार होगा। फिर मैंने तय किया—हाड-माँस को जलाकर कठोर साधन करूँगा। इसके अनुसार मैंने परिमित आहार (एक मुट्ठी अन्न) मे से तीसरा हिस्सा कम कर दिया। भोजन के कार्य में थोडा सा समय लगाकर मैं अवशिष्ट समय में, सुनसान जङ्गल में जाकर, साधन करने लगा। आराम करना छोड दिया, सोना प्राय बिलकुल बन्द कर दिया। सामने धूनी जलाकर, जो जान से साधन में सारी रात बिताने लगा। तन्द्रा को आते देखकर मैं एक पैर से खडा हो जाता अथवा कभी टहलता हुआ नाम का जप करते-करते रात बिताने लगा। जब नींद का गहरा झोंका आ जाता तब थोड़ी देर खड़े ही खड़े सो लेता था। तीनों वक्त स्नान करता था, खट्टे, मीठे, कडुवे आदि रसों का सेवन छोड दिया था और लोगों का साथ तक रोक दिया था। इन कामों को मैं बडी कडाई से करने लगा। इससे मेरी अहैतुकी उत्तेजना बहुत कुछ घट गई सही, किन्तु पिछली अवस्था किसी तरह प्राप्त न हुई। अकस्मात् पिछली घटना की तसवीर मन में आकर मुझे बेचैन करने लगी, मैं हताश हो गया। चारों ओर अँधेरा देख पडा, ठाकुर की कृपा बिना अपना उद्धार होना असम्भव देखकर मैंने उनको यही कई बातें लिखीं—

परमपूजनीय श्रीश्रीगोस्वामीजी के श्रीचरण-कमलों में,

आपकी आज्ञा पाकर मैं श्रीवृन्दावन से अयोध्या गया और वहाँ दो महीने के लगभग रहा। फिर घर आकर इतना समय माता की सेवा में बिताया। अबतक बडे आनन्द में था। आजकल मेरी जो हालत हो रही है उसे आप देखते ही हैं, अतएव लिखने में क्या लाभ है? तुरन्त बतलाइए कि इस समय पर मैं क्या किया करूँ। अपने मन के ऊपर मेरा अब तनिक भी काबू नहीं है। दया करके इस समय रक्षा करनी हो तो कीजिए। आप रक्षा न करेंगे तो इस समय मुझे और किसी का भरोसा नहीं है। आपके ही कहने आपकी ही दया और शक्ति पर भरोसा करके मैंने ब्रह्मचर्य लिया है। अब यदि व्रत भङ्ग हो जाय तो इसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूँ। पहले से मेरी आदतों को जानकर ही न आपने यह व्रत दिया है।

सेवक—श्रीकुलदा।

पत्र लिखने के बाद ही श्रीवृन्दावन से एकदम चार पत्र मेरे पास आ गये। स्वामीजी हरिमोहन ने लिखा है—"भाई, तुम्हारा पत्र पढ़कर गुरुजी ने तुरन्त हाथ हिलाकर जोर से—'मा भैः ! मा भैः ! मा भै. !' तीन बार कहा। तनिक चुप रहकर **'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'** कहकर, तुम्हें अभय देकर, पत्र लिखने को कहा; तुम्हारे जानने के लिए लिखा। निर्भय हो जाओ।"

योगजीवन ने लिखा है—"तुम को यह लिख देने के लिए गोस्वामीजी ने कहा है—**यदि घर पर रहने में असुविधा जान पड़े तो समय-समय पर गेण्डारिया में जाकर रहा करो। घबराना मत। हम लोग भी जल्द वहाँ आनेवाले हैं।**"

इसी प्रकार श्रीधर और माताठाकुराणी ने भी लिखा है—"तुम पर गोस्वामीजी की असीम कृपा है। तनिक भी चिन्ता नहीं है। आनन्द करो।"

इन लोगों के पत्रों द्वारा गुरुदेव ने न-जाने कौन सी अलौकिक शक्ति भेज दी है। पढ़ते समय हर एक के पत्र के प्रत्येक अक्षर से नया तेज, नया उत्साह विचित्र रीति से मेरे हृदय में सञ्चरित होने लगा। थोड़े ही समय में मेरे मन की मलिनता दूर हो गई और विमल आनन्द प्रवाहित हो गया। उत्साह और उमङ्ग के साथ प्रफुल्लित अन्तःकरण से मैं फिर भजनानन्द में दिन बिताने लगा। गुरुदेव की असीम कृपा को प्रत्यक्ष देखकर मैं दङ्ग हो गया। मैं बड़े आग्रह के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जब फिर अपने दयालु ठाकुर के श्रीचरणों को देखूँगा।

माता का आशीर्वाद और गोस्वामीजी के चरणों में मुझे सौंपना

बहुत दिन के बाद, इस दफे गङ्गास्नान का बहुत ही दुर्लभ बढ़िया (अर्द्धोदय) योग पड़ा है। पूर्वी बङ्गाल से हजारों मनुष्य गङ्गास्नान के लिए जाने को तैयार हो रहे हैं, इस उत्तम योग में गङ्गास्नान करने के लिए माता जी भी उकता रही हैं। घर-गृहस्थी में बहुत सी रुकावटों के होते हुए भी मैंने उन्हें गङ्गास्नान के लिए भेजने का निश्चय कर लिया। मैंने माता को भरोसा दे दिया कि बेखटके रहिए। पछाँह के तमाम तीर्थों के देख आने का सुभीता इस अवसर पर माता को मिलेगा। तीर्थयात्रा करने को

जाने से कई दिन पहले माता ने मुझसे कहा—"मैं तो तीर्थ करने चली, कुछ निश्चय नहीं कि देश में फिर कब लौटकर आऊँगी; अब मैं बहुत भली चङ्गी हो गई हूँ, तू भी अब नीरोग है; पछाँह से लौट आऊँ तो तेरा विवाह करा दूँगी।" तब मैंने उन्हें खुलासा बतला दिया कि मैं ब्रह्मचर्य व्रत के नियमों का पालन करता हूँ और धर्मजीवन बिताने की मेरी इच्छा है। यह भी समझाकर कह दिया कि अगर मैं विवाह कर लूँगा तो फिर मुझे रोग घेर सकते हैं। मेरी बातों को ध्यान से सुनकर माता ने कहा—"यदि तू विवाह अथवा नौकरी न करेगा तो मेरी गृहस्थी में तनिक भी गड़बड़ न होगी। मेरे और सब लड़के तो घर-गृहस्थी सँभाले हुए हैं। मैं तो तेरे सुख के लिए ही तुझसे विवाह करने को कहती हूँ, गृहस्थ बनने के लिए कहती हूँ। सो यदि अच्छा न लगा तो कुछ जरूरत नहीं है। घर-गृहस्थी में सुख नहीं है, सुख की अपेक्षा झंझट ही अधिक है। यदि धर्म लेकर रह सके तो इससे बढ़कर और क्या है! तेरा जी चाहे तो धर्म-कर्म लेकर ही रह।"

मैंने कहा—तुम सन्तुष्ट होकर अनुमति दे दो तो मैं गुरुजी के पास रह सकता हूँ, उन्होंने मुझे तुम्हारी सेवा के लिए भेजते समय कहा था—"जाकर माँ की सेवा कर। **सेवा से सन्तुष्ट होकर वे अपने कर्म-बंधन से जब तुझे छुट्टी दे देंगी तब हमारे पास आकर रह सकेगा।"**

माँने कहा—"अच्छा, तेरी सेवा से तो मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ, अपने काम-काज से मैं तुझे छुटकारा देती हूँ। घर में रहने से धर्म-कर्म नहीं निभता, गोस्वामीजी के पास जाकर रहने लग। इससे तेरा भी लाभ होगा और मेरे भी जी को तसल्ली रहेगी।

मैंने कहा—ठाकुर ने मुझसे कहा था—"सेवा द्वारा माता को सन्तुष्ट करके उनकी अनुमति ले आना, किसी प्रकार हिकमत से अनुमति ले आने से काम नहीं चलेगा।" सो तुम यदि सचमुच मेरे सेवा करने से सन्तुष्ट हो गई हो तो हमारे ठाकुर को एक बार इसकी सूचना दे दो। यदि तुम उनके चरणों में मुझे धर्मार्थ अर्पण कर दो तो मेरा परम कल्याण होगा, और तुम्हें भी पुत्र-दान का महान् फल मिलेगा।

माँने कहा—"मैं स्वयं तो धर्म-कर्म कुछ कर नहीं सकी। तुम लोग अगर कुछ कर सको तो उससे भी मेरा लाभ होगा। तेरी इस इच्छा में भला मैं क्यों रोक-टोक करने लगी! सन्तुष्ट होकर ही तुझे गोस्वामीजी के हाथ में देती हूँ।"

मैंने कहा—तो तुम मेरे गुरुजी को इस आशय का एक पत्र लिख दो कि 'अपने छोटे लड़के को, धर्मार्थ, आपके चरणों में समर्पण कर दिया। आप ऐसा कीजिये जिसमें उसको धर्म प्राप्त हो।'

माँ ने कहा—अच्छा, कागज़ कलम ले आ। इसी दम मेरी तरफ़ से गोस्वामीजी को पत्र लिख दे।

उनकी बात सुनते ही मैंने कागज़-कलम लाकर सामने रख दी। माँ ने मेरी मँझली भावज के द्वारा निम्न आशय का पत्र लिखवाकर श्रीवृन्दावन में ठाकुर के पास भिजवा दिया :—

सविनय निवेदन—

मेरे छोटे बेटे श्रीमान् कुलदा ने, आपकी आज्ञा से घर आकर, अनेक प्रकार से मेरी सेवा-शुश्रूषा करके मुझे बहुत ही सुख दिया है। मैं उसे अब अपने कर्मपाश में नहीं बाँधे रखना चाहती। मैं सन्तुष्टचित्त से श्रीमान् कुलदा को धर्मार्थ सोलहों आने आपको सौंपती हूँ। उसकी हालत देखकर मैं नहीं चाहती कि "वह विवाह आदि करके गृहस्थी का काम सँभाले"; अतएव आप चाहे जिस तरह ऐसा करें जिसमें धर्म को प्राप्त करके और आपके कहे में रहकर श्रीमान् कुलदा को सदा शान्ति मिले। कुलदा के आनन्द में रहने से ही मुझे सुख मिलेगा। उसे आप अपने साथ रक्खेंगे तो मेरे मन में उसके लिए कुछ चिन्ता न रहेगी।

नि:—श्रीमान् कुलदा की माता

पत्र लिखवाकर माँ ने मुझसे कहा—'मेरी दो बातों को तू याद रखना—(१) मेरे मरने पर तू एक ब्राह्मण को सीधा दान करना। (२) और जब तक जीता रहे तब तक भर-पेट खाना।'

मैंने कहा—'भविष्यत् मे मेरे भाग्य में बहुत उलट-फेर हो सकता है ; पेट भर खाने को अगर न मिले तो?'

माँ ने कहा—'मैं आशीर्वाद देती हूँ, परमेश्वर तुझे भोजन का कष्ट कभी न होने देंगे। तुझे सदा भर-पेट खाने को मिलेगा। भर-पेट खाना ; इससे अन्तरात्मा तुष्ट रहेगा।'

मैंने कहा—तुम्हारी मृत्यु के समय यदि मैं समीप न रहूँ, बहुत दिनों बाद मुझे

तुम्हारी मृत्यु की खबर मिले और उस समय मेरे हाथ में रुपया-पैसा अथवा दाल-चावल न हों तो क्या करूँगा ?

माँ ने कहा—'यदि ऐसा ही हो तो जब मेरे मरने की खबर मिले तभी सुभीता देखकर ब्राह्मण को एक सीधा दे देना। कुछ पास में न हो तो भीख माँगकर दे देना।'

माँ की बात सुनने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे परम कल्याण का मार्ग आज माताजी ने साफ कर दिया। मेरा संसार में आने का उद्देश्य, माता की कृपा से, आज ही सार्थक हुआ। माता की दया से ही मुझे गुरुदेव की निमल शान्तिपूर्ण दुर्लभ चरण-रज के साथ संलग्न होकर रहने का अवसर मिला। जय गुरुदेव ! तुम्हारी कृपा सब शुभों और सौभाग्य की मूल है, आशीर्वाद दीजिए कि मैं इस बात को कभी भूल न जाऊँ।

श्रीवृन्दावन में ठाकुर ने एक दिन मुझसे बातों ही बातों में कहा था—'तुम्हारी माँ अब बुढ़िया हो गई हैं, अब उन्हें घर में क्यों रखते हो ? उनकी गृहस्थी तो अब हो चुकी। अब गृहस्थी तो तुम्हारी भौजाइयों की ही है। वे ही अब घर-द्वार को सँभालें, गृहस्थी चलावें। तुम्हारे बड़े भाइयों को चाहिए कि माता को तीर्थ-वास करावें। अब उन्हें काशी में अथवा श्रीवृन्दावन में वास कराने से ही उनका वास्तविक लाभ है। उनके लिए श्रीवृन्दावन की अपेक्षा काशी ही उत्तम है। तुम लोगों को इस काम में उद्योग करना चाहिए।'

जब से ठाकुर की ये बातें सुनीं तभी से माता को घर-गृहस्थी के जञ्जाल से हटाकर काशी में रखने की प्रबल इच्छा थी। मैंने इसके लिए बड़े दादा से भी खास तौर पर अनुरोध किया था। इस दफे मौक़ा पाकर, बहुत विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी, ठाकुर की बात को याद करके माँ को तीर्थस्थान में भेज दिया। माताजी भली-चङ्गी हालत में पहुँच को रवाना हो गईं।

परीक्षा में पास न हुए तो आत्महत्या कर डालेंगे। मैंने जिद करके छोटे दादा से कहा—'आपके पास होने के लिए मैंने गोस्वामीजी से प्रार्थना की है। वे अवश्य ही आपको पास करा देंगे।' छोटे दादा ने कहा—"मैं विश्वास नहीं करता कि गोस्वामीजी में वैसी कुछ अलौकिक शक्ति है। अच्छा, यदि वही हो तो मैं एक 'प्रोबलम' (Problem) देता हूँ, उसे वे 'साल्व' (Solve) कर दें।" छोटे दादा की ऐसी बातों का मैं कोई बढिया उत्तर नहीं दे सका। मैंने उन्हें 'योगसाधन' पुस्तक पढने के लिए इस इच्छा से दी जिसमें वे गोस्वामीजी से दीक्षा ले लें। उसे पढ़कर उन्होंने कहा—"ब्राह्मधर्म के मत के साथ जो नहीं मिलता वह कुसंस्कार है। मैं ऐसी बातों को नहीं मानता। गोस्वामीजी को धर्मात्मा तो समझता हूँ, किंतु मुझे विश्वास नहीं कि उनके शिष्यों को कुछ मिल गया है।" मैंने छोटे दादा की बातों का खण्डन नहीं किया, चुप रह गया। फिर बातचीत में मौक़ा मिलते ही धीरे धीरे गोस्वामीजी की महिमा का वर्णन करके उनकी ओर छोटे दादा के मन को आकृष्ट करने की चेष्टा करने लगा। गोस्वामीजी की तरह-तरह की असाधारण दशाओं का हाल सुनते-सुनते उन पर छोटे दादा की थोडी सी श्रद्धा भक्ति हो गयी। अब मैं उनसे बार-बार अनुरोध करने लगा कि गोस्वामीजी से दीक्षा ले लीजिये। तीन चार दिन तक इस बात की छान-बीन होती रही कि दीक्षा लेने की आवश्यक्ता ही क्या है, इसके बाद छोटे दादा ने कहा—"अच्छा, जो हम इस बार परीक्षा में पास हो जायँगे तो गोस्वामीजी से दीक्षा ले लेंगे।" मैं भी बडे आग्रह के साथ उनके पास होने की खबर की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिनों के बाद उनके पास हो जाने की खबर मिली। तब मैंने उनसे दीक्षा लेने के लिए तैयार होने को कहा। छोटे दादा ने कहा—"जब गोस्वामीजी से दीक्षा लेना मैं स्वीकार कर चुका हूँ तब लूँगा जरूर, किंतु मैंने यह तो कहा नहीं है कि इसी दम ले लूँगा। अभी मेरी तन्दुरुस्ती ठीक नहीं है, तबियत ठीक हो जाने पर लूँगा।" मैंने कहा—"सभी को मालूम है कि मैं कितना बीमार था, किन्तु गोस्वामीजी की कृपा से अब बिलकुल चङ्गा हो गया हूँ। आप भी दीक्षा लेने से तन्दुरुस्त हो जायँगे।

छोटे दादा—"योग-साधन करने के जितने नियम हैं उनका पालन अभी मुझसे न हो सकेगा।"

मैं—गोस्वामीजी आप से किसी ऐसे नियम का प्रतिपालन करने के लिए न कहेंगे जिसका पालन करने में आपको असुविधा होगी।

अन्त में छोटे दादा ने स्वीकार कर लिया कि गोस्वामीजी के गेण्डारिया में आते ही वे उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना करेंगे। मेरी भी फिक्र दूर हुई।

माता योगमाया देवी का अन्तर्धान होना। लालजी का शरीरान्त

बड़े दादा के पत्र से मालूम हुआ कि 'माताठाकुराणी योगमाया देवी का श्रीवृन्दावन-वास हो गया। १० फाल्गुन, १२६७ साल की माघ शुक्ल १३ को एक दिन के हैजे से ही उन्होंने शरीर छोड़ दिया। योगजीवन के द्वारा ठाकुर ने यह खबर दादा को दिलाई है।' अकस्मात् यह खबर सुनने से मैं बिलकुल सन्न हो गया। ठाकुर की और माताठाकुराणी की बातों के ढंग से कई बार मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ था कि श्रीवृन्दावन से माताठाकुराणी वापस नहीं जायँगी, वहीं पर रह जायँगी। किस तरह, किस हालत में उन्होंने शरीर छोड़ा है, इसका खुलासा हाल जानने के लिए मैं उतावला हो उठा। इसी बीच फिर खबर मिली कि जीवन्मुक्त, जातिस्मर गुरुभाई लालबिहारी बसु भी, इसी समय के लगभग, एक दिन अपनी मर्जी से एक दिन अकस्मात् गेण्डारिया को अँधेरा करके परम धाम को चले गये। इन बुरी खबरों के मिलने और दो एक अन्य घबराहट पैदा करनेवाले कारणों से मैं बेचैन हो उठा। मैंने श्रीवृन्दावन जाने का विचार करके ठाकुर से पूछा। ठाकुर ने योगजीवन से उत्तर लिखवाया—'हम शीघ्र ही गेण्डारिया आ रहे हैं। सुभीता हो तो तुम अभी से वहाँ जाकर रहने लगो।' पत्र पाकर मैंने चटपट गेण्डारिया जाने का निश्चय कर लिया।

छोटे दादा की दीक्षा और अद्भुत घटना। अनेक प्रश्न

रात के पिछले पहर आसन पर बैठे बैठे ही मैं बेहद बेचैन हो गया। बारबार ऐसा

चैत्र कृ० द्वितीया, शुक्रवार

जान पड़ने लगा कि ठाकुर गेण्डारिया में आ गये हैं। तब कर लिया कि आज ही ढाका चला जाऊँगा। बहुत खुशामद करके मैंने छोटे दादा से अपने साथ ही गेण्डारिया चलने के लिए कहा। इच्छा न रहने पर भी वे राजी हो गये। महीने भर के लायक दाल, चावल, नमक, मिर्चा, तेल, घी आदि भोजन की कुल चीजें एकट्ठा कर लीं। फिर दस बजे के लगभग ढाका के लिए चल पड़े।

मजूर नहीं मिला, इससे भारी बोझ की गठरी दादा ने मुझे न लेने देकर बीमार होते हुए भी स्वयं अपने कन्धे पर रक्खी। तीन-चार मील रास्ता तय करके हम लोग सेराजदीघा के पार पहुँचानेवाली नाव पर सवार हुए। दिन डूबने से कुछ पहले हम लोग गेण्डारिया जा पहुँचे। आश्रम के पश्चिम ओर पण्डितजी के घर पहुँचते ही खबर मिली—ठाकुर कल ही आश्रम में आ गये हैं। दूर से देखा कि बेहद भीड़भाड़ है। ठाकुर आम के पेड़-तले बैठे हुए हैं। पिछले पाप की बात इस समय बार बार मुझे याद आने लगी। इसी से इतनी बड़ी भीड़ के भीतर ठाकुर के पास जाने की मेरी इच्छा न हुई। पण्डित दादा की कुटी में मन मारकर बैठा रहा। थोड़ी देर में ठाकुर उठे और पेशाब करने के लिए दक्खिन ओर की तलैया के पास गये, उस समय सब लोग आम के नीचे से चले आये। यही ठीक अवसर समझ कर मैंने छोटे दादा को, दीक्षा के लिए प्रार्थना करने को, ठाकुर के पास भेजा। ठाकुर हाथ मुँह धोकर ज्योंही अपने चरणों पर पानी डालने लगे त्योंही छोटे दादा 'अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः' मन्त्र को अस्पष्ट स्वर में पढ़ते-पढ़ते ठाकुर के चरणों पर गिर पड़े। फिर हाथ जोड़े हुए 'मेरे लिए क्या आज्ञा होती है' इतना ही कहकर कङ्काल की तरह खड़े रहे। छोटे दादा की ओर देखकर ठाकुर ने "कहाँ ठहरे हो? कब आये हो?" पूछकर उत्तर की बाट न देखकर ही कहा—'अच्छा तुम जाओ, हम कुलदा से कह देंगे।' ठाकुर को दुबारा नमस्कार करके छोटे दादा लौट आये। मैं तनिक अन्तर पर एक पेड़ की ओट में खड़ा था। वहीं से मैंने सब देख लिया। यह समझकर कि ठाकुर अवश्य ही छोटे दादा पर कृपा करेंगे, मैं तुरन्त उनके पास पहुँचकर उन्हें भरोसा देने लगा।

तीन वर्ष के दर्मियान ठाकुर ने छोटे दादा को नहीं देखा है। बहुत से मनुष्यों में किसी समय देखा भी हो तो उन्हें यह नहीं मालूम हुआ कि ये 'कुलदा के छोटे दादा' हैं। छोटे दादा को देखते ही ठाकुर ने कैसे पहचान लिया और उन्हें मेरा गेण्डारिया में आना ही कैसे मालूम हो गया, यह सोचने से छोटे दादा को बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी ही देर में, आम के नीचे खड़े होकर ठाकुर मुझे पुकारने लगे। मैं दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़ा। मुझे बड़े स्नेह की दृष्टि से देखते हुए ठाकुर कहने लगे—अपने दादा को कुञ्ज के घर ले जाओ। उनको अभी दीक्षा दी जायगी।

ठाकुर की आज्ञा पाकर मैं चटपट छोटे दादा को साथ लेकर घोष महाशय के घर पहुँचा। ठाकुर के पीछे-पीछे छोटे दादा उस मकान के पूर्व ओरवाले कमरे में गये। ठाकुर मुझे यह निगरानी करने के लिए कह गये कि कोई बाहरी आदमी कमरे के समीप न आने पावे। मैं मकान के चारों ओर चक्कर लगाने लगा। इतने में, साधन पाई हुई बहुत सी स्त्रियाँ और पुरुष आकर मकान के भीतर-बाहर जहाँ-तहाँ प्रसन्नता से बैठ गये। मैं नहीं जान सका कि आज दीक्षा प्रार्थी कितने व्यक्ति घर के भीतर गये हैं। परिचित व्यक्तियों में मैंने कुञ्जबाबू के परिवार की कुछ स्त्रियाँ और बङ्किम नामके एक कायस्थ लड़के को, छोटे दादा के साथ, ठाकुर के सामने साधन लेने को बैठा देखा। धूप, चन्दन, गुग्गुल आदि की सुगन्ध का धुआँ घर में भर गया। ठाकुर ने दीक्षा का कार्य आरम्भ कर दिया। साधन की नियम प्रणाली का उपदेश देकर ठाकुर जब ध्रुव, प्रह्लाद, नारद आदि सर्वश्रेष्ठ भगवद्भक्तों के कलेजे की वस्तु महामन्त्र का दान किया तब अद्भुत महाशक्ति की तरङ्ग ने उठकर सभी को कँपा दिया। प्राणायाम की रीति बतला चुकने पर 'जय गुरु!' 'जय गुरु!' कहते-कहते ठाकुर को बाहरी चेत न रहा। तब कमरे के क्या भीतर और क्या बाहर सभी लोगों के मन में एक बड़ी लीला होने लगी। गुरुभाई और गुरुबहनें सभी अनेक भावों से अभिभूत होकर, मूर्छित हो कर, गिरने लगे। चारों ओर बहुत से आदमियों के हँसने और रोने का विचित्र कोलाहल होने लगा। इसी समय छोटे दादा जोर-जोर से 'अखण्डमण्डलाकार' और 'अज्ञानतिमिरान्धस्य' मन्त्रों को पढ़-पढ़कर ठाकुर के चरणों के नीचे लोटने लगे। भावावेश के कारण गद्गद स्वर में ठाकुर कहने लगे 'अहा! अहा!! अहा!!!' बड़ा चमत्कार है! बड़ा चमत्कार है!! आज सत्ययुग की ध्वजा आकाश में उड़ी है, आज से सत्ययुग का आरम्भ हो गया, अहा देखो! कितने योगी, कितने ऋषि, कितने देवी-देवता आज सत्ययुग का झण्डा हाथ में लेकर नभोमण्डल में आनन्द से नृत्य कर रहे हैं; महापुरुष लोग आज पृथिवी के सब स्थानों में नृत्य करते हुए घूम रहे हैं। ऐसा शुभदिन फिर नहीं आता। यहाँ पर पचीस बीस योगी छद्म गुरु उपस्थित हैं। आज ये महापुरुष लोग पृथ्वीतल पर, संसार का भला करने के लिए, उतरे हैं। आज बड़े आनन्द का दिन है। धन्य! धन्य!! धन्य!!!

भाव के आवेश में ठाकुर ये बातें कह रहे थे कि अकस्मात् एक कम उम्र की लड़की

ठाकुर के आगे घुटनों के बल बैठ गई और भाव-विह्वल दशा में हाथ जोड़कर बार-बार ठाकुर को प्रणाम करके गद्‌गद स्वर में, तिब्बती भाषा में, ठाकुर की स्तुति करने लगी। फिर बीच-बीच में सब लोगों की ओर देखकर, उँगली के इशारे से, ठाकुर को दिखा-दिखाकर अनेक भाषाओं में असाधारण तेज के साथ आध घण्टे तक सबको अकचका डालनेवाला व्याख्यान देती रही। उसकी भाषा का वहाँ कोई जाननेवाला न था, और यद्यपि उसके एक भी शब्द का अर्थ समझ में नहीं आया तोभी तेजस्विनी के तेजःपूर्ण प्रत्येक शब्द के प्रभाव से हृदय के भीतर एक विचित्र शक्ति का प्रवाह होने लगा। व्याख्यान की मुग्ध कर देनेवाली शक्ति से सभी लोग प्रायः स्तम्भित हो गये। ऐसी असम्भव घटना ज़िन्दगी में और कभी नहीं देखी। सुना कि यह लड़की कुञ्ज बाबू की साली है, नाम अवला है; इसने भी आज ही दीक्षा ली है। इसने अपनी ज़िन्दगी में कभी तिब्बती बोली नहीं सुनी थी। बिना सीखी भाषा में इसने किस तरह धारावाहिक व्याख्यान दिया, इसका भेद जानने का मुझे बड़ा कौतूहल हुआ।

दीक्षा का कार्य हो चुकने पर सब को धीरे-धीरे शान्त और अच्छी तरह स्थिर करके ठाकुर कमरे से बाहर आये। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे चले। भावावेश की विभोर दशा में झूमते-झामते गुरुभाई लोग आश्रम में आये और एक-एक व्यक्ति एक-एक जगह जा बैठा। दो-चार व्यक्तियों के साथ पक्के कमरे में जाकर ठाकुर विश्राम करने लगे। मैं छोटे दादा को साथ लेकर उसी कमरे के बरामदे में जा बैठा। ठाकुर के साथ गुरुभाई लोग बातचीत करने लगे। कुञ्ज घोष के लड़के फणिभूषण की उम्र दस ग्यारह साल की होगी। उसने ठाकुर से पूछा—"दीक्षा के समय यह जो बुट बुट करके देर तक बोलती रहीं तो उनके भीतर क्या कोई स्पिरिट (प्रेतात्मा) प्रविष्ट हो गई थी ? कुछ समझ में नहीं आया कि उन्होंने क्या क्या कहा।"

फणि का प्रश्न सुनकर ठाकुर ने तनिक हँसकर कहा—दीक्षा-स्थान में जो बौद्ध योगी लोग उपस्थित थे उन्हीं में से एक ने उसके भीतर प्रवेश किया था। उन्होंने तिब्बती भाषा में भाषण किया था इसी से तुम लोग कुछ समझ नहीं पाये।

फणि ने कहा—आप तो वह भाषा जानते नहीं हैं। फिर आपकी समझ में कैसे आयी ? दूसरे की भाषा समझ लेने का क्या कोई अलग साधन है ?

ठाकुर ने कहा—इसी साधन से सब कुछ हो जाता है। सिर्फ संकेत मालूम रहने से ही काम हो जाता है। संकेत यह है कि किसी की भाषा समझने की इच्छा

होने पर सुषुम्ना में प्रवेश करके, संवित् शक्ति में मन को स्थिर करके, सुनना पड़ता है। ऐसा करने से न केवल मनुष्यों की ही, वरन् सारे जीव-जन्तु, पक्षी, वृक्ष और लताओं की भी भाषा का मतलब मालूम कर लिया जाता है। जब वह दशा प्राप्त होगी तब चेष्टा करने से ही समझ सकोगे।

ठाकुर ने इसी तरह और भी अनेक तत्त्वकथाएँ कहीं। वे बातें मेरी समझ में साफ साफ नहीं आईं। देर तक बरामदे में बैठा बैठा बाहर चला आया; देखा कि कहीं पर दो-चार गुरुभाई मिलकर प्रसन्नता से भजन गा रहे हैं, कहीं पर कोई चुपचाप बैठा हुआ नाम के आनन्द में मग्न है; आज आश्रम में बहुत लोग आये हुए हैं। सभी लोग बड़ी प्रसन्नता से अनेक प्रकार की दशाओं में समय बिता रहे हैं; कोई बातचीत कर रहा है, कोई कीर्तन का गीत गा रहा है, और कोई एकान्त में भजन कर रहा है; एक मेरे ही भीतर बेतरह शुष्कता है। मैं बेचैन होकर कभी तो गुरुभाइयों के पास और कभी ठाकुर के पास दौड़-दौड़कर आने-जाने लगा। मेरे भीतर जो अकारण शुष्कता थी उसकी जलन के मारे मैं तड़पने लगा। बहुत ही बेचैन होकर मैंने जाकर ठाकुर से कहा—'सभी तो आपके हैं। आप सब को आनन्द प्रदान करके आप सिर्फ मुझी को शुष्कता की आँच में क्यों जलाकर मार रहे हैं! यह जलन कैसे दूर होगी!'

ठाकुर ने कहा—"जिसके लिए जो वस्तु कल्याण देनेवाली है उसे वही भगवान् देते हैं। मनुष्य के भीतर यह शुष्कता बड़े भाग्य से आती है। जाकर बैठो और शान्ति के साथ नाम का जप करो। और तरफ ध्यान मत दो; नाम का जप करते-करते यह अपने आप चली जायगी।"

मैंने कहा—'मेरे हृदय को सरस कर दीजिए, मैं बैठकर नाम का जप करता हूँ।'

ठाकुर—"जिसके लिए जो कुपथ्य है उसीको रोगी के माँगने पर क्या डाक्टर दे दिया करते हैं? तनिक शान्त होओ, जाकर नाम का जप करो।"

और कुछ कहने का मुझे साहस न हुआ। बरामदे में छोटे दादा के पास बैठकर नाम का जप करने लगा।

श्रीवृन्दावन का पेड़ काटने में ब्राह्मण का उच्छेद

प्रायः आधी रात तक ठाकुर मेरे गुरुभाइयों से श्रीवृन्दावन की बातचीत करते रहे।

भीतर और बाहर बहुत से लोग बैठे हुए उसे सुनते रहे। कितने स्थानों में महापुरुष लोग किन किन रूपों में रहते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। श्रीवृन्दावन की रज को पाने की इच्छा से बड़े-बड़े सिद्ध महात्मा लोग वर्तमान समय में भी, अनेक रूपों मे, वहाँ पर मौजूद है। इस सम्बन्ध की एक घटना का उल्लेख करके ठाकुर कहने लगे—

"श्रीवृन्दावन में, किसी कुञ्ज में, एक सुन्दर पेड़ था। उस पेड़ को काट डालने की आज्ञा उक्त कुञ्ज के मालिक ने अपने मातहतों को दी। उन्होंने रात को सपना देखा कि एक वैष्णव वेशधारी ब्राह्मण आकर उनसे कह रहा है—'मैं तुम्हारे कुञ्ज में, उस वृक्ष के रूप में, मुद्दत से रहता हूँ। श्रीवृन्दावन की रज को प्राप्त करके धन्य होने की इच्छा से ही मैं वृक्ष बना हुआ हूँ। वृक्ष को काटकर कभी मुझे उस रज के स्पर्श से वञ्चित मत करना। अगर तुम काट ही डालोगे तो मुझे फिर जन्म लेना पड़ेगा, इससे तुम्हारा भी भला न होगा। स्वप्न को निराधार समझकर तुम मेरे इस अनुरोध को टाल मत देना। तुम्हारे विश्वास के लिए कल बड़े तड़के मैं पेड़ के तले एक बार खड़ा हूँगा, चाहो तो मुझे देख सकते हो।' अगले दिन बड़े तड़के पण्डितजी ने पेड़ के नीचे सचमुच एक ब्राह्मण को देखा, किन्तु इतने पर भी उन्हें विश्वास न हुआ। उन्होंने कुछ परवा न की। पेड़ को उन्होंने कटवा ही डाला। सब हाल सुन लेने पर भी जिन्होंने वृक्ष को काटा था वे हैज़े से बीमार होकर चल बसे। कई दिन के भीतर ही पण्डितजी की स्त्री और लड़के-बच्चों को भी हैज़े ने साफ़ कर दिया। वृन्दावन में पण्डितजी दर्शनशास्त्र के नामी विद्वान् माने जाते थे। किन्तु इस समय उनकी अक्ल गुम है, वे गूँगे बने बैठे हैं। पहले सभी लोग उनका बहुत-बहुत सम्मान करते थे, किन्तु अब कोई उनको तनिक भी नहीं मानता।"

ठाकुर के मुँह से ऐसी ऐसी बहुत सी बातें सुनकर हम लोग सो रहे।

गोस्वामीजी के मुँह से श्रीवृन्दावन की बातें

सवेरे शौचादि के बाद, स्नान-तर्पण कर चुकने पर मैं पूर्व ओर के कमरे में ठाकुर के पास जा बैठा। ठाकुर ने पूछा कि रात को तुम लोग कहाँ पर थे, किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हुई। मैंने ठाकुर को बतलाया कि

पण्डितजी के रसोईघर में हम लोगों ने रात को रहने का प्रबन्ध कर लिया है। ठाकुर ने कहा कि लोगों के चले जाने से जब भीड़ कम हो जाने तब आश्रम के दक्षिण ओर चार छप्परवाले मकान में रहने लगो। यह व्यवस्था हुई कि छोटे दादा दोनों वक्त आश्रम में ही भोजन करेंगे और मैं तीसरे पहर एक वक्त, पहले की तरह, अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करूँगा। छोटे दादा की चर्चा छेड़कर ठाकुर ने कहा— विचित्रता है! खासे सत्पात्र हैं, ऐसे बहुत ही दुर्लभ हैं। दीक्षा पाते ही, पल भर में, उनकी गुरुनिष्ठा की दिशा खुल गई है। ऐसा बहुत नहीं देखा जाता।

आज तीसरे पहर नारायणगञ्ज से वैष्णव धर्मावलम्बी एक ब्राह्मण देवता ठाकुर के दर्शन करने आये। उन्होंने ठाकुर से पूछा—प्रभु, श्रीवृन्दावन में क्या-क्या अद्भुत देखा? सुनने की इच्छा है।

ठाकुर ने कहा—"श्रीवृन्दावन अप्राकृत धाम है, वहाँ पर सभी तो अद्भुत है। श्रीवृन्दावन-भूमि के वृक्ष, लता, पशु, पक्षी सभी दूसरे प्रकार के हैं। अन्य किसी स्थान के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। वहाँ के सभी वृक्षों की शाखाएँ और पत्तियाँ नीचे की ओर झुकी हुई हैं। कई स्थानों में बड़े-बड़े पेड़ तक, लता की तरह, रज को छू रहे हैं। देखने से साफ मालूम होता है कि साधु वैष्णव महात्मा लोग ही, ब्रज की रज पाने के लिए, वृक्ष का रूप धारण किए हुए हैं। वृक्षों में देवी-देवताओं की साफ-साफ मूर्तियाँ अपने आप बनी हुई हैं। राधाकृष्ण, हरेकृष्ण प्रभृति नामों के अक्षर अपने आप वृक्षों में बनते रहते हैं। कहीं पर सिर्फ 'रा' और कहीं पर 'कृ' ही बना हुआ है। वृक्ष की नस-नस में इन स्वाभाविक अक्षरों को देखने से मुझे बड़ा अचम्भा हुआ है।"

वैष्णव ने पूछा—प्रभो, तो यह सब क्या सभी को देख पड़ता है? अथवा सिर्फ आपको ही देखने को मिला था?

ठाकुर ने कहा—"यह सब तो सभी ने देखा है। कालीदह पर बहुत पुराना एक केलिकदम्ब का पेड़ है। उसकी शाखा-प्रशाखाओं में 'हरेकृष्ण', 'राधाकृष्ण' नाम साफ-साफ लिखा हुआ है। जिसका जी चाहे, देख आ सकता है। बन की परिक्रमा करते समय, एक दिन, एक वन के पास बैठे हुए थे। सामने एक पेड़ का

पत्ता देखकर उठा लिया। ध्यान से देखा तो उसकी प्रत्येक शिरा में, नागरी लिपि में, 'राधाकृष्ण' नाम लिखा पाया। तनिक ढूँढ़ते ही पेड़ मिल गया। तब भारत पण्डित जी और सतीश प्रभृति मेरे साथ जो-जो था सबको बुलाकर मैंने दिखलाया; एक ही प्रकार का नाम सभी को वृक्ष के पत्ते-पत्ते में मिला। खोज करने से वहाँ पर ऐसी बहुत सी विचित्रताएँ देखने को मिल सकती हैं।"

"परिक्रमा करते समय एक दिन एक वन के समीप पहुँचे। सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने उस वन के कदम्ब के पत्ते का दोना बनाया था। अब तक भगवान् उसी लीला का उदाहरण समय समय पर, भक्तों को दिखाते हैं। हम लोग वन के भीतर जाकर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गये। किसी पेड़ में दोना देखने को न मिला। फिर साष्टांग नमस्कार करके, कातर भाव से, सब लोग बैठ गये। अब देखा तो सामने ही एक कदम के पेड़ का पत्ता दोने की शकल में देख पड़ा। पास जाकर देखा तो पेड़ के सभी पत्तों को दोने के आकार का पाया। जो लोग साथ में थे उन सब ने वृक्ष के पत्ते-पत्ते में दोना देखा।"

"चरणपहाड़ी पर जाकर देखा कि पहाड़ के पत्थर पर गाय, बछड़े और मनुष्य के पैरों के असंख्य चिह्न बने हुए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की जिस वंशी की ध्वनि से सारा वृन्दावन मुग्ध हो जाता था उसी मधुर वंशीध्वनि से एक बार यह पहाड़ भी नरम पड़ गया था। उसी समय गाय, बछड़े और चरवाहे लड़के, जो कि उस समय श्रीकृष्ण के साथ उक्त पहाड़ पर थे, सभी के पैरों के चिह्न उस पत्थर पर अंकित हो गये। वे सब चिह्न आज भी पहाड़ पर साफ-साफ मौजूद हैं। देखने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि ये मनुष्य के खोदे हुए कभी नहीं हैं। मनुष्य वैसा कभी बना ही नहीं सकता।"

इसी बातचीत में दिन डूबने को हो गया। शहर से स्कूली विद्यार्थियों के झुण्ड और बाबू लोग आ गये। उनके साथ ठाकुर की अनेक विषयों पर बातचीत होने लगी। मैं भी रसोई बनाने की तैयारी करने को उठ चला।

शाम को आम के पेड के तले सकीर्तन प्रारम्भ हो गया। सुना था कि अक्सर सकीर्तन के समय आश्रम के बुड्ढे लाल कुत्ते को महाभाव हो जाता है। आज उसे सकीर्तन

के समय, भाव की उमङ्ग में अचेत देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब देर तक उसके कान में ज़ोर ज़ोर से 'हरे कृष्ण' पढ़ा गया तब उसे चेत हुआ।

गोस्वामीजी की जटा और दण्ड

श्रीवृन्दावन में ठाकुर के मस्तक में महादेव का जो शिरोरत्न सदा लिपटा रहता था वह चैत्र कृ० ४ अब नहीं है। मस्तक के दाहनी, बाई और सामने की ओर आध हाथ लम्बी तीन बहुत ही सुन्दर जटाओं को देख रहा हूँ। पीछे की ओर चोटी की सूरत में एक जटा पीठ पर लटक रही है, तालू के आस-पास के बालों के गुँथ जाने से एक और सुन्दर जटा बन गई है। ठाकुर के माथे पर कुल पाँच जटाएँ हो गई हैं। ठाकुर के नृत्य करते समय सामने की बड़ी जटा का विस्तृत अगला भाग जब विचित्र रीति से उनके सिर पर ऊँचा उठ आता है तब महादेव की जटाओं के साँप की याद आती है। फिर समाधि के समय पर वही जटा जब बाई ओर झुककर, तनिक हिलकर माथे पर ठहरी रहती है तब श्रीकृष्ण की अपूर्व मोरशिखा का स्वाभाव सिद्ध संस्कार मन में उदित हो जाता है। स्वाभाविक जटा इतनी अच्छी, इतनी मनोहर मैंने कहीं नहीं देखी। ठाकुर की देह का रंग बहुत साफ है, किन्तु हाथ, पैर और चेहरा कुछ साँवला है। मैंने इसका कारण पूछा तो ठाकुर ने कहा— 'श्रीवृन्दावन में बहुत अधिक ठण्ड पड़ती है। देह पर सदा कफनी पहने रहता था। जो अंग उससे बाहर खुले रहते थे वे ठण्ड लगने से, साँवले रंग के हो गये हैं।'

श्रीवृन्दावन के व्रजवासी

आज एक भलेमानस ने व्रजभूमि की बहुत सी प्रशंसा की बातें सुनकर कहा— 'श्रीवृन्दावन चाहे अप्राकृत हो, चाहे और कुछ, किन्तु वहाँ के आदमी बड़े भयानक हैं। रुपया-रुपया करके यात्री पर जो बेतरह जोर-जबर्दस्ती करते हैं उसका हाल सुनने से तो बड़ा डर लगता है।' ठाकुर ने कहा—"रुपये के लिए व्रजवासी लोग मनुष्य की जान तक ले लेते हैं, ऐसे भी कुछ घटनाएँ सुनी तो गई हैं; किन्तु यह कहना कठिन है कि वे लोग सचमुच व्रजवासी हैं भी या नहीं। आगरा, दिल्ली, जयपुर आदि अनेक स्थानों के बहुतेरे आदमी तीन चार पुश्तों से व्रजभूमि में वास करते हैं। वे भी अपने को व्रजवासी बतलाते हैं। और-और लोग भी उन्हें व्रजवासी ही समझते हैं।

न्दावन की देहात में घूमने पर वास्तविक ब्रजवासियों की सरलता और उदारता देखकर मुग्ध होना पड़ता है। जो ब्रजवासी लोग यात्री-यजमानों को सताकर रुपये वसूल करते हैं, वे उन रुपयों से क्या करते हैं यह भी देखना चाहिए। वन की परिक्रमा के समय पर हज़ारों साधुओं, वैष्णवों और यात्रियों का भरण-पोषण वही लोग तो करते हैं। वे लोग रुपया जमा करके नहीं रखते। तुम लोगों से रुपया-पैसा लेकर तुम्हारी ही सेवा में लगा देते हैं। पहले ब्रजवासी लोग पेट भरने के लिए रुपया पास न होने से कहीं चक्कर न लगाते थे। यात्रियों पर भी वे जोर-ज़बर्दस्ती न करते थे। उनके यहाँ ख़ासी सम्पत्ति थी। हम लोगों के ही दुर्व्यवहार की बदौलत इस समय उनकी यह दुर्दशा है।"

जिन लाला बाबू के नाम का कीर्तन करके आज बङ्गाली लोग धन्य हो रहे हैं, वे भी एक समय कैसे थे? फिर श्रीधाम में वास करने के फलस्वरूप भगवत्-कृपा से बड़ी दुर्लभ अवस्था प्राप्त करके, सर्वसाधारण को स्तम्भित करके, श्रीवृन्दावन-वास कर गये, वही हाल ठाकुर सुनाने लगे—

"लाला बाबू अपनी पूर्व अवस्था में वैसे ही थे जैसे कि और-और ज़मींदार होते हैं। ब्रजवासी लोग भोले-भाले होते हैं। भङ्ग और लड्डू के सिवा उन्हें और कुछ न चाहिए। उक्त दोनों चीज़ों के मिल जाने से ही वे मस्त रहते हैं। यह देखकर लाला बाबू उन लोगों को डटकर भङ्ग पिलाने और लड्डू छकाने लगे। धीरे-धीरे उन लोगों का सब कुछ लिखवा लिया। अब तक बहुतेरे ब्रजवासी दुःख प्रकट करके कहते हैं कि लाला बाबू ने ही हम लोगों का सफ़ाया कर दिया है। फिर भगवान् की कृपा से जब लाला बाबू को वैराग्य हुआ तब राधाकुण्ड के एक सिद्ध महात्मा के पास जाकर उन्होंने दीक्षा देने की प्रार्थना की। सिद्ध महापुरुष ने बहुत तिरस्कार करके लाला बाबू से कहा—'जिनके साथ तुम्हारी परम शत्रुता है उनके यहाँ लँगोटी लगाकर कङ्गाल बनकर जाओ और उनके पैरों पर गिरकर क्षमा माँगो। उनका आशीर्वाद लेकर आना। और उन्हीं के यहाँ से मुट्ठी-मुट्ठी भर भीख माँग कर खाना।' लाला बाबू जब कङ्गाल के वेश में लँगोटी पहने हुए मथुरा के चौबों के हरएक दरवाज़े पर पहुँचने लगे तब सभी ने सोचा था कि ये अब लौटकर नहीं

आ सकेंगे। किन्तु उनकी दशा देखकर चौबों की आँखों के आँसू न रुक सके, उन लोगों ने कहा—'ओह! तुम्हारी यह हालत है, हम लोगों के यहाँ भीख माँगने आये हो? बोलो, तुम्हें क्या भिक्षा दें? हम लोगों का जो कुछ बच रहा है वह भी तुम ले लो।' चौबे लोगों ने उन्हें सच्चे हृदय से क्षमा करके आशीर्वाद दिया। इसके बाद उनको दीक्षा मिली। दीक्षा ले करके उन्होंने जैसा कठोर वैराग्य धारण किया वह और कहीं अधिक नहीं-देख पड़ता। प्रतिदिन भिक्षा के समय लोग उन्हें पहचान करके खाने को अच्छी अच्छी चीजें देते थे, इसलिए उन्होंने बड़ी कठोरता से काम लिया था। आदर, खुशामद और प्रशंसा से उनको विष की तरह जलन होती थी। वे कई तरह से पागल की तरह इसलिए घूमा करते थे जिसमें कोई पहचान न ले। लोग आदर के साथ उन्हें भीख दिया करते थे, इससे उन्होंने भीख माँगना ही छोड़ दिया। अन्त में वे घोड़े की लीद में से दाने चुन करके खा लिया करते और इस तरह किसी प्रकार जीवन धारण किये रहते थे। एक दिन इसी प्रकार घोड़े की लीद में से दाना चुन रहे थे कि उसने अकस्मात बेतरह दुलत्ती झाड़ दी। इसी चोट के कारण लाला बाबू की मृत्यु हुई। ऐसा अद्भुत वैराग्य-पूर्ण जीवन अब नहीं देख पड़ता।"

परिक्रमा के समय व्रजमाइयों का व्यवहार

चैत्र कृ० ५

श्रीवृन्दावन का हाल सुनाते हुए ठाकुर बहुत प्रसन्न होते हैं। अब तक ठाकुर श्रीवृन्दावन में ही थे, इसलिए दर्शक लोग भी आकर ठाकुर से वहाँ का हाल पूछते हैं। आज एक भले आदमी ने ठाकुर से पूछा, व्रज-परिक्रमा के समय असंख्य यात्रियों के खाने-पीने का क्या प्रबन्ध रहता है? क्या साथ में बाज़ार रहता है? अथवा यात्रियों को अपने साथ सब आवश्यक चीजें ले जानी पड़ती हैं? रास्ते में चोरों डाकुओं का उत्पात तो नहीं होता? ठाकुर ने कहा—"चोर-डाकुओं का उपद्रव तो सभी जगह है। परिक्रमा के समय अपने साथ रसद नहीं ले जानी पड़ती। साथ ही साथ बाजार चलता है, फिर रास्ते में स्थान-स्थान पर अड्डे भी हैं। वहाँ पर सभी चीजें मिल जाती हैं। गृहस्थ

लोग अड्डे पर जाकर आवश्यक सौदा लेकर भोजन आदि करते हैं। और साधु लोग लूट-खसोट करके खाने-पीने की चीजें ले आते हैं। परिक्रमा के समय गाँव-गाँव में ब्रजमाइयाँ बहुत सा दही, दूध आदि एक कमरे में करीने से रख देती हैं। फिर दूसरे कमरे में चुपचाप जा बैठती हैं। साधु लोग जाकर घर कोठरियों में से दही-दूध ढूँढ़-ढाँढ़ लेते हैं। उस समय ब्रजमाइयाँ कृत्रिम कोप प्रकट करके, हाथ में डण्डा लेकर, उन्हें खदेड़ने को आती हैं। साधु लोग दही-दूध आदि लूटकर, हाँड़ी-पतीली तोड़-फोड़कर भाग खड़े होते हैं। इससे ब्रजमाइयाँ बड़ी प्रसन्न होती हैं। इस अवसर पर वे चरवाहे बालकों समेत श्रीकृष्ण के दही-दूध चुराने की याद करके उसी भाव में मुग्ध बनी रहती हैं। चोरी से अथवा जबर्दस्ती छीनकर इस तरह लूट खसोट करके कोई कुछ ले जाता है तो ब्रजमाइयों को इतना आनन्द होता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस आनन्द को पाने के लिए ही वे प्रतिदिन बड़ी मेहनत करके दही, दूध, मक्खन आदि अनेक प्रकार की बढ़िया खाने की चीजों को कोठरी में, अधिक परिमाण में, करीने से रख छोड़ती हैं। जो साधु लोग लूट-खसोट करने नहीं जाते, अपने आसन पर ही बैठे रहते हैं। उनके पास जाकर ब्रजमाइयाँ उन्हें वात्सल्य भाव से गालियाँ देती हैं। हाथ पकड़कर उन्हें अपने घर घसीट ले जाती हैं। साधुओं के कन्धे पर हाथ रखकर, बहुत दुलार करके, जो कुछ घर में मौजूद रहता है वह अपने हाथ से उनके मुँह में कौर दे-देकर खिला देती हैं। ब्रजमाइयों के ये भाव देखने से विस्मित होना पड़ता है।

ब्रज के गाँवों में जाने से देख पड़ता है कि वे अब तक उसी रूप में हैं। दिन डूबने पर ब्रजमाइयाँ, उत्कण्ठित हृदय से, रास्ते की ओर देखती हुई खड़ी रहा करती हैं। देखा करती हैं कि चरवाहे बालक कब लौटकर आवेंगे। जान-पहचान की खबर नहीं रहती। घर की अच्छी अच्छी चीजें लेकर, बड़े दुलार के साथ, चरवाहे बालकों को खिलाती हैं। उनके लौटने में तनिक देर हो जाती है तो स्नेह के कारण वे उन्हें बहुत बकती-झकती हैं। ब्रज की देहात में जाने से देख पड़ता है कि ब्रजमाइयों में अब तक वही पहले का भाव, वही अवस्था, सब कुछ मौजूद है।

ठाकुर के साथ इस दफ़े माताठाकुराणी, सतीश, श्रीधर प्रभृति कई लोगों ने व्रज की परिक्रमा की है। यही लोग धन्य हैं। मैं वहाँ थोड़े ही दिन रहा, इससे व्रजपरिक्रमा से वञ्चित रह गया। ठाकुर ने सतीश से चौरासी कोस की श्रीवृन्दावन-परिक्रमा का विवरण विस्तृत रूप में लिखने के लिए कहा था। वे भी उसे लिखकर, बीच-बीच में, ठाकुर को सुनाते थे। आशा है, इस पुस्तक में ठाकुर की श्रीवृन्दावन-परिक्रमा की सारी घटनाएँ रहेंगी। सतीश इस समय आश्रम में ही हैं।

जीवप्रकृति के साथ समप्राणता

चैत्र कृ० ६

भोजन कर चुकने पर साढ़े बारह बजे ठाकुर आम के पेड़-तले अपने आसन पर जा बैठते हैं। प्रायः सन्ध्या तक, एक ही तरह, आसन पर स्थिर बैठे रहते हैं। चैत्र की दोपहरी की कड़ी गर्मी में कोई घर से बाहर नहीं निकलता। इस समय ठाकुर भी गरमी के मारे, कभी-कभी पसीने से तर हो जाते हैं। ठाकुर के साथ-साथ मैं भी, पंखा हाथ में लेकर, आम-तले जा बैठता हूँ। ठाकुर की बाईं ओर, दो हाथ के फ़ासले पर बैठकर, हवा करने लगता हूँ। ठाकुर कोई तीन घण्टे तक टकटकी लगाये हुए, बिना हिले-डुले, पूर्व ओर वृक्ष की तरफ देखा करते हैं। कभी-कभी आँखें मूँदे, एक ही हालत में, समाधि लगाये हुए तीन-चार घण्टे बैठे रहते हैं। तीसरे पहर कोई पाँच बजे आम-तले बहुत लोग आ जाते हैं। तब उनके साथ ठाकुर अनेक विषयों पर बातचीत करने लगते हैं। अनेक श्रेणियों के लोगों के आ जाने से आम-तले की जगह को भरी हुई देखने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। आज दोपहर को, आम-तले अपने आसन पर बैठते ही ठाकुर आँखें मूँद करके ध्यानमग्न हो गये। मैं समीप बैठकर पंखा झलने लगा। देर तक समाधि में रहकर, कोई तीन बजे, ठाकुर अकस्मात् चौंक पड़े और आतुरता के साथ मुझसे कहा—"देखो तो! देखो तो! उन लोगों को खदेड़ दो, चिड़ियाँ डरकर बुला रही हैं।" मैंने कहा—चिड़ियाँ कहाँ बुला रही हैं? किन्हें भगा दूँ? ठाकुर ने कहा—'जाकर देखो कुञ्ज घोष के घर बड़े आम के पेड़ पर।' इतना कहकर ही ठाकुर ने फिर आँखें बन्द कर लीं। मैं भी तुरन्त घोष महाशय के घर की ओर दौड़ा। बड़े आम के पेड़ के पास जाकर देखा कि कई दुष्ट बच्चे, गलगलिया के खोते को लक्ष्य करके, पत्थर फेंक रहे

हैं। तीन-चार गलगलियाँ, पेड़ की एक डाल पर से दूसरी डाल पर घबराहट के मारे उड़-उड़कर आती हैं और चें-चें करती हैं। मेरे धमकाते ही बच्चे भाग गये। चिड़ियाँ भी शान्त हो गईं। मैं ठाकुर के पास आ बैठा और हाथ में पत्ता लेकर उन्हें हवा करने लगा। ठाकुर ने तुरन्त सिर ऊपर को किया और आँखें खोलकर पूछा—'क्या देखा ?' दुष्ट लड़कों की गलगलियों के बच्चों को गिराने की दुश्चेष्टा और गलगलियों को भगाने के लिए पत्थर फेंकने का हाल मैं कहने लगा। मानों कुछ भी न जानते हों इस भाव से, खूब ध्यान देकर, वे मेरी बातें सुनने लगे। अपनी बात पूरी करके मैंने पूछा—'मैं तो यहाँ बैठा था, चिड़िया का चिल्लाना तो मैंने तनिक भी नहीं सुना। और आपने, मग्न अवस्था में रहकर भी, इतनी दूर का चिड़ियों का बुलाना क्योंकर सुन लिया ?'

ठाकुर ने कहा—दूर और समीप क्या करेगा ? किसी अवस्था में कहीं क्यों न रहो, किसी आपत्ति में पड़कर यदि कोई बुलावे तो उसका बुलाना हृदय पर असर करता है।

इसी समय ठाकुर के आसन के पास से होकर चींटों की कतार जल्दी-जल्दी आवा जाही कर रही थी। ठाकुर ने तनिक उनकी ओर देखकर, सिर झुकाकर मन्द मन्द हँसते हुए, कान लगाया जैसे उनकी बातचीत सुनते हों और बीच-बीच में वे इस तरह सिर डुलाने लगे मानों उनकी बातों को समझ रहे हैं। तब मैंने पूछा—तो क्या चींटे भी बातें करते हैं ? क्या इनकी भी बातें सुनने में आ सकती हैं ?

ठाकुर ने कहा—न सिर्फ चींटी चींटे ही बल्कि वृक्ष और लताएँ तक बातें करती हैं। चित्त तनिक स्थिर हो तो क्या कीट पतङ्ग और क्या वृक्ष लताएँ सभी की बातें सुनी जा सकती हैं।

ठाकुर ने मुझे और कुछ न पूछने देकर तुरन्त ही कहा—जो हो, तुम चींटों को खाने के लिए कुछ ला दो। आटा और चीनी मिलाकर इन्हें खाने को दिया जाय तो ये बहुत प्रसन्न होते हैं। मुझे आटा तो मिला नहीं, इससे मैं चीनी ही ले आया और ठाकुर के कहने के अनुसार उनकी दहनी ओर मैंने उसे फैला दिया। ठाकुर ने तुरन्त आँखें बन्द करके फिर ध्यान लगा लिया। बीच-बीच में आँखें खोल कर वे चींटों को देखने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने कहा—इनमें भी कोई काम उलटा-सीधा नहीं होता। सभी काम

बड़े सिलसिले से किये जाते हैं। इनमें भी संचालक है, शासन है, मुकद्दमा सुना जाता और फ़ैसला होता है। मनुष्य बड़े होने की शेख़ी किस बात में करता है? चींटी की तरह बालू में से इस प्रकार चीनी को अलग कर ले तो समझें।

श्रीवृन्दावन में "राधाश्याम" पक्षी

दोपहर की गरमी के समय सब लोग अपने-अपने घर में आराम करते हैं; चारों ओर सन्नाटा खिंचा हुआ है। गेरुआरिया की तमाम चिड़ियाँ छाँह में वृक्षों की शाखाओं पर बैठकर अनेक प्रकार से चहचहाती हैं; सुनने से बड़ा आनन्द मिलता है। आज तीसरे पहर ठाकुर ने श्रीवृन्दावन के एक तरह के अद्भुत पक्षी का हाल सुनाया। सुनने से बड़ा अचम्भा हुआ। मैं श्रीवृन्दावन में इतने दिनों तक रहा, किन्तु मैंने किसी विषय की छान-बीन नहीं की। अब उसके लिए खेद होता है। ठाकुर आज श्यामा चिड़िया का हाल सुनाने लगे—किसी ऋतु में उत्तर ओर से एक प्रकार की चिड़ियों के झुण्ड के झुण्ड श्रीवृन्दावन में आते हैं। वे चिड़ियाँ 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहा करती हैं। इतने शाफ़ स्वर में 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' कहा करती हैं कि सुनने से और कुछ नहीं समझा जा सकता। श्रीवृन्दावन में इन चिड़ियों को 'राधाश्याम' पक्षी कहते हैं। एक बार एक ब्रजवासी ने दो राधाश्याम चिड़ियों को हिकमत से पकड़ लिया। किन्तु एक तो उड़ गई और दूसरी को ब्रजवासी ने पिंजड़े में बन्द कर रक्खा। उसको चुगने के लिए दाना दिया गया, पर उसने चुगना ही बन्द कर दिया। न तो वह उस तरह बोलती और न उसमें पहले की उमङ्ग ही थी। दूसरे दिन तड़के ब्रजवासी के कुञ्ज में राधाश्याम चिड़ियों के झुण्ड के झुण्ड आकर 'राधाश्याम', राधाश्याम' बोलने लगे। तब मुहल्ले के ब्रजवासियों ने उस ब्रजवासी को धमका कर कहा, तू चटपट इस चिड़िया को छोड़ दे। न छोड़ेगा तो तेरा सर्वनाश हो जायगा! देख, झुण्ड की तमाम चिड़ियाँ आकर उसके लिए 'राधाश्याम', 'राधाश्याम' रट रही हैं। तब ब्रजवासी ने उस चिड़िया को उड़ा दिया।

श्रीवृन्दावन में हिंसा

मैंने श्रीवृन्दावन में कहीं कौवा नहीं देखा। वहाँ पर कोई मांस नहीं खाता, इसी से

फीते भी नहीं हैं। मांस खाना आरम्भ होते ही मौका पहुँच जायगा। व्रजभूमि की तरह हिंसा-शून्य स्थान और कहीं नहीं देख पड़ता। इसलिए जङ्गल के पशु-पक्षी भी मनुष्य को छूते हुए चलने में तनिक झिझकते भी नहीं। जिसके मन में हिंसा का भाव है, उसी से तो भय की आशङ्का है।

सुना कि श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं है। इस सारी व्रजभूमि में पशु पक्षियों का शिकार खेले जाने की सरकार की ओर से मनाही है। कुछ समय हुआ, पुलिस मुहकमे का एक साहब—सरकारी मनाही की परवा न करके—शिकार खेलने गया था। शिकार की कोशिश करते ही वह चल बसा। ठाकुर ने उक्त घटना इस प्रकार बतलाई—

पुलिस का साहब घोड़े की सवारी से, यमुना पार होकर, 'बेलबाग' की ओर एक जङ्गल में पहुँचा। उसे बहुत लोगों ने रोका था, किन्तु उसने किसी की कुछ परवा न की। जङ्गल में जाकर एक सुअर को देखकर बन्दूक दाग दी। सुअर तुरन्त ही दो छुदान में साहब के पास आ गया। उसी दम साहब को पटककर घोड़ा भाग गया। सुअर ने चटपट साहब को चीर-फाड़कर फेंक दिया।

होम की व्यवस्था

चैत्र कृ० ७

दोपहर को आम-तले ठाकुर के पास बैठा हुआ हूँ। ठाकुर ध्यान लगाये हुए थे, एकाएक सिर ऊपर करके मेरी ओर देखकर कहा—वैशाख महीने के पहले दिन से तीन महीने तक तुम होम किया करना।

मैंने कहा—मैं तो कुछ जानता ही नहीं, होम किस प्रकार करूँगा।

ठाकुर ने कहा—बेल, बरगद, पीपल अथवा गूलर की लकड़ियों के द्वारा होम करना। तीन पत्तोंवाले एक सौ आठ बिल्वपत्र लेकर, घी मिलाकर इस ······ मन्त्र को पढ़कर एक सौ आठ आहुतियाँ देना। प्रतिदिन सवेरे स्नान कर लेने पर गायत्री का जप करके तीन महीने तक इसी प्रकार होम करना। चार बजने के बाद ही अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करना तुम्हारे लिए अच्छा है।

मैंने कहा—देश में देखा है कि होम करने के पहले ब्राह्मण लोग यन्त्र आदि बनाकर कुण्ड बना लेते हैं और होम करने की जगह बालू फैला देते हैं। क्या मैं भी वैसा ही करूँगा?

ठाकुर ने कहा—नहीं। वह कुछ नहीं। आसन के आगे——ऐसा एक कुण्ड बना लेना, प्रतिदिन इसी में होम करना।

अब ठाकुर ने हाथ हिलाकर गोलाकार कुण्ड दिखला दिया। वैशाख लगने में अधिक दिनों की देर नहीं है। यहाँ पर होम के लिए विशुद्ध गाय के घी और लकड़ियों के एकत्र करने का सुबीता न देखकर मैंने कल ही घर को जाने का निश्चय कर लिया।

फकीर अली जान। प्राणायाम का प्रकार-भेद

घर पर एक ही दिन रहकर होम के लिए गूलर की लकड़ी और गाय का घी लेकर मैं गेण्डारिया में चला आया हूँ। देखा कि अनेक दिशाओं से बहुत से स्त्री पुरुष गुरु भाई-बहनों ने आकर आश्रम को परिपूर्ण कर रक्खा है। जब से ठाकुर गेण्डारिया में आ गये हैं तब से अनेक श्रेणियों के साधु सन्यासी और क्रिस्तान तथा मुसलमान फकीर भी आश्रम में आने लगे हैं। युद्ध विभाग के कप्तान, पेंशन प्राप्त कैम्बेल साहब, बहुत दिनों से उदासीन रहकर, साधन भजन में जीवन बिता रहे हैं। दोपहर को, एकान्त पाते ही, वे ठाकुर के पास आकर थोड़ा सा समय बिता जाते हैं। लोगों के आते ही खसक जाते हैं। समुद्र बाबा नाम के एक साधु कई दिन से आश्रम में टिके हुए हैं। ये पण्डितजी के घर के बरामदे में रहते हैं। मैं बाबाजी को कुछ साधन भजन करते नहीं देखता। मालूम नहीं, क्या करते हैं। किन्तु क्या इनकी बातचीत और क्या आचार-व्यवहार बहुत ही मधुर लगता है। ठाकुर पर इनकी बड़ी श्रद्धा है। इन्हें ठाकुर के दर्शन मिल गये हैं, इसी से ये अपने को कृतार्थ समझते हैं।

चैत्र कृ० ११

एक मुसलमान फकीर अक्सर, अनेक बार, ठाकुर के पास आया करते हैं। यहाँ पर ठाकुर के आने से पहले ये गेण्डारिया के घने जङ्गल में रहते थे। फकीर साहब का नाम अली जान है। उनकी एक भी बात का अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। उनका चाल-चलन भी अनेक अवसरों पर पागल का सा जान पड़ता है। किन्तु वे ऐसा कोई काम नहीं करते जिससे किसी का अनिष्ट हो। बच्चे-बूढ़े सभी अली जान के साथ खासा हिल बहलाते हैं। अली जान भी सबसे खूब हिलते-मिलते हैं। मैं ठाकुर के पास बैठा हुआ था इसी समय कई दो बच्चे बूढ़े अली जान गन्ने के तीन-चार टुकड़े लिये हुए आ पहुँचे। ठाकुर के आगे आसन जमाकर बैठ गये। फिर एक

गन्ने के टुकड़े को हाथ में लेकर चूसने के लिए ज्योंही मुँह में देना चाहा त्योंही कूदकर खड़े हो गये। अब चारों ओर चञ्चलता से देखकर गन्ने के टुकड़े को, बनेठी की तरह, दाहनी और बाईं ओर फुर्ती के साथ घुमाने लगे। और ज़ोर से चिल्लाकर कहने लगे—"ओफ! अल्ला! सालों ने तीता कर दिया। चूसने नहीं दिया। अरे सालों, लाट तो आया है। लाट की तरह बड़ा जहाज़ भी आया है, इससे क्या हुआ। लाट को काम का हिसाब न देगा। सालों, ऐसे ही चले जाओगे! यह नहीं हो सकता। दिक करने को आये हो!' निकल! निकल! निकल!" यह कहते कहते फ़क़ीर साहब कई बार गोस्वामीजी के आगे गन्ने को घुमाकर कूदते-फाँदते हुए दौड़कर दक्षिण ओर गेण्डारिया के जङ्गल में चले गये।

इस समय ठाकुर मन्द-मन्द मुसकुराते हुए फ़क़ीर साहब की ओर देखते रहे। फ़क़ीर साहब चले गये। अब मैंने ठाकुर से पूछा—अली जान ने ऐसा क्यों किया? गन्ने से अधर आसमान की ओर किसे मारा? अली जान के गन्ने को किसने तीता कर दिया? क्या यह सब अली जान का पागलपन है?

मेरी बातें सुनकर ठाकुर ने कहा—क्या तुम लोग अली जान को पागल समझते हो? ये पागल नहीं, बहुत अच्छे फ़क़ीर हैं। सिद्ध पुरुष हैं। आदमियों के आगे पागल से न बने रहें तो आजकल बचाव होना बहुत कठिन है। अली जान जो कुछ कहते हैं या जो कुछ करते हैं उसके साथ अपनी क्रिया का संयोग बनाये रहते हैं। ये अनर्थक कुछ भी नहीं करते। भूत-प्रेत इत्यादि की नज़र पड़ जाने से भी खाद्य वस्तु बिगड़ जाती है, जूठी हो जाती है। यह सब अली जान साफ़-साफ़ देख लेते हैं। अधर गन्ने को घुमा फिराकर जो उन्होंने कूद-फाँद की यह एक प्रकार का प्राणायाम है। अली जान को बहुत सी रीतियाँ मालूम हैं। फ़क़ीर साहब को मामूली मत समझो।

मैंने कहा—कूदने-फाँदने, हाथ-पैर हिलाने और तरह-तरह से विकट शब्द करते हुए मुँह बनाकर चिल्लाने से भी क्या प्राणायाम होता है? उन्हें तो मैंने श्वास प्रश्वास की कोई भी क्रिया करते नहीं देखा। प्राणायाम कितने प्रकार का है?

ठाकुर ने कहा—मनुष्य की देह में बहत्तर हज़ार नाड़ियाँ हैं। उन नाड़ियों में प्राणवायु को पहुँचाने की जितनी प्रक्रियाएँ हैं उन सभी को प्राणायाम कहते हैं। एक एक नाड़ी में एक-एक प्रकार की प्रक्रिया द्वारा इस प्राणवायु का सञ्चार होता

है। इसलिए प्राणायाम के भी बहत्तर हजार भेद हैं। शरीर को तरह तरह से हिलाने डुलाने और अनेक प्रकार के शब्द करने से भी प्राणायाम होता है। लोगों को पता नहीं है कि किस प्रकार की चेष्टा करने से किस नाडी में, किस तरह, प्राणायाम की क्रिया होती है। आजकल प्राणायाम की उक्त रीतियाँ कहीं देख नहीं पड़तीं। उनका तो एक प्रकार से लोप ही हो गया है। अब तक फकीरों में प्राणायाम के ये भेद थोड़े-बहुत पाये जाते हैं।

ये बातें हो ही रही थीं कि बहुत लोग आ गये। ठाकुर भी उन लोगों के साथ बातचीत करने लगे। मैं भी रसोई बनाने को चला गया। प्रतिदिन ही सन्ध्या-कीर्तन में बड़ा आनन्द और उत्सव होता है।

प्रतिष्ठा नष्ट करने में सिद्ध महात्माओं का लोकविरुद्ध व्यवहार

चैत्र कृ० १२

आज ठाकुर ने कहा—प्रतिष्ठा और प्रशंसा से धर्मार्थियों का जितना अनिष्ट होता है उतना और किसी से नहीं होता। इसलिए कितने ही अच्छे अच्छे साधु-महात्मा, कई प्रकार के उपायों का अवलम्बन करके, मनुष्यों की दृष्टि से अपने को बचाये रखने के लिए, अपने आपको छिपाये रहते हैं। एक बार श्रीवृन्दावन के एक भले आदमी ने एक दिन साधु-वैष्णवों का भण्डारा किया, दर्शन करने को मैं भी गया था। जाकर देखा कि टिकिट दिखलाकर वैष्णव बाबा लोग कुञ्ज के भीतर जा रहे हैं। एक कङ्गाल ने भीतर जाना चाहा, किन्तु पास में टिकिट न रहने से द्वार रक्षक ने उसे गालियाँ देकर हटा दिया। उस व्यक्ति के, भीतर जाने की, दुबारा चेष्टा करते ही द्वार रक्षक ने उस पर कसकर कई हाथ जमा दिये। कुछ पिट जाने पर किसी प्रकार क्लेश को प्रकट किये बिना ही प्रसन्नता से उक्त व्यक्ति उस स्थान से चला गया। यह देखने से मुझे बड़ा अचरज हुआ। उनके लिए कुछ खाने को माँगकर मैं उनके पीछे पीछे रवाना हुआ। वे यमुना के किनारे किनारे दूर तक चलकर जङ्गल के भीतर एक एकान्त स्थान में पहुँचे। वहाँ पर एक गुफा के भीतर चले गये। मैंने उनके पास जाकर उनको नमस्कार किया और खाने को दिया। फिर पूछा—'बस्ती से इतनी दूर रहने के कारण भिक्षा आदि का आपके लिए क्या सुभीता है, आप बस्ती में भी तो किसी

जगह रह सकते हैं।' बाबाजी ने कहा, 'छिपे रहने में ही आपत्तियों से बचाव है। उठकर बड़े तड़के सिर्फ एक बार यमुना में नहा आता हूँ और रात को एक बार मधुकरी माँगकर रोटी के टुकड़े ले आता हूँ। उन्हीं टुकड़ों को यमुनाजल में भिगोकर खा लेता हूँ; इससे मैं उत्पातों से बचा रहता हूँ। मजे में हूँ।' बाबाजी परम वैष्णव हैं। इस प्रकार मुद्दत से जन-मानव-विहीन गुफा में रहकर दिन बिता रहे हैं। किसे पता है कि श्रीवृन्दावन में इस प्रकार के और कितने महात्मा छिपे पड़े हैं।

ठाकुर और भी कहने लगे—इस दफे हरिद्वार में एक साधु को देखा। उनके पहुँचे हुए साधु होने की खबर सर्वत्र फैल जाने से उनके पास सदा बड़ी भीड़-भाड़ रहने लगी। लोगों के गोल-माल से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने साधु का वेश छोड़ दिया। इतने पर भी लोगोंने उनका पीछा न छोड़ा। तब साधुजी कोट-पतलून पहनकर हाथ मे छड़ी लेकर, बाबू के वेश में, सड़कों पर घूमने लगे। इससे भी मनुष्य धोखे में न आये। सदा उनके साथ साथ लोगों की भीड़-भाड़ बनी ही रही। अब तो साधु बाबा ऊब गये। इस भीड़-भाड़ से पीछा छुड़ाने के लिए उन्होंने बदनाम होना आवश्यक समझा; उन्होंने रात को एक बनिये की दूकान में घुसकर चावलों की चोरी की। पुलिस ने उनको गिरफ्तार किया और चोरी के मामले में चालान कर दिया। अदालत में उन पर तीन रुपये जुर्माना हुआ। अब दुकानदार ने उन्हें पहचाना तो अपने पास से जुर्माने के तीन रुपये जमा करके वह उन्हें छुड़ा लाया। हाथ जोड़कर उनके पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी। प्रतिष्ठा और प्रशंसा से बचने के लिए महात्मा लोग अनेक अवसरों पर ऐसे-ऐसे काम कर डालते हैं कि जिससे चारो ओर उनकी बुरी तरह बदनामी फैल जाती है।

अयोध्या के हरिदास बाबाजी सिद्ध महात्मा थे। वे बस्ती से बहुत दूर जङ्गल के भीतर, एक टूटी सी कुटिया में रहते थे और आनन्द से मन-मुताबिक भजन किया करते थे। वहाँ जाकर भी बहुत लोग उनके दर्शन करते थे और अपने घर-गृहस्थी के सङ्कटों का हाल सुनाकर उनसे प्रार्थना करते थे कि हमारा इनसे उद्धार कीजिए। बाबाजी तरह-तरह से उनको समझाकर कहते थे कि इन बातों का भला

घनवासी क्या जानें। इसके बाद बाबाजी ने उन लोगों को बुरी-बुरी गालियाँ दे-देकर भगाना आरम्भ कर दिया। समय समय पर वे पत्थर फेककर भी मारते थे ताकि कोई उनके पास न जावे।

श्रीवृन्दावन जाते समय हम कई दिन तक काशी में ठहरे थे। उस समय पूर्णानन्द स्वामी से भेंट करने की बड़ी इच्छा हुई। उनके दर्शन करने को जाने का तीन दिन उद्योग किया। तीनों दिन लोगों ने रोककर कहा—महाशय, आप वहाँ जाइयेगा—उस पियक्कड़ के पास! नहीं, वहाँ न जाइए। काशी के सभी लोग उन्हें पियक्कड़ और छटा हुआ बदमाश समझते हैं। किन्तु ये बातें सुनने पर भी हमारे मन पर इनका असर न हुआ उनके यहाँ जाने के लिए बड़ी बेचैनी हुई। किसी की बात न मानकर हम स्वामीजी के आश्रम पर पहुँचे। उनको नमस्कार करते ही उन्होंने हँसकर कहा—'क्या पियक्कड़ के पास आया है, बैठ।' अब वे एक स्त्री को न सुनने योग्य भाषा में, गालियाँ दे-देकर कहने लगे—'अरी तुझे चेली बनाने से क्या होगा, तेरी तो उम्र ज्यादह हो गई है। मैं तो सुन्दरी युवती को चेली बनाता हूँ। तुझे दीक्षा न दूंगा; तू चली जा। किसी और के यहाँ जाकर दीक्षा ले ले।' स्त्री बहुत अधिक आग्रह करने लगी। तब स्वामीजी ने कहा, अच्छा तो जैसा मैं कहूँगा वैसा कर सकेगी? सौगन्द खा तो चेली कर लूँगा। स्त्री ने कहा 'आपकी दया होगी तो क्यों न कर सकूँगी बाबा? तब स्वामीजी ने कहा—'अच्छा तो तनिक ठहर जा, मैं कारण का सेवन कर लूँ। फिर उस बड़ी सड़क पर ले जाकर तुझे बेइज्जत करूँगा। उसके बाद तुझे दीक्षा दी जायगी।' अब स्वामीजी ने जोर से अपनी भैरवी से कहा—अरी एक बोतल कारण तो ले आ। और बाहर का दरवाजा बन्द कर दे जिससे यह हरामजादी कहीं भाग न जाय।

डर के मारे वह स्त्री प्राण लेकर भाग गई। स्वामीजी ने मन्त्र से पवित्र करके कारण को पी लिया। फिर मुझ से कहा—"अरे देख, इस पियक्कड़ के पास किसलिए आया है? अरे मैं तो शराबी हूँ, शराब पीता हूँ, तरह-तरह की बदमाशियाँ करता हूँ, यह तुझे मालूम है? मेरा घर भी शान्तिपुर में था; बचपन में, यात्रा (लीला), की मण्डली में मेहतरानी बनता था, सुनेगा कि मैं उस समय

किस तरह नाच-नाचकर गाता था ?" अब वे नाच-नाचकर गाने लगे—'निशिते देखेछि स्वपन, कालो एक पुरुष रतन।'* यह गीत गाते-गाते स्वामीजी को बाहरी ज्ञान न रहा। देखते-देखते महादेव का रूप हो गया। स्वामीजी का रङ्ग काला है, किन्तु वे बिलकुल शुभ्र हो गये। माथे में अद्भुत ज्योतिर्मय अर्धचन्द्र प्रकाशित हो गया। वहाँ पर जो लोग थे वे सभी देखकर विस्मित हो गये। स्वामीजी ने होश में आकर कहा—'देखो, शराब पीकर, शराब की बोतल बगल में लिये हुए रास्ते में पड़ा रहता हूँ, बहुत मतवालापन करता हूँ, जो लोग पास आते हैं उनको बुरी बुरी गालियाँ देता हूँ, कभी-कभी खाँड़ा लेकर उनको काटने जाता हूँ, इतने पर भी यहाँ आदमी आते हैं, मुझे छेड़ते हैं, सिद्ध पुरुष समझकर मुझसे न जाने कितनी बातें पूछने आते हैं। मैं थोड़ी देर शान्ति से नहीं रहने पाता। इन लोगों के उत्पात से बचने के लिए बतलाओ मैं और क्या करूँ ?'

उन्होंने योगजीवन को देखकर कहा—'यह इतना बड़ा हो गया और अब तक उसका जनेऊ नहीं हुआ। अच्छा, मैं उसका जनेऊ कर दूँगा।' फिर स्वामीजी ने एक दिन विधि के अनुसार योगजीवन का जनेऊ कर दिया। हम लोगों को स्वामीजी के यहाँ बड़ा आनन्द मिला।

बिना माँगा हुआ दान न लेने से दुर्दशा

इस बार श्रीवृन्दावन मे अधकुम्भी के समय, कोई छ-सात हजार वैष्णव साधु, यमुना के बालू के मैदान मे एकत्र हुए थे। ठाकुर प्रतिदिन सवेरे पहर उन सबकी परिक्रमा और दर्शन कर आते थे। एक दिन ठाकुर साधु-दर्शन करने को निकले तो देखा कि जमात मे एक साधु नङ्गे बदन होने से जाड़े के मारे सिकुड़ रहा है। उन्होंने उसे एक कम्बल देकर नमस्कार किया और कहा—'आपके ठण्ड से बचने के लिए कपड़ा नहीं है, कृपाकर यह कम्बल ले लीजिये।' कम्बल मामूली था। साधु को पसन्द न आया। एक बार उसकी ओर देखकर ही उसे हाथ से उठाया और मुँह बनाकर फेंक दिया, फिर क्रोध प्रकट करके कहा, "अरे मैं ऐसी कमरी नहीं लेता, इसे फेंक दो।" ठाकुर ने हाथ जोड़कर, खुशामद करके,

---

* रात को स्वप्न में एक साँवले पुरुष-रत्न को देखा है।

साधु से बहुत कहा किन्तु साधु ने उसे किसी तरह न लिया। लाचार होकर ठाकुर उसे एक और साधु को दे आये। कइ दिन के बाद आँधी आई और पानी बरसने लगा। यमुना की रेती पर बेहद ठण्ड लगने से जब साधु लोग विकल हुए तब यह साधु जाड़े के मारे बेचैन होकर दौड़ धूप करने लगा। अन्त म कहीं कुछ न पाकर, ठण्ड से बचने के लिए, लकड़ियाँ लाने की फिक्र में निकला कि तापने का धूनी जलावे। जब कहीं लकड़ी न मिली तब टाल से कई कुन्दे चुरा लाया। टालवाले ने उसे चोरी में पुलिस को गिरफ्तार करा दिया। साधु को जेल की सज़ा हो गई। इसका उल्लेख करके ठाकुर ने कहा—

"ज़रूरत के समय बिना माँगे जो मिल जाय उसी को, भगवान् का दान समझकर, श्रद्धा के साथ ले लेना चाहिए। भगवान् का दान न लेने से बेढब अनर्थ हो जाता है। उस साधु ने जिस समय कम्बल उठाकर फेंक दिया था उसी समय मैं समझ गया था कि ये जञ्जाल में पड़ गये। श्रद्धा के साथ दिये गये दान को शेखी में आकर वापस कर देने से अपराध होता है।"

भूखे साधु की ओर ठाकुर का आकस्मिक खिंचाव

एक दिन तीसरे पहर, ठाकुर अकस्मात् आसन से उठकर चटपट यमुना की रेती में जा पहुँचे। वहाँ लगातार साधुओं के बीच में होते हुए फुर्ती से चलने लगे। प्रतिदिन रास्ते के दोनों ओर के जिन साधु-वैष्णवों के आग्रह के साथ दर्शन करके ठाकुर नमस्कार आदि करते हैं, उस दिन उन साधुओं के स्थान म ठाकुर पल भर भी नहीं ठहरे। उन लोगों की ओर ताकने की भी उन्हें फुरसत नहीं मिली। दाहनी, बाईं ओर साधुओं को छोड़कर, जमात के बीच में होते हुए, वे उस छोर पर एक अकिञ्चन साधु के पास जा पहुँचे। साधुजी उस समय मुसकुराते हुए प्रसन्न मन से कुछ आदमियों के साथ धर्मचर्चा कर रहे थे। ठाकुर ने थोड़ी देर उनके पास बैठकर, अवसर पाकर, साधु से पूछा—"महाराज, आज आपने प्रसाद पाया कि नहीं?" साधु ने कहा—"नहीं।" ठाकुर ने पूछा—"कल पाया था?" लगातार पूछने पर मालूम हुआ कि उन्होंने सात दिन से बिलकुल कुछ नहीं खाया है। लगातार सात दिन से निराहार रहने पर भी, बिना ही थकन के, प्रसन्नतापूर्वक उन्हें बातचीत करते देखकर ठाकुर को अपार आश्चर्य हुआ। सुना है कि जान भले ही चली जाय, किन्तु वे किसी

से कुछ माँगते नहीं हैं। ऐसे साधु बहुत कम हैं। ठाकुर कुञ्ज में आकर तुरन्त ही उनके लिए भोजन-सामग्री भिजवा दी।

जमात के साधुओं को द्रव्य-प्राप्ति और सङ्कट का हाल

ठाकुर की बात पूरी होने पर मैंने पूछा—कुम्भ मेला में हज़ारों साधु एकत्र होते हैं, उनके भोजन आदि का प्रतिदिन कहाँ से प्रबन्ध होता है?

ठाकुर ने कहा—सभी सम्प्रदायों के साधुओं के महन्त होते हैं। साधु लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के महन्तों के पास जा टिकते हैं। उन महन्तों में से एक-एक की जमात में तीन-चार हज़ार साधु तक रहते हैं। राजा-महाराजा और बड़े-बड़े धनवान् लोग उन महन्तों की, बहुत सा धन देकर, सहायता करते हैं। ऊँट, हाथी और घोड़ों पर लादकर महन्त लोग अपना भाण्डार साथ ले जाते हैं। भोजन इत्यादि की साधुओं को रत्ती भर भी असुविधा नहीं होती। जो लोग किसी महन्त का आश्रय न लेकर स्वाधीनता से रहते हैं उन्हीं को भिक्षा आदि के सहारे निर्वाह करना पड़ता है।

मैंने पूछा—महन्तों के साथ जब कि बहुत सा माल-असबाब और रुपया पैसा रहता है तब क्या जमात के भीतर चोरों-डाकुओं का उपद्रव नहीं होता?

ठाकुर ने कहा—वह भी होता है। इस बार श्रीवृन्दावन में, अधकुम्भी के मेले में, एक महन्त पर बड़ा अत्याचार हुआ है। उनके पास तीन-चार सौ रुपये थे। उन्होंने इसलिए रुपये जमा कर रक्खे थे कि हरिद्वार में जाने पर इनकी ज़रूरत पड़ेगी। साधु के साथ दस-बारह आदमी थे। एक साधु महन्त जी की सेवा किया करता था, उसी को रुपयों का भेद मालूम था। उसने एक दिन महन्त को रोटी के साथ भाँग धतूरा अधिक परिमाण में मिलाकर खिला दिया; उसके खाने से महन्तजी को ऐसा नशा चढ़ा कि वे बेहोश हो गये। तब वह साधु रुपया लेकर रफ़ूचकर हो गया। महन्त दो दिन तक नशे में बेहोश पड़े रहे। अन्यान्य साधुओं ने यह ख़बर पाकर महन्त को गरम घी पिलाया। तब कहीं महन्त का नशा उतरा। इसके बाद प्रकट हुआ कि महन्त के सेवक ने ही रुपये के लोभ से यह लीला की है।

सोना बनानेवाला साधु

मैंने फिर पूछा—सुनता हूँ कि ऐसे ऐसे साधु भी हैं जो चाहें तो सहज ही सोना बना लें। क्या यह सच है ?

ठाकुर ने कहा—हाँ। इस बार श्रीवृन्दावन में एक संन्यासी आये थे, वे सोना बनाते थे। उन्हें उनके गुरु का हुक्म था कि प्रतिदिन कम से कम बारह साधुओं को भोजन कराया करो। रुपया पैसा न होने पर उन्हें इतना सोना बना लेने की आज्ञा थी जितने में बारह साधुओं को भोजन कराया जा सके। दूसरे काम के लिए अथवा अपने लिए, सोना बनाने को उनके गुरु ने मनाही कर दी थी। श्रीवृन्दावन में आकर वे अपनी ज़रूरत भर के लिए सोना बनाने लग गये। धीरे धीरे यह बात फैली। पुलिस को पता लग गया। एक दिन मथुरा से पुलिस के साहब ने आकर उक्त साधु को पकड़ा। साधु ने सोना बना करके साहब को दिखला दिया। सोने की जाँच करने पर साहब को मालूम हुआ कि यह बहुत बढ़िया है। अब साहब ने सोना बनाने की हिकमत सिखा देने के लिए साधु को बहुत रुपयों का लोभ दिया। दस हज़ार रुपया देने को तैयार हो गये। साधु ने कहा—'मैं तो दस ही मिनिट में दस हज़ार रुपये का सोना आसानी से बना सकता हूँ। मुझे रुपये का लोभ आप किस लिए दिखला रहे हैं ? मैं अपनी यह विद्या किसी को सिखाऊँगा नहीं।' अब साहब उसे तरह तरह से डरवाने लगे। साधु ने कहा—'आप सिर्फ इसी बात की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं कि मैं खोटा माल देकर किसी को ठगकर रुपये तो नहीं ऐंठ रहा हूँ। अपनी विद्या मैं दूसरे को नहीं सिखाऊँगा। इस मामले में किसी की ज़िद मानने को मैं लाचार न हूँगा।'

एक दिन उस साधु ने दाऊजी के मन्दिर में आकर मुझसे भेंट करके कहा—मेरे गुरुजी ने मुझे हुक्म दिया था कि 'किसी ऐसे साधु को यह विद्या सिखला देना जो हमारी आज्ञा की रक्षा कर सके।' किन्तु मुझे वैसा साधु नहीं मिल रहा है। और किसी एक आदमी को यह विद्या सिखलानी ज़रूर है। यदि आप कहें तो मैं यह विद्या आपको सिखला दूँ। अब उन्होंने मेरे सामने ही थोड़ा सा ताँबा लेकर उसमें एक पत्ती का रस लगा दिया और उस ताँबे को आग में डाल दिया।

पाँच-सात मिनिट बीतने पर उसे आग में से निकाल लिया। देखा कि बढ़िया सोना बन गया है। मैंने साधु से कहा—'यह सब सीखने की मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं है। आप यह विद्या जानते हैं, इसी लिए आपके पीछे सदा इतने लोग लगे रहते हैं। इस उत्पात को लेने की आवश्यकता ही क्या है? भगवान् जब मुट्ठी भर अन्न देंगे ही तब और सब की क्या आवश्यकता है?' सोना बनाने की बहुत सी तरकीबें हैं। किन्तु जिस रीति से साधु ने सोना बनाकर दिखलाया वह बहुत ही सहज है। इतनी आसानी से सोना बनाते और कहीं नहीं देखा है। यह सब नहीं सीखना चाहिए। इन हिकमतों के सीखने से मनुष्य को सदा तरह-तरह की आपत्तियों और उत्पातों का सामना करना पड़ता है। धर्म कर्म सब भाड़ में चला जाता है। जो लोग भगवान् की कृपा प्राप्त करना चाहते हैं उन लोगों के लिए ये हिकमतें बड़े भारी प्रलोभन हैं। इन प्रलोभना के उपस्थित होने पर, थूककर, इनको अस्वीकार कर देना चाहिए।

सुखमय वृन्दावन

ठाकुर अक्सर श्रीवृन्दावन के वैष्णव-महात्माओं की चर्चा किया करते हैं। ठाकुर के श्रीवृन्दावन से चले आने के कुछ समय पहले एक वैष्णव ने विचित्र रीति से शरीर छोड़ा था। ठाकुर ने आज उन्हीं का हाल सुनाया—एक दिन एक महोत्सव के उपलक्ष्य में वृन्दावन की परिक्रमा करके, हजारों वैष्णव संकीर्तन करने लगे। गीत का पद था—'सुखमय वृन्दावन यमुना-पुलिन।' सङ्कीर्तन में महाभाव के आवेश में एक वैष्णव महात्मा अचेत हो गये। तीन दिन और तीन रात तक उनकी एक सी हालत बनी रही। बाबाजी की मग्न अवस्था के समय मैंने उनकी छाती पर कई बार कान लगाकर सुना कि भीतर साफ शब्द उठ रहा है 'सुखमय वृन्दावन।' बाबाजी ने उसी दशा में शरीर छोड़ दिया।

चैत्र कृ० १४

अज्ञात साधु का आश्रय लेने में संकट

इस बार हरिद्वार के पूर्ण कुम्भ के मेले में पहाड़ों पर से बहुतेरे महात्मा और महापुरुष आवेंगे। यह चर्चा पहले ही सर्वत्र फैल गई थी कि भारतवर्ष के सभी स्थानों

से साधु-सन्यासी इस महामेले में आवेंगे। बङ्गाल के अनेक स्थानों से बहुत से भले आदमी और स्कूली लड़के भी हरिद्वार के इस मेले में उपस्थित हुए। सिद्ध महात्माओं से दीक्षा लेना ही इन लोगों का उद्देश्य था। एक सन्यासी के बाहरी वेश और साधुता के आडम्बर में भूलकर तीन-चार स्कूली लड़कों ने उसे महापुरुष समझकर उससे दीक्षा ले ली। उन्हें दीक्षा देते ही सन्यासी ने उनसे कपड़ा उतरवाकर लँगोटी लगवा दी और उन्हें अपने सेवा-कार्य में लगा लिया। लगातार बर्तन माँजने, लकड़ी काटने और पानी भरने आदि मेहनत के काम करते-करते भले घर के लड़के बीमार हो गये। उनकी यह हालत देखकर भी सन्यासी ने उन लोगों से कड़ी मेहनत लेना बन्द नहीं किया, वे उन्हें और भी अधिक ताड़ना देने लगे। वे धमकाने तक लगे कि यदि बतलाया हुआ काम ठीक-ठीक न कर पाओगे तो बुरी तरह पीटे जाओगे। उन्होंने अन्यान्य सन्यासी शिष्यों को आज्ञा दी कि इन पर खास तौर पर नज़र रखना जिसमें ये लोग कहीं भाग न जायँ। काम-काज में किसी प्रकार की सुस्ती देख पड़ती तो वे सन्यासी चेले इन लड़कों से बुरी तरह पेश आते थे। बीमार रहते हुए न तो इन लड़कों में लगातार काम-काज करते रहने की शक्ति थी और न इनको भाग जाने का सुभीता था। अतएव ये लोग बेढब आ फँसे। एक दिन ठाकुर अकस्मात् उस सन्यासी के यहाँ जा निकले। ठाकुर को देखकर उन लड़कों ने रो-रोकर अपना दुखड़ा कह सुनाया। उन लोगों को छोड़ देने के लिए ठाकुर ने सन्यासी से अनुरोध किया। किन्तु वह ठाकुर की बात मानने को तैयार न हुआ। उसने गाली-गलौज करके, तेहा दिखाकर, कहा—'ये तो हमारे चेले हो गये हैं, इन्होंने हमसे मन्त्र लिया है, हम इन्हें कभी न छोड़ेंगे।' ठाकुर ने वहाँ से आकर चटपट पुलिस की सहायता से उन लड़कों का सन्यासी के चंगुल से छुटकारा करा दिया। और भी कुछ स्कूली लड़के इसी तरह धर्म धर्म करके, बे-पते-ठिकाने के, संन्यासियों से दीक्षा लेने को तैयार हो गये थे। ठाकुर ने उन संकट में पड़े हुए लड़कों का किस्सा सुनाकर कहा कि उनका विचार सङ्कट-विहीन नहीं है। उन्हें ठाकुर ने तुरन्त देश को वापस भिजवा दिया।

अनधिकारी का गेरुवे वस्त्र पहनने में अपराध

एक दिन की बात है कि कुछ भले आदमी बङ्गाली, गेरुवे कपड़े पहनकर,

संन्यासी की वेश से ठाकुर के यहाँ आये। उनका परिचय पाने पर ठाकुर को मालूम हुआ कि न तो उन लोगों ने संन्यास लिया है, न और ही कोई आश्रम ग्रहण किया है इस समय तक उन्होंने दीक्षा भी नहीं ली है। तब ठाकुर ने उन लोगों से पूछा— आप लोग गेरुवे कपड़े क्यों पहनते हैं? गेरुवा वस्त्र पहनने की एक उपयोगिता है। अधिकार न होते हुए, अपनी मर्जी से, आपने गेरुवे कपड़े पहन रक्खे हैं; यह खबर मिल जायगी तो ऐसे भी साधु लोग हैं जो आपके इस काम को सहन न करेंगे। बुरी तरह चिमटों की मार मारकर आपसे ये कपड़े छीन लेंगे।

भले मानसों ने कहा—महाशय, सफेद कपड़ा दो-चारदिन में ही मैला हो जाता है। इतने पैसे हैं नहीं कि कपड़े धुलवा लिये जायँ, इसीसे इनको इस रँग में रँग लिया है।

उनका यह उत्तर सुनकर ठाकुर ने उन्हें बारह आने पैसे देकर कहा—कपड़े धुलवाने के लिए ये पैसे ले लीजिए। आज ही जाकर गेरुवा बदल डालिए।

भले मानसों ने ऐसा ही किया। तुरन्त गेरुवे कपड़ों को बदलकर सफ़ेद वस्त्र पहन लिये।

कुम्भ मेले की चर्चा

कुम्भ मेले में असंख्य साधु-सन्यासियों के सम्मिलन की बात सुनकर मैंने ठाकुर से पूछा—तो क्या गङ्गास्नान करने के लिए ही साधु-महात्मा लोग कुम्भ मेले में आते हैं?

ठाकुर ने कहा—कुम्भ योग में तीर्थस्थान पर गङ्गास्नान करने का विशेष माहात्म्य तो है ही, किन्तु कुम्भ मेले का उद्देश्य निरा स्नान करना नहीं है। यह मेला तीन-तीन वर्ष के बाद एक-एक स्थान में हुआ करता है। हरिद्वार, प्रयाग, नाशिक और उज्जैन में कुम्भमेला लगता है। इस योग के उपलक्ष्य में अनेक स्थानों से, यहाँ तक कि पहाड़ों पर रहनेवाले भी, महापुरुष निर्दिष्ट स्थान पर एकत्र होते हैं। एक निर्दिष्ट स्थान पर साधु-महात्माओं के सम्मिलित होने का समय ही कुम्भयोग है। यह बात सभी साधु-संन्यासी जानते हैं। साधुओं के साधन-भजन करने में जो-जो सङ्कट और सन्देह उपस्थित होते हैं उनका निर्णय इस समय पर वे महात्मा-महापुरुषों को ब्योरा सुनाकर कर लेते हैं।

साधन भजन के सम्बन्ध में जिसे जो बात सीखनी है उसको सीख लेना ही इस

मेले का प्रधान उद्देश्य है। इस समय पर महापुरुष लोग एकत्र होकर पता लेते हैं कि साधु-सन्यासियों और देश की साधारण जनता में धर्मभाव की क्या दशा है। जैसी व्यवस्था करने से जिस प्रदेशवालों का भला हो सकता है उसीको स्थिर करके वे एक-एक प्रदेश का भार एक-एक महात्मा को सौंपकर चले जाते हैं। इस बार महापुरुषों ने चौरासी कोस व्रजमण्डल का भार रामदास कठिया बाबा को सौंपा है। महापुरुषों ने उनको 'व्रजविदेही महन्त' की उपाधि दी है। इस प्रकार भारतवर्ष के सभी प्रदेशों के लिए ऐसे ही एक एक महात्मा निर्दिष्ट हैं। देश में धर्म की संस्थापना के लिए उन लोगों को सारा भार लेना पड़ता है। सदा परिश्रम करना पड़ता है।

मैंने तुरन्त ही फिर पूछा—समूचे बङ्गाल में धर्म-संस्थापना का भार किसके ज़िम्मे है? यह प्रश्न करते ही ठाकुर ने आँखें बन्द करके ध्यान लगा लिया। फलतः मुझे भी चुप हो जाना पड़ा।

माता के शोक में शान्तिसुधा को ठाकुर का ढाढ़स बँधाना

चैत्र अमावस्या, सं० १६४७

श्रीवृन्दावन में माताठाकुराणी के शरीर छोड़ने का हाल विस्तृत रूप में जानने का मुझे विशेष आग्रह हुआ है। किन्तु ठाकुर से पूछने का न तो मौका मिलता है और न मुझे हिम्मत ही होती है। माताठाकुराणी का देहान्त होने के बाद ठाकुर ने गेण्डारिया आश्रम में शान्तिसुधा प्रभृति को यह खबर देने के लिए अपने हाथ से जो पत्र लिखा था उसमें विस्तार के साथ कुछ भी नहीं लिखा है। वह पत्र पाकर आश्रम के गुरुभाइयों-बहनों का उस समय उक्त घटना की खबर शान्तिसुधा को देने की हिम्मत नहीं हुई। पत्र को गुप्त ही रख छोड़ा। गुरुभाई और बहनें सभी यह सोचकर चुप हो रहे कि ठाकुर स्वयं आकर शान्तिसुधा को वह खबर सुनावेंगे और उस समय वे उन्हें धैर्य भी बँधा सकेंगे। ठाकुर ने इस प्रकार लिखा है—

"ॐ हरि"

'कल्याणवरेषु,

गत माघ शु० १३ सं० १९४७ को सन्ध्या समय श्रीश्रीमती योगमाया देवी ने अपनी चिर-प्रार्थनीय सिद्धदेह प्राप्त कर ली है। अविश्वासी लोग इसे मृत्यु कहते हैं। किन्तु एक बार विश्वास की आँखें खोलकर देखो, योगमाया को आज सखियों के बीच में कैसी अपूर्व शोभा और सुन्दरता प्राप्त हुई है। श्रीमती शान्तिसुधा से

कहना कि वह शोक न करे। यह शोक की घटना नहीं है, बड़े आनन्द की बात है। बड़े भाग्य से मनुष्य को यह मिलती है।'

'आगामी फाल्गुन कृ० ८ सं० १९४७ को यहाँ उनके नाम से उत्सव होगा। इसके बाद हम लोग ढाका के लिए रवाना होंगे। यदि श्रीमती शान्तिसुधा श्राद्ध करना चाहे तो आनन्द उत्सव करके दुखी कङ्गालों को भोजन करा दे।'

'बेटी शान्तिसुधा! शोक मत करना, आनन्द करो, जितनी जल्दी बनेगा हम आ रहे हैं।'

आशीर्वादक

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी

इस घटना से कुछ दिन पहले शान्तिसुधा के, आठवें महीने में, सुलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। लड़के को लिये हुए शान्तिसुधा बड़े आनन्द से दिन बिता रही हैं, और यह सोचकर कि पिता-माता बहुत जल्द आनेवाले हैं, बडी उमङ्ग से उनके आने के दिन की बाट जोह रही है। इसी समय ठाकुर हरिद्वार से कलकत्ता होते हुए, बिना देर किये, ढाका के गेण्डारिया आश्रम मे आ गये। योगजीवन, कूतूनूडी और नानी प्रभृति सभी ने आश्रम में ठाकुर के पास आकर हँसते हँसते पूछा—'पिताजी, माँ कहाँ है?' ठाकुर ने कहा—शान्तिसुधा, मैं तुम्हारी माँ को श्रीवृन्दावन मे छोड़ आया हूँ। वे नहीं आईं, वहीं रह गईं। कुछ समय के बाद हम लोग भी फिर वहीं जायँगे।

मैंने सुना है कि इन बातों को सुनने से शान्तिसुधा साफ-साफ बात नहीं समझ सकीं। ठाकुर ने शान्तिसुधा को अपने सामने बिठाकर महाभारत और पुराण आदि के उपाख्यान सुनाते हुए माताठाकुराणी के गुज़र जाने की हाल कह डाला। सुनते ही शान्तिसुधा अचेत-सी हो गईं। ठाकुर ने उनकी देह पर हाथ फेरकर उन्हें सचेत कर दिया। शान्तिसुधा की तबियत बहुत खराब थी, इससे सभी को आशङ्का थी कि माँ के शोक से इनके दिमाग़ की हालत कहीं खराब न हो जाय; किन्तु यह कुछ नहीं हुआ। ठाकुर के शीतल हाथ का स्पर्श होने से शान्तिसुधा का हृदय इतना ठण्डा हो गया कि माँ के मरने का दारुण यन्त्रणादायक शोक भी उनपर वैसा असर नहीं डाल सका।

माताठाकुराणी के शरीर छोड़ने का ब्योरा

आज दोपहर को भोजन करने के बाद ठाकुर आम के पेड़-तले जा बैठे। तब मैंने माताठाकुराणी के शरीर छोड़ने का हाल पूछा। ठाकुर ने कहा—श्रीवृन्दावन में पहुँचने पर वे फिर लौटेंगी नहीं, यह जान कर मैंने उन्हें वहाँ उनके पहुँचने से पहले ही पत्र लिखकर कई बार रोका था, किन्तु उन्होंने माना नहीं। मेरी बीमारी की खबर पाकर वे चटपट वहाँ पर पहुँच गईं। श्रीवृन्दावन में पहुँच जाने के बाद भी मैंने उन्हें ढाका वापस भेजने की बहुत तरकीबें कीं, किन्तु वे किसी तरह श्रीवृन्दावन से नहीं हटीं। जिस दिन शरीर छूटने को था, उसका पहले ही उनको पता चल गया था। दो दस्त होते ही शरीर सुस्त पड़ गया। उसी समय परमहंसजी ने मुझ से कहा—'तुम इसी दम कुञ्ज छोड़ कर दूसरी जगह चले जाओ, यहाँ पर तुम्हारे रहने से उनको नहीं ले जाते बनेगा। उनका शरीर छूट जाने पर कुञ्ज में आ जाना।' परमहंसजी की आज्ञा मानकर मैं आसन से उठा। वे पास के कमरे में थीं, मैंने सोचा कि एक बार देखता तो जाऊँ, इसलिए उस कमरे में गया। वे सब समझ गई थीं। वे चाहती थीं कि मैं उस समय उनके पास रहूँ, इसीसे मेरा हाथ खींचकर उन्होंने अपने पास बैठने के लिए मुझको इशारा किया। किन्तु परमहंसजी की आज्ञा के अनुसार मैं, बिना ही विलम्ब किये, कुञ्ज से चला गया। फिर उनके देहान्त की खबर पाकर कुञ्ज में लौट आया।

मैंने सुना कि माताठाकुराणी का देहान्त होने के थोड़ी ही देर बाद ठाकुर कुञ्ज में आ गये। उस समय कुञ्ज के गुरुभाई और बहनें सभी माताठाकुराणी की लाश को बरामदे में रक्खे हुए ज़ोर-ज़ोर से रो रहे थे। वहाँ पहुँचते ही ठाकुर ने कहा—'योगजीवन! मृत देह को अब तक क्यों रख छोड़ा है? यमुना किनारे ले जाकर सत्कार कर आ।' अब ठाकुर उस ओर न देखकर अपना आसन बिछाकर बैठ गये। जिस तरह और-और दिन रहते हैं उसी तरह ठाकुर आसन पर एक ही तरह बैठे रहे। किसी प्रकार की विलक्षणता नहीं देख पड़ी। योगजीवन, श्यामाकान्त पण्डितजी, श्रीधर, अश्विनी और सतीश प्रभृति गुरुभाइयों ने माता की परम पवित्र देह को चटपट यमुना-किनारे ले जाकर, केशीघाट पर, भस्म कर दिया। जैसा ठाकुर का अभिप्राय था तदनुसार चिन्ता के बुझ जाने पर योगजीवन ने
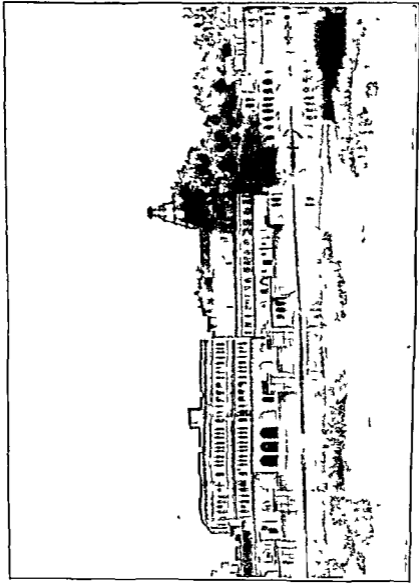
केशी घाट—श्रीवृन्दावन

माताठाकुराणी की तीन अस्थियाँ उठा लीं। उनमें से एक को श्रीवृन्दावन में समाहित कर दिया। हरिद्वार और गेण्डारिया में प्रतिष्ठित करने के अन्य दो अस्थियाँ रख ली गईं।

भक्त के वियोग में महात्माओं को असाधारण जलन

माताठाकुराणी के शोक में नानी दिन-रात जल रही हैं। समय-समय पर ठाकुर की कृपा से नानी को माताठाकुराणी के दर्शन मिल जाया करते हैं। इसी से खैरियत है, नहीं तो वे प्रतिदिन सनक जाया करतीं। नानी जिस समय 'योगमाया' 'योगमाया' कहकर ज़ोर-ज़ोर से रोया करती हैं उस समय सारे आश्रम में खिन्नता छा जाती है। वह क्रन्दन सुनने से हम लोगों का शरीर भी सुन्न हो लगता है। नानी का रोना-पीटना सुनकर हम लोग उन्हें धैर्य बँधाने को जाने की चेष्टा करते हैं तो ठाकुर रोक करके कहते हैं—शोक के समय ज़ोर-ज़ोर से रो लेने देना चाहिए, इससे शोक घट जाता है। शोक होने पर रोने न दिया जाय तो बहुतेरे पागल हो जाते हैं। यहाँ तक कि बहुतों को उत्कट रोग हो जाता है जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है।

मैं बड़े गौर के साथ देखा करता हूँ कि जिस समय माताठाकुराणी का नाम ले-लेकर नानी हृदय विदारक शब्द से ज़ोर-ज़ोर से रोती-पीटती हैं उस समय ठाकुर के चेहरे पर किसी प्रकार का भावान्तर होता है या नहीं। एक दिन भी ठाकुर में किसी प्रकार का परिवर्तन न देखकर मैंने पूछा—क्या जीवन्मुक्त महापुरुषों को किसी के लिए भी शोक यन्त्रणा नहीं होती?

ठाकुर ने कहा—बहुत होती है। भक्त का वियोग होने से इन लोगों को जैसी जलन होती है उसकी और कहीं तुलना नहीं है। आत्मा के साथ जिनका सम्बन्ध हो जाता है उनका विच्छेद होने में जो यन्त्रणा होती है उसकी कल्पना तक साधारण मनुष्य नहीं कर सकते। उस जलन की आँच तक को सह लेने की सामर्थ्य सर्व-साधारण में नहीं है। बड़ी बेढब जलन होती है।

मैंने कहा—जो लोग भक्त या महापुरुष हैं उनके शोक का कोई लक्षण क्या बाहर प्रकट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा—कभी प्रकट हो जाता है और कभी बिलकुल ही छिपा रह जाता है। महाप्रभु का अन्तर्धान होने के पश्चात् रूप, सनातन आदि महाप्रभु के भक्तों में बाहर किसी प्रकार का शोक चिह्न न देखकर बहुतों के मन में सन्देह हुआ था कि

भला ये लोग किस तरह के भक्त हैं ! एक दिन एक वृक्ष के नीचे भागवत का पाठ हो रहा था। सभी लोग भागवत सुन रहे थे। अकस्मात् उस वृक्ष का एक सूखा पत्ता रूप गोस्वामी के शरीर पर गिरा। ज्योंही वह उनके शरीर पर गिरा त्योंही भक से जल उठा। इस घटना के देखने से लोगों की समझ में आया कि महाप्रभु के विरह की आग में उनके भक्त लोग किस तरह दग्ध हो रहे हैं।

मैंने फिर पूछा—ऐसी कितनी ही बातें तो सुनी जाती हैं, किन्तु वास्तव में क्या वैसा ही होता है ? शोक में क्या मनुष्य के शरीर से सचमुच आँच निकलती है ?

ठाकुर ने कहा—अवश्य निकलती है। श्रीवृन्दावन में उनका (योगमाया ठाकुराणी का) शरीरान्त होने के बाद कुत्र्तू बहुत ही बेचैन हो गई। उसे ढाढस बँधाने के लिए मैंने ज्योंही उसकी पीठ पर हाथ रक्खा त्योंही कुत्र्तू 'अरेरे' करके चौंककर हट गई। मैंने उसी समय समझ लिया। थोड़ी देर में देखा कि कुत्र्तू की पीठ पर पाँच उँगलियों का निशान, आग से जले हुए फफोले की तरह, पड़ गया है।

ठाकुर के साथ इस तरह की बातचीत होते समय अन्यान्य लोग आगये, अतएव इस मामले में और कुछ पूछताछ करने का सुभीता न रहा।

गोस्वामीजी के दर्शन करने को पहाड़वासी अज्ञात महापुरुष

श्रीवृन्दावन में माताठाकुराणी का श्राद्ध-कार्य योगजीवन से कराके, कुछ दिन बाद, चैत्र के प्रारम्भ में, ठाकुर हरिद्वार में कुम्भ मेले में पहुँचे। वहाँ एक महापुरुष से भेंट करना और माताठाकुराणी के फूल को गङ्गाजी में स्थापित करना ही ठाकुर के वहाँ जाने का उद्देश्य था। अतएव वहाँ पर वे चार-पाँच दिन से अधिक नहीं ठहरे। हरिद्वार में पहुँचते ही ठाकुर गुरुभाइयों और बहनों के साथ ब्रह्मकुण्ड के घाट पर पहुँचे। वहाँ पर स्नान करके योगजीवन के द्वारा उन्होंने माताठाकुराणी की एक अस्थि गङ्गा में समाहित करवा दी।

चैत्र शु० २ सं० १९४७

कनखल में नानकशाही महन्त श्रीयुत रामप्रकाशजी के आश्रम में ठाकुर उतरने वाले थे। किन्तु वहाँ पर सुभीता न समझकर ब्रह्मकुण्ड के समीप गङ्गा किनारे एक पण्डे के घर में डेरा कर लिया।

श्रीश्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी महाराज

साधुओं के दर्शन करने के लिए एक दिन ठाकुर, सङ्गियों को लेकर, मेले के भीतर गये। वहाँ पर सिर्फ लँगोटी लगाये हुए, एक पहाड़वासी सन्यासी दूर से ठाकुर को देखकर बड़ी भारी भीड़ के भीतर होकर बेरोक गति से बहुत ही उल्लसित भाव से नृत्य करते-करते ठाकुर के सामने आये और बार बार ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे—'आज मेरा मिला रे मिला,' 'आज मेरा मिला रे मिला।' उनकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। ज़ोर-ज़ोर से इस तरह कहते कहते, ऊपर हाथ उठाये हुए नाचते-नाचते कई बार ठाकुर की प्रदक्षिणा करके वे अकस्मात् अन्तर्धान हो गये। वे किस तरह कहाँ चले गये, खोजने पर भी किसी को न मिले।

एक और नग्नप्राय जटाधारी उदासी महापुरुष, थोड़े अन्तर पर ठहरकर, ठाकुर के दर्शन करते ही डगमगाते हुए पैरों से दो-चार क़दम आगे बढ़े और खम्भे की तरह खड़े हो रहे। आँसुओं की धार उनकी छाती पर होती हुई बहने लगी। वे बारबार चौंकने लगे। हाथ जोड़े, काँपते हुए, वे ठाकुर की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। वे गद्गद भाव से बुदबुदाकर बीच-बीच में कहने लगे—'मेरा सब पूरन हो गया, आज मैं धन्य हो गया। धन्य हो गया।' ज़रा ठहरकर श्रीधर ने उक्त महात्मा के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया और कहा—'असीस दीजिए महाराज, असीस दीजिए।' महापुरुष ने श्रीधर से कहा—'तुम लोगों का अहोभाग्य है, तुम लोगों का अहोभाग्य है। भगवान् का सङ्ग पाया है। दर्शन ही बहुत दुर्लभ है। हमेशा पीछे-पीछे रहना। सङ्ग कभी न छोड़ना। धन्य हो गया। धन्य हो गया।'

इन महात्माओं के सम्बन्ध में, प्रश्न करने पर, ठाकुर ने कहा—ये महापुरुष लोग कभी भीड़-भाड़ या बस्ती में नहीं आते। पहाड़ पर ही रहते हैं। इन लोगों के दर्शन होते ही जान पड़ा कि ये लोग न जाने कितने दिनों के मेरे परिचित हैं। जिनके साथ प्राणों का संयोग है उनको, मुद्दत के बाद भेंट होने पर भी पहचान लिया जाता है। बड़े घनिष्ठ जान पड़ते हैं।

द्वितीय खण्ड समाप्त

* *

*

शब्दकोश

अद्वैत प्रभु—प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य।

कुतबुड़ी—श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी की छोटी लड़की।

गेण्डारिया—पूर्व बंगाल के ढाका शहर के भीतर का एक स्थान है। पहले यहाँ जंगल था और अच्छे अच्छे मुसलमान फकीर यहाँ एकान्त में भजन किया करते थे। श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी ने यहीं आश्रम स्थापित किया था।

गोस्वामी (गोसाईं)—श्रीश्रीविजयकृष्ण। प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य।

गौरचन्द्रिका—बंगाल में श्रीगौराङ्ग महाप्रभु श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं। इसी कारण श्रीकृष्णलीला के साथ श्रीगौराङ्ग लीला का सामंजस्य रखकर कीर्तन रचित हुआ है। कीर्तन सम्प्रदाय में ऐसी पद्धति चली आती है कि श्रीकृष्णलीला सम्बन्धी किसी भी कीर्तन गाने के आरम्भ में श्रीगौराङ्गलीला के उस भाव से युक्त पदावली पहले गायी जाती है। इस प्रकार की गौराङ्गलीला की पदावली को गौरचन्द्रिका कहते हैं।

ठाकुर—श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी को उनके शिष्य लोग ठाकुर कहकर सम्बोधन करते थे।

दण्डी—प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य।

दिदिमाँ—श्रीश्रीविजयकृष्ण की सास को उनके शिष्य लोग दिदिमाँ कहकर सम्बोधन करते थे।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर—बंगाल में ब्राह्म समाज के एक प्रतिष्ठित महात्मा थे। यह विश्व कवि स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता थे।

नित्यानन्द प्रभु—प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य।

परमहंसजी—स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंसजी। प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य है।

प्रभुसन्तान—बंगाल में अवतीर्ण श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु के अंशावतार श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीश्रीअद्वैत प्रभु के वंशजों को प्रभु-सन्तान कहते हैं। श्रीश्री गौराङ्ग महाप्रभु श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीश्रीअद्वैत प्रभु का परिचय प्रथम खण्ड के शब्दकोश में है।

बाच—नौकाविहार यानी नौकालीला।

वृन्दावन का रज—श्रीवृन्दावन की धूल को रज कहते हैं।

ब्राह्म—ब्राह्मसमाज के भक्त लोग।

ब्राह्मसमाज—प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य।

महाप्रभु—प्रथम खण्ड का शब्दकोश द्रष्टव्य।

माताठाकुराणी—श्रीश्रीगोस्वामी प्रभु के पूर्वाश्रम की धर्मपत्नी को उनके शिष्य लोग माताठाकुराणी कहते थे।

योगजीवन—श्रीश्रीविजयकृष्ण के पुत्र।

योगमाया—श्रीश्रीविजयकृष्ण के पूर्वाश्रम की धर्मपत्नी।

शचीनन्दन—श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु श्री श्रीशची माता के पुत्र थे। इसीलिए उन्हें शचीनन्दन भी कहते हैं।

श्रीकृष्ण चैतन्य—श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु के सन्यास आश्रम का नाम है।

हरिदास ठाकुर—श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभु के एक परम भक्त थे। यह मुसलमान होने पर भी आचार में परम निष्ठावान् हिन्दू के बराबर थे।